विद्यार्थी जैनधर्म शिक्षा।

लेखक-

श्रीमान् ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी।

[समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, तत्त्वभावना, समयसार कलश, स्वयंभूस्तोत्र, समाधिशतक, इष्टोपदेश, तारणतरण श्रावकाचार आदिके टीकाकार तथा गृहस्थधर्म, जैनधर्म प्रकाश, मोक्षमार्ग-प्रकाश द्वि०, प्राचीन जैन स्मारक, बृ० जैन शब्दकोष, पञ्चकल्याणक-प्रतिष्ठापाठ, जैनबौद्ध तत्त्वज्ञान आदि ग्रंथोंके सम्पादक।]

प्रकाशक-

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दि० जैनपुस्तकालय, कापड़ियाभवन-सूरत।

श्रीमान् दानवीर श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचंदजी-

भेलसा नि० की ओरसे

"जैनमित्र" के २५वें वर्षके ग्राहकोंको भेट।

"जैन विजय" प्रिन्टिंग प्रेस, खपाटिया चकला-सूरतमें
मूलचंद किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया।

भूमिका ।

बहुधा हाईस्कूल और कालेजके छात्रोंको धार्मिक ज्ञान नहीं होता है इसलिये वे नास्तिक भावके बन जाते हैं । यही दशा जैन छात्रोंकी भी है, अतएव जैन छात्रोंको सुगमतासे जैन धर्मकी रुचि करानेके लिये प्रश्नोत्तर रूपमें यह पुस्तक लिखी गई है । इसको ध्यानसे पढनेसे एक बुद्धिमान छात्रको जैन धर्मका ज्ञान होजायगा । तथा अन्य धर्मोंसे जैन धर्म किन बातोंमें मिलता है यह भी जान लिया जायगा । स्कूल, कालेज और बोर्डिंगोंमें इसके प्रचारकी जरूरत है । जो विशेष जैन धर्मका ज्ञान प्राप्त करना चाहें वे नीचे लिखी हुई पुस्तकें पढ़ें:—

(१) द्रव्यसंग्रह व बृहत् द्रव्यसंग्रह सार्थ ।) व २।), (२) तत्वार्थसूत्र सार्थ ॥।), अर्थ प्रकाशिका, सर्वार्थसिद्धि टीका २), (३) तत्वार्थसार, (४) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय १।), (५) स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा १), (८) गृहस्थ धर्म १॥), (९) जैनधर्म प्रकाश ॥), (१०) इष्टोपदेश १।), (११) समाधिशतक १।), (१३) पंचास्तिकाय ३।=), (१४) प्रवचनसार ५), (१५) अष्टपाहुड़ १॥=), (१६) समयसार २॥), (१७) नियमसार २), (१८) तत्वभावना १॥।), (२०) गोम्मटसार सार्थ ५), (२१) राजवार्तिक २०), (२३) परमात्मप्रकाश ३), (२४) ज्ञानार्णव ४), ३५) पंचाध्यायी ६) ।

मिलनेका पता—दिगम्बर जैन पुस्तकालय—सूरत ।

(1)	What is Jainism	2-0
(2)	The Practical Dharma	1-8
(3)	Sanyas Dharma	1-8
(4)	House Holder's Dharma	0-12
(5)	Faith, Knowledge & Conduct ...	1-8
(6)	Rishabhadeo	4-8
(7)	Jainism, Christionity & Science ...	3-0
(8)	Jain Penance	2-0
(9)	Confluence of opposites	2-8
(10)	Key of Knowledge	10-0

Can be had from—

Parishad Jain Publishing House
Bijnor U. P.

(1)	Dravyasangraha	5-8
(2)	Tattwartha Sutra	4-8
(3)	Panchastikaya	4-8
(4)	Purusharth Sidhyupaya	4-8
(5)	Gomatsara Jivakand	5-8
(6)	„ Karmakand	4-8
(7)	Atmanushasana	2-8
(8)	Samayasara	3-0
(9)	Niyamsara	3-0
(10)	Pure Thoughts	0-1

Can be had from,

Central Jain Publishing House
Ajitasrm, Lucknow U. P.

इटार्सी,
३१ अक्टूबर १९३३. } जैनधर्मप्रेमी-ब्र० सीतल।

श्रीमान् दानवीर श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचंद्रजी-भेलसा ।
(आप अबतक करीब ढाई लाख रु. का दान कर चुके हैं)

जीवनचरित्र-

दानवीर श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचंदजी।

इस अति उपयोगी पुस्तकके प्रकाशनमें द्रव्यकी सहायता करनेवाले **भेलसा** (राज्य ग्वालियर) निवासी दानवीर श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्दजी साहब हैं। आप बड़े उदारचित्त, धर्मात्मा व जिनधर्मके नियमोंपर चलनेवाले हैं। आप नित्य दर्शन पूजन स्वाध्याय करते हैं। आपको अभक्ष्यका त्याग है। आप विलायती डाक्टरी दवा भी काममें नहीं लेते। परवार जैन जातिके आप रत्न हैं। आपका जन्म दीवानगंज (भोपाल) में वि० सं० १९५१में हुआ था। आपके पिताश्रीका नाम सेठ मन्नूलालजी था। आप बाल्यावस्थामें ही पुण्य-शाली थे, यह बात आपके शरीरके अंगोंसे व चेष्टासे झलकती थी।

भेलसामें सेठ शिताबरायजी एक प्रतिष्ठित धनिक व्यवसायी व्यापारी थे और बड़े धर्मात्मा थे। शिताबरायजीकी धर्मपत्नी श्रीमती शक्करबाई भी बड़ी ही धर्मात्मा, सच्चरित्रा व नारी-रत्नोंमें प्रधान थीं। दानधर्ममें अग्रणी थीं। कर्मोदयसे आपके कोई संतान नहीं थी। तब सं० १९५६ में उक्त सेठ साहबने धर्मपत्नीकी सम्मति-पूर्वक निकट सम्बंधी लक्ष्मीचंदजीको दत्तक लेकर अपनी सम्पत्तिका अधिकारी बनाया। उक्त लक्ष्मीचन्दजीने साधारण विद्याभ्यास किया व धर्माचरणमें निरत रहकर अपने व्यापारको अल्पवयमें ही सम्हाल लिया।

आपके यहां सराफी, सोना चांदी, लेन देन आदिका व्यापार होता है। सं० १९८५ में ष्टेशनके पास माधोगंज बसनेसे सेठ सितावरायजीने एक बृहत् जैन धर्मशाला और जैन मंदिर बनवानेका विचार किया और इस कामको प्रारम्भ भी कर दिया परन्तु अचानक आयुकर्मके भग्न होनेसे आपके जीवनमें वह कार्य पूरा न होसका।

सेठ लक्ष्मीचंदजीने सुपुत्रकी भांति अपने पूज्य संरक्षककी हार्दिक इच्छाको बड़ी ही उदारताके साथ पूर्ण किया और ९०,०००) नव्वेहजार रु० लगाकर एक विशाल धर्मशाला और जिनमंदिर तय्यार करा दिया जो भेलसामें एक दर्शनीय इमारत है।

आपके मित्र धर्मप्रेमी सेठ राजमलजी बड़जात्या तथा बाबू तखतमलजी जैन वकील आपको धर्मकार्योंमें तथा परोपकारमें सदा ही प्रेरणा व सहाय करते रहते हैं। उक्त उभय सज्जनोंके प्रयत्नसे वि० सं० १९८८ वीर सं० २४५८ कार्तिक शुक्ला ५मी देवाधिदेव श्री जिनेन्द्रदेवका स्थापन उक्त धर्मशालाके जिन मंदिरमें किया गया।

इसीमें आप नित्य पूजन करते हैं व धर्मशालामें ही एक तरफ निवास रखते हैं। इस जिन मंदिरमें हरएक जैनी दर्शन कर सक्ता है, विधर्मियोंको भी दर्शनकी मनाई नहीं है। इस धर्मशाला व मंदिरकी शोभा व दुरुस्तीमें ९,०००) और खर्च करके उस इमारतको दर्शनीय बना दिया है। आपने इस इमारतका ग्वालियर राज्यमें ट्रस्ट भी कर दिया है। तथा २,०००) की दुकानें लगादी हैं जिनकी आमदनीसे धर्मशालाका खर्च चला करे।

इस धर्मशालाके जिन मंदिरमें नित्य शास्त्र सभा होती है। इसी धर्मशालामें जैन पाठशाला व जैन कन्याशाला चलती है। सर्वोपयोगी वाचनालयको भी स्थान दिया गया है, जो जैन नवयुवक मण्डल भेलसा द्वारा चलता है। उक्त सेठजी वास्तवमें दानवीर हैं। यद्यपि आपकी आयु अभी ४० वर्षकी ही है तोभी आपने अपने जीवनमें बहुत कुछ द्रव्य उपयोगी कामोंमें दान किया है। तथा यह आशा है कि आप सदैव अपनी सम्पत्तिका सदुपयोग इसी भांति दान धर्ममें करते रहेंगे। आपके दानकी एक लंबी सूची है। हम यहां केवल उन्हीं रकमोंको प्रगट करते हैं जो १००) से ऊपर हैं—

११०००) भा० दि० जैन परिषद्के इटारसी अधिवेशनके समय वीर सं० २४६० में दि० जैन साहित्यके प्रकाशनार्थ श्रीयुत हीरालालजी एम० ए० एल० एल० बी० प्रोफेसर एडवर्ड कालेज अमरावतीके उपदेशसे व अधिवेशनके सभापति बाबू जमनाप्रसादजी सब जज अमरावतीकी प्रेरणासे दिये। इस द्रव्यसे उक्त प्रोफेसर साहबने श्री जयधवलाके प्रकाशनका कार्य प्रारम्भ कर दिया है। इसके उपलक्षमें जैन समाजने आपको उसी समय श्रीमंत सेठकी उपाधि प्रदान की। व वाणीभूषण पं० तुलसीरामजी काव्यतीर्थने आपको पगड़ी बांधी व नगरमें आपका खूब स्वागत हुआ।

५०००१) जैन हाईस्कूल भेलसाके लिये उक्त परिषद्के भेलसा अधिवेशनके समय वी० सं० २४६१ में प्रदान

किये, तब सर्व उपस्थित जनताने आपको दानवीरका पद दिया, नगरमें स्वागत हुआ, भेलसाकी पवलिकने भी आपको बधाई दी।

९,०००) जैन कन्याशाला या आश्रम भेलसाके लिये इसी अधिवेशनके समय प्रदान किये, जिसमें २०००) अपनी माता शक्करबाईकी तरफसे व ७०००) अपनी धर्मपत्नी सौ० भगवनीबाईकी तरफसे दिये।

५०१) जैन महिलाश्रम दिहलीको इटारसी अधिवेशनके समय।

२५१) भा० दि० जैन परिषद् भेलसा।

२५०) भा० दि० जैन परिषद् इटारसी अधिवेशन।

श्री देवगढ़ अतिशयक्षेत्रपर सभापति होकर आपने इस भांति दान किया:—

५०१) कलशाभिषेकके लिये

२०५) फूलमाल लेनेमें

१५१) कुआं व जीर्णोद्धारमें

५०१) भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई

श्री थूबौनजी अतिशयक्षेत्रपर उसके तीसरे अधिवेशनके समय इस प्रकार दान दिया:—

८०१) कलशाभिषेकमें

२५२) मस्तकाभिषेकमें

२०५) फूलमालमें

२०१) क्षेत्र भंडारमें

२५२) श्री बुंदेलखण्ड प्रांतिक सभाके सभापति होकर दान किये।

४२५) श्री सम्मेदशिखरजीमें कल्शाभिषेकके लिये

१०००) श्री स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके ध्रुवफण्डमें दिये।

वीर विद्यालय पपौरा अतिशय क्षेत्रमें—

२५१) विद्यालय मकान उद्घाटनके समय

१००) एक विद्यार्थीके लिये दिये

आप कई छात्रोंको ५) व ३) मासिक छात्रवृत्तियें भी देते हैं।

जिस समय धर्मशाला व जिन मंदिरका उद्घाटन किया गया था, आपने १०००) जैन संस्थाओंको व ५०५) नीचे लिखी ५ संस्थाओंको १०१) के हिसाबसे दान किया। इससे आपका सार्वजनिक प्रेम व हितकी भावना प्रगट होती है। (१) रामलीला. (२) गणेशोत्सव, (३) व्यायामशाला. (४) अनाथालय आर्यसमाज. (५) अन्जुमन इस्लाम। इसप्रकार आपका दान करीब १७८०००) का होजाता है। और भी फुटकर दानोंको मिलाकर आपने करीब दो लाख रुपयाका दान किया है।

हमारी भावना है कि आप दीर्घायु होकर जैन धर्म व जैन साहित्य व जैन समाजकी लौकिक व धार्मिक उन्नतिमें अपना तन, मन, धन अर्पण कर अपने जीवनको सफल करें।

सूरत
वीर सं० २४६१
फाल्गुन सुदी ८

मूलचन्द किसनदास कापड़िया—प्रकाशक।

निवेदन।

कालेज, स्कूल और बोर्डिंगोंके जैन विद्यार्थियोंमें धार्मिक ज्ञानकी अत्यन्त आवश्यक्ता है। धार्मिक शिक्षाकी यह कमी बहुत दिनसे खटक रही थी, मगर इसकी पूर्तिके लिये अभीतक किसी अच्छी पुस्तकका निर्माण नहीं हुआ था। हर्षकी बात है कि माननीय विद्वान लेखकने इस कमीकी पूर्ति करके समाजका स्थायी उपकार किया है।

इस पुस्तककी विषयसूचीसे ही ज्ञात हो सकता है कि इसमें 'गागरमें सागर' भर दिया गया है। "जैनधर्म प्रकाश" के बाद श्रीमान् ब्रह्मचारीजीकी यह कृति सर्वसाधारणके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। यदि यह पुस्तक प्रत्येक जैन बोर्डिंगके विद्यार्थियोंको पढ़ाई जाय और जैन स्कूलोंमें धार्मिक शिक्षाके लिये अनिवार्य करदी जाय तो उन्हें जैन धर्मका अच्छा ज्ञान हो सकता है। आशा है कि संचालक वर्ग इस ओर ध्यान देंगे।

यद्यपि यह पुस्तक विद्यार्थियोंको लक्ष रखकर लिखी गई है, फिर भी इसे पढ़कर आबाल वृद्ध जैन धर्मका रहस्य समझ सके हैं। "यो यत्र अनभिज्ञः स तत्र बालः" अर्थात् जो जिस विषयमें अज्ञान है वह उस विषयमें बालक है, इस नीतिके अनुसार वे वयः प्राप्त भाई बहिन भी विद्यार्थी ही हैं जिन्हें जैन धर्मका ज्ञान नहीं है। अतः जैन धर्मके जिज्ञासु प्रत्येक व्यक्तिको इस पुस्तकका स्वाध्याय अवश्य कर लेना चाहिये।

"जैनमित्र" के ३५ वें वर्षके ग्राहकोंको तो यह ग्रंथ उपहार-में दिया गया है, मगर हमने २०० प्रतियां और भी विक्रयार्थ निकाली हैं, अतः अवश्य ही एक प्रति आप भी मंगा लीजिये।

—प्रकाशक।

विषय सूची।

छटा अध्याय।

सातवां अध्याय।

आठवां अध्याय।

नवमा अध्याय।

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
२०६	१०.	उववाग्रो	उववादो
२१३	१९	यः	यैः
२१५	१५	आत्मानुष्टाग	आत्मानुष्ठान
२१८	१९	दुष्करतरं	दुष्करतरं
,,	,,	मोक्षौ	मोक्षो
२२८	५	बद्धुमत	वृद्धमत
२३०	१९	वर्णन	वर्णन न
२३२	२	सेव्यचिदं	सेव्यपिदं
२३३	२	पायुनाति	पापुनाति
,,	,,	नित्य	अनित्य
,,	,,	सम्यक	सम्फक
२३५	१६	अयरः	अपरः
२३६	१८	भापद्गिो	भापद्गि
२४३	१७	दातत्वं	दातत्वं
,,	१०.	परिसु	परिसु
२५३	१६	साधुगद	साहुवद
२५८	१२	प्रवृत्ति	प्रकृति
२६४	१६	चिन्नो	चिन्नो
२७२	२	रज्ञोकुण	रज्ञोगुण
२७४	७	उप	उम
,,	१७	इच्छा या	इच्छा [illegible]

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
२८६	२२	पापोंमे	वाक्योंमे
२८८	२५–२६ वीं लाईन इस प्रकार है—		

thot shalt not bear false witness, 19. Honour thy father and thy mother and thou shalt love thy neibour as thyself–21. Jesu

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
२८९	१२	Vatitude	rectitude
२९१	अंत	oue	are
२९२	१७	Vani	Vain
..	२०	दया	दिया
२९३	अंत	तथा	तथापि
२९५	अंत	blow	blood
२९६	६	आजकल	अन्न फल

श्रीवीतरागाय नमः।

विद्यार्थी जैनधर्म शिक्षा।

प्रथम अध्याय।

मैं कौन हूं?

प्रश्न- आपका धर्म क्या है?

उत्तर- मैं जैनधर्मी कहलाता हूं। मेरे घरमें सब जैनधर्म पालते हैं।

प्र०—क्या आप कुछ जैनधर्मको जानते हो?

उ०—मैं तो कुछ भी नहीं जानता हूं। क्योंकि मेरी माताने मुझे शिशुपनमें कुछ बताया नहीं। पिताजीने सरकारी स्कूलमें भेज दिया। पिताजीने कभी शिक्षा नहीं दी, न दिखानेकी चेष्टा की।

प्र०—क्या आपकी इच्छा है कि आप जैनधर्मको जानें?

उ०—मैं तो कालेजमें पढ़ता हूं। मेरे मनमें तो मुझे धर्मकी भी जरूरत नहीं मालूम पड़ती है। मुझे किसी भी धर्मके जाननेकी जरूरत नहीं दीखती तब मैं जैनधर्मको जानकर क्या करूंगा?

प्र०—क्या आप बता सकेंगे कि आप कौन हैं?

उ०—मैं मनुष्य हूं, विद्यार्थी हूं और मैं अपनेको जैन भी कह देता हूं।

प्र०—आप यह बतावें कि मुर्दे और जिन्दे मानवमें क्या फर्क है, जब दोनोंका शरीर एकसा दीखता है। मुर्दा समझता क्यों नहीं?

उ०—मैं समझता हूं कोई कल बिगड़ जाती है जिससे मानव मुर्दा होजाता है तब वह नहीं समझ सक्ता।

प्र०—आपके हाथ, पग, मुख, बाल, नख, मांस, चर्बी, रुधिर आदि किस वस्तुके बने हुए हैं?

उ०—जो कुछ हम खाते पीते हवा लेते उससे बने हैं।

प्र०—आप जो हवा लेते, पानी पीते, अन्नादि खाते, दूध पीते ये चीजें किस वस्तुसे बनी हैं?

उ०—ये सब चीजें जरूर किन्हीं परमाणुओं (Atoms) से बनी हैं।

प्र०—ये परमाणु जड़ हैं या चेतन? क्या उनमें जाननेकी शक्ति है?

उ०—मैं समझता हूं परमाणु जड़ हैं। हमारे सामने बहुतसी जड़ वस्तुएं दीखती हैं जैसे बालू, कंकड़, पत्थर, काठ, टीन, सोना, चांदी, लोहा ये सब जड़ हैं, ये कुछ समझ नहीं सक्ते। ये सब टुकड़े करनेपर टूटटूटकर बहुत छोटे होसक्ते हैं।

प्र०—आप उनके टुकड़े करते चले जावें, आखरी टुकड़ेको क्या कहेंगे?

उ०—बस उसीको परमाणु कहते हैं।

प्र०—तब यह शरीर व इसके आंख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा आदि जड़ नहीं हैं क्या?

उ०—ये भी सब जड़ हैं।

प्र०—तब त्वचाइंद्री क्या जड़ त्वचा छूकर जानती है, क्या जड़ रसना चाखकर जानती है, क्या जड़ नाक सूंघकर जानती है, क्या जड़ आंख देखकर जानती है, क्या जड़ कान सुनकर जानता है?

उ०—जड़से वनी वस्तुएं तो जान नहीं सक्तीं हैं परन्तु कुछ रुधिर व मगजकी ताकतसे जाना जाता होगा, आप वताइये अब क्या समझते हैं ?

शिक्षक–भाई, जब आंख, नाक, कान आदि जड़ हैं व भोज्य पदार्थ जड़ हैं तब इनसे वना हुआ रुधिर व मगज भी जड़ क्यों नहीं होगा ? जड़से ज़ड़ ही वन सक्ता है, जैसे गेहूंसे गेहूंकी रोटी, लोहेसे लोहेकी कड़ी, सोनेसे सोनेके गहने, रुईसे रुईके कपड़े, रेशमसे रेशमके कपड़े वनते हैं। जब जड़ परमाणुओंमें जाननेकी ताकत नहीं है तब उनके वने हुए जितने भी कार्य होंगे उनमें जाननेकी ताकत नहीं होसक्ती। विद्वानोंने कहा है जैसा कि मूल कारण होता है वैसा उसका वना कार्य होता है।* जो गुण मूलमें होते हैं वे ही उसके वने कार्यमें झलकते हैं। देखो जड़ मिट्टीमें स्पर्श है, स्वाद है, गंध है, वर्ण है, तव उसके वने हुए वर्तनोंमें भी, मटकेनोंमें भी प्यालोंमें भी ठंडा व चिकना स्पर्श है, रस है, गंध है व वर्ण है। इस लिये जब जड़ परमाणुओंमें व उनसे वने हुए पदार्थोंमें जड़पना दीखता है--उनमें जानपना नहीं दिखलाई पड़ता है, तब उनसे वने शरीरमें व शरीरके किसी अंगमें जानपना कैसे होसक्ता है। इसलिये तुमको जानना चाहिये कि जो कोई जाननेवाला है वह जड़से भिन्न कोई और है। उसीको हम लोग आत्मा, जीव, चेतन, इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं। जानना जब जड़का गुण नहीं है तब किसीका तो होना ही चाहिये क्योंकि गुण किसी चीजमें ही रहते हैं

*—उपादानकारणसदृशं कार्यं भवति।

गुण कभी किसी चीजमें भिन्न नहीं मिल सक्ते हैं। जैसे मीठापना शक्करमें, ईखमें, अंगूरमें मिलेगा। खट्टापना नींबू, खटाई, इमलीमें मिलेगा। कडुआपना नीममें मिलेगा। सज्जनपना सज्जनमें, दुर्जनपना दुर्जनमें, धर्म धर्मात्मामें, अधर्म अधर्मीमें, सत्य सत्यवादीमें, क्षमा क्षमावानमें, क्रोध क्रोधी मानवमें पाया जायगा। इसीतरह ज्ञान गुण या जानपना (consciousness) किसीमें मिलना चाहिये। जिस द्रव्यमें यह गुण सदा रहता है उसे ही आत्मा कहते हैं। यह जड़ शरीर उसके रहनेका घर है। जब तक वह शरीरमें रहता है तबतक शरीर द्वारा सब जाननेका काम हुआ करता है। जब वह शरीरसे निकल जाता है तब शरीर जड़ कुछ भी जान नहीं सक्ता। इसलिये उसको मुर्दा कहते हैं। इसलिये आपको यही विश्वास रखना चाहिये कि मैं आत्मा हूं, शरीर नहीं हूं।

प्र०—प्रिय मित्र! क्या विज्ञानवेत्ता (Scientists) आत्माको मानते हैं?

उ०—यद्यपि साफ २ नहीं मानते हैं तौभी बहुतसे विज्ञानवेत्ताओंकी यह सम्मति होती जाती है कि मात्र जड़में ही ज्ञान, इच्छा, स्मरण आदि नहीं होसक्ता है इसलिये कोई दूसरा पदार्थ और है।

लंडनमें सर ओलिवर लाज विज्ञानके बहुत बड़े विद्वान हैं। उनके वाक्य हैं "हम मरनेके बाद मिट नहीं जाते हैं, हम बने रहते हैं, हम स्वयं अपने मूल स्वभावमें कभी नहीं नष्ट होते हैं, हम इस जड़ शरीरके छूटनेके आगे भी अविनाशी जीवनमें बने रहते हैं।" यह ओलिवरलाज साहब अपनी पुस्तक [illegible] में ऐसे प्रकाश करते हैं—

शरीर और शक्तिपर स्वाधीनता रखनेवाले असरका बंद होजाना ही मृत्यु है। मरनेके बाद शारीरिक शक्तियाँ बिखर जाती हैं। मृत्युसे मतलब जीवनका अंत नहीं है; किंतु शरीरसे किसी जीवन शक्तिका भिन्न होजाना है। इसीको हम यह कह सकते हैं कि शरीरसे आत्मा भिन्न होगया।

प्रोफेसर हडसन साहब अपनी पुस्तकमें लिखते हैं—"जाननेवाला मन एक भिन्न पदार्थ है जिसमें स्वाधीन शक्तियें व क्रियाएं होती हैं। इसका मानसिक प्रबन्ध अपना ही है, वह शरीरसे स्वतंत्र अपनी मौजूदगी रखता है। दूसरे शब्दोंमें यही आत्मा है।"* तीसरे

---

* Sir Oliver Lodge says " I am convinced that we ourselves are not extinguished when we die. Personality continues we ourselves in our own real essence do not decay or wear out, we continue in a permanent existence beyond the life of the material, fleshly organism (appeared in Bombay Chronicle. 29-11-1926.)

Raymond by Sir Oliver Lodge-

Death is the cessation of that controlling influence over matter and energy, so that thereafter the uncontrolled activity of physical and chemical forces supervene. Death is not the absence of life merely, the term signifies its departure or separation, the severance of the abstract principle from the concrete residue. The term only truly applies to that which has been living.

Death, therefore, may be called a dissociation, a dissolution, a separation of a controlling entity from a physico-chemical organism; it can only be spoken of in general and vague terms as a separation of soul and body if the term 'soul' is reduced to its lowest denomination when used in connexion with animals and plants.

पश्चिमीय विद्वान प्रोफेसर विलियम मैकडागल साहब अपनी पुस्तकमें लिखते हैं " हमको अवश्य मानना पड़ता है कि अंतःकरणके कार्य किसी एक पदार्थके कुछ कार्य हैं। वह पदार्थ मगजका कोई भाग नहीं है न वह कोई जड़ पदार्थ है किंतु वह सब तरहके जड़ पदार्थोंसे जुदा है। हम उसे एक अमूर्तिक पदार्थ या जीव मानसक्ते हैं।*

इसलिये जड़से भिन्न कोई जाननेवाला पदार्थ आत्मा है ऐसा आपको मानना पड़ेगा। यह भी आपको समझना चाहिये कि यह आत्मा एक अखंड पदार्थ हमारे शरीरमें व्यापक है, फैला हुआ है। क्योंकि हमें दुःख या सुखकी वेदना सर्वांग होती है। यदि पगमें चोट लगे तब सर्व शरीरभरमें दुःख मालूम पड़ता है। जब हमें किसी मित्रको देखकर खुशी होती है तब सुखका भान सर्वत्र होता है। जबकि शरीरमें जहां बिगाड़ होता है वहीं होता है। यदि पगमें फोड़ा हुआ है तब वह पगमें ही बिगाड़ है, मस्तकमें नहीं है परन्तु दुःखकी वेदना हमें सब तरफ होती है। इससे यह

---

* Professor T. J. Hudson in his book "A scientific demonstration of future life" says "The subjective mind is a distinct entity, possessing independent powers and functions having a mental organisation of its own, and being capable of sustaining an existence independent of the body In other words it is the Soul.

Professor William Macdougall in his book "Physiological Psychology" say "we are compelled to admit that the so-called Psychical elements are partial affections of a single substance or being and since this is not any part of the brain, it is not a material substance, but differs from all material substances. We must regard it as an immaterial substance or being."

बात समझनेकी है कि आत्मा तो एक अखंड सादा पदार्थ है। (is one whole unbroken simple substance) जबकि शरीर मकानके समान हड्डी, मांस आदि अंग उपांगोंके जुड़नेसे बना है।

शिष्य—गुरुजी, मुझे आपसे आज यह जानकर बड़ा आनंद हुआ कि मैं आत्मा हूं, और शरीर मेरे रहनेका घर है। आत्मा चेतन है, शरीर अचेतन जड़ है। क्या शरीरके छूटने वक्त आत्माका नाश नहीं होता है ?

शिक्षक—प्रिय भाई ! आप तो बड़े विद्वान हैं। आपको तो मालूम है कि इस लोकमें न कुछ नया आता है न कुछ नाश ही होता है। मात्र अवस्थाएं ही बदला करती हैं। जो कोई वस्तु बनती है वह किसी पहली वस्तुकी दूसरी बदली हुई शकल है। जो कोई वस्तु बिगड़ती है वह कोई दूसरी शकलमें बदल जाती है। कपड़ा रूईकी बदली हुई शकल है। कपड़ेको जलानेपर कपड़ेकी राख कपड़ेकी बदली हुई शकल है। पानीकी बदली हुई शकल भाफ है या मेघ है। मेघोंकी बदली हुई शकल वर्षाका पानी या ओले हैं। कोई वस्तु नहींसे नहीं बनती है, कोई वस्तु सर्वथा नहीं बिगड़ती है।‡ अवस्थाएं ही बनती व बिगड़ती हैं। जिनमें अवस्थाएं होती हैं वे न बनते या बिगड़ते हैं जैसे परमाणु जड़ सदा बने रहते हैं उनसे अनेक वस्तुएं बनती हैं तथा बिगड़ती हैं। वैसे आत्मा पदार्थ भी सदा बना रहता है। न कभी जन्मता है और न कभी मरता है।

---

‡ Nothing new is created, nothing is destroyed, only modifications appear. Nothing comes out of nothing, nothing altogether goes out of existence.

शिष्य—क्या हमारा आत्मा भी स्वभावसे ईश्वर है ? कृपाकर विशेष समझाइये ।

शिक्षक-यह आपको याद रखना चाहिये कि हरएक द्रव्य या पदार्थमें बहुतसे गुण और स्वभाव हुआ करते हैं। जैसे जड़ मिट्टी आदिमें चार गुण साफ प्रगट हैं स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, वैसे आत्मामें ज्ञान, शांति, आनंद व अमूर्तीकपना मुख्य गुण है। यद्यपि गुण तो और भी हैं परन्तु आत्माका स्वभाव समझानेके लिये आपको कुछ समझने योग्य गुण ही हमने बतलाए हैं । हम आपको समझा देंगे कि ये गुण आत्मामें स्वभावसे हैं या नहीं। आप दिल लगाकर सुनें, आप थोड़ी देरके लिये और चिंताएं छोड़दें ।

शिष्य—मुझे बड़ा आनन्द आरहा है । आप अच्छी तरह कहिये, मैं निश्चिन्त हूं ।

शिक्षक—आत्मामें ज्ञान गुण है यह तो आप भले प्रकार समझ गए हैं । वर्तमानमें हमारी और आपकी आत्मामें ज्ञान गुण मलीन है इससे हम व आप कम जानते हैं। मूल स्वभावमें ज्ञान गुण उसको कहते हैं जो सब जानने लायक बातोंको जान सके । मूल स्वभावमें हरएक आत्मा सर्वज्ञ स्वरूप है । सब कुछ जाननेकी शक्ति इसमें है । यदि पूर्ण ज्ञानकी शक्ति हरएक आत्मामें न हो तो ज्ञानका विकाश या प्रकाश न हो। ज्ञान भीतरसे ही उन्नति करता हुआ या बढ़ता हुआ चला जाता है। जितना २ हमारा अज्ञान पुस्तकोंके निमित्तसे व शिक्षकोंके निमित्तसे हटता जाता है उतना २ ज्ञान प्रगट होता जाता है। जैसा मैले सुवर्णमें सुवर्णकी सारी चमक है लेकिन वह मैलसे ढकी हुई है। जितना २ मैल

हटता जाता है, चमक अधिक२ झलकती जाती है। जब पूर्ण मैल हट जाता है, सोना अपनी असली चमकमें चमक जाता है।

यह तो आप जानते हैं कि जब बालक थे तब बहुत कम जानते थे अब आपका ज्ञान बहुत बढ़ गया है। क्या आप बताएंगे कि आपका ज्ञान कैसे बढ़ा ?

शिष्य-पढ़नेसे, सुननेसे, अनुभवसे ज्ञान बढ़ गया है।

शिक्षक-परन्तु आप मुझे यह बताइये कि आपके ज्ञानकी जो बढ़वारी हुई है सो यह अधिकता कहांसे आकर मिली। क्या आपके अध्यापकोंने आपको दी, क्या पुस्तकोंने आपको दी ?

शिष्य-मैं समझता हूं कि मैंने ज्ञान अध्यापकोंसे तथा पुस्तकोंसे पाया है।

शिक्षक-जब अध्यापकोंने ज्ञान दिया तब जितना आपको उनसे मिला उतना ज्ञान क्या अध्यापकोंका कम होगया ? पुस्तकोंसे आपने जितना ज्ञान पाया क्या उतना ज्ञान पुस्तकोंमेंसे घट गया ? क्योंकि यह नियम है कि जहां बढ़ती होगी तो कहीं घटती भी होगी। जैसे आपको कोई सौ रुपये दे तो सौ रुपये देनेवालेके पाससे जरूर कम होजायंगे।

शिष्य-मैं समझता हूं कि मेरे पढ़ानेवालोंका ज्ञान भी घटा नहीं न पुस्तकोंका ज्ञान घटा, किन्तु मेरा बढ़ जरूर गया है।

शिक्षक-तब यह बढ़ती अवश्य किसी बाहरकी वस्तुसे आपके पास नहीं आई किन्तु आपके पास ही इस ज्ञानकी उन्नति हुई है। जितना२ अज्ञान मिटता गया आपका ज्ञान विकसित होता गया। यदि पूर्ण ज्ञानकी शक्ति न होती तो ज्ञानका प्रकाश नहीं होता।

जगतमें भी यही प्रसिद्ध है कि इसने विद्यामें बहुत उन्नति की। उन्नति शब्द वहींपर आता है जहां शक्ति अप्रगट हो वह प्रगट हो जावे। यह रत्न चमक गया इसके अर्थ यही हैं कि रत्नमें चमकनेकी शक्ति थी ही, शानमें घिसनेसे ऊपरका मैल कट गया, रत्न चमक उठा। यही बात ज्ञानके प्रकाशमें है। एक आत्माके ज्ञानकी उन्नतिकी कोई सीमा नहीं होसक्ती है। जितना२ साधन मिले उतना२ इसके ज्ञानका विकाश होता जाता है। कोई२ आत्माको अल्पज्ञानी ही मानते हैं। जब हवाई विमान नहीं निकले थे, बेतारका तार नहीं चला था तब वे लोग यही जानते थे कि आत्माको कभी ऐसा ज्ञान हो ही नहीं सक्ता है। अब इन आविष्कारोंको देखते हुए उनको मानना पड़ेगा कि वे भूलमें थे। वास्तवमें हरएक आत्मा परमात्माके समान स्वभावसे सर्वज्ञ है या पूर्ण ज्ञानकी शक्ति रखता है, विना ऐसा समझे हुए ज्ञानका प्रकाश नहीं बन सकेगा।

शिष्य–आपकी बात मेरी समझमें बहुत अच्छी तरह आगई। असलमें ज्ञानका भीतरसे ही विकाश होता है। क्योंकि इसका अमर्यादित विकाश हो सक्ता है इसलिये आत्माके भीतर पूर्णज्ञानकी शक्ति अवश्य मानना पड़ेगी।

शिक्षक–इसीतरह आपको मानना होगा कि आत्माका स्वभाव शीतल व शांतिमय है। यह स्वभावसे क्रोधी, मानी, लोभी आदि नहीं है। क्या आप क्रोध मान माया लोभको दोष समझते हैं या गुण?

शिष्य–मैं क्या सारी दुनिया क्रोधादिको दोष मानती है।

शिक्षक–वास्तवमें क्रोधादि विकार हैं, दोष हैं, इसलिये ये क्रोधादि कभी भी आत्माके स्वभाव नहीं होसक्ते हैं। हम आपको

इसी तरह आनन्द गुण भी इस आत्माका स्वभाव है। इसका मोटा प्रमाण यह है कि जब हमारे भीतर शांति रहती है तो सुख स्वयं मालूम पड़ता है और जब अशांति होती है तो क्लेश स्वयं अनुभवमें आता है इसलिये जैसे ज्ञानके साथ शांतिकी मित्रता है वैसे सुखकी भी मित्रता है। हमारे सुख गुणको अधिकतर मोहने विपरीत कर रक्खा है। मोहका अंधेरा ऐसा छाया हुआ है कि हम यही जानते हैं कि इन्द्रियोंके भोगोंसे ही सुख होता है। इंद्रिय सुख ही सुख होता है। इस (sensual pleasure) इंद्रिय सुखके लिये हम रात दिन इन्द्रियभोग संबन्धी पदार्थोंको लिया करते हैं. छोड़ा करते हैं। उनहीके मोहमें भूले रहते हैं। देखो. सवेरेसे शाम-तक व शामसे सवेरेतक हम शरीरकी, धनकी, कुटुम्बपरिवारकी, मित्रोंकी ही चिंतामें, उन हीकी तरफ आकर्षित रहते हैं। कभी भी इस अन्ध मोहको छोड़ते नहीं हैं इसीसे अपने ही पास जो सच्चा सुख है उसे हम नहीं भोगरहे हैं।

शिष्य—यह बात मेरी समझमें नहीं आई कि इन्द्रिय सुखसे भी भिन्न कोई सुख है। हम तो यह जानते हैं कि जब हम स्वादिष्ट वस्तु खाते हैं, अपने मित्रके हाथका स्पर्श करते हैं. सुगंधित फूलोंको सूंघते हैं, सुन्दर वस्तु देखते हैं, रसिला गाना सुनते हैं तब हमें सुख होता है इसके सिवाय भी कोई सुख क्या जाननेमें आता है?

शिक्षक—प्रिय भाई! इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाला सुख सुखसा दीखता है परन्तु वह सुख यथार्थ नहीं है. वह तो दुःखकी कमी है जिसे सुख समझ लेते हैं। जब इन्द्रिय द्वारा भोगकी चाह उठती है वही दुःख है। जब वह दुःख कुछ कम होजाता है तब

हम उसे सुख कहते हैं। यह सुख इसलिये नहीं है कि इस सुखा-भासमे तृप्ति नहीं होती है, उलटी चाहकी दाह बढ़ जाती है, तृष्णा अधिक होजाती है। जितनी इच्छाएं हम रखते हैं उतनी ही बीमारियां हमारे पास हैं Desires are diseases यदि कोई बिमारी कुछ कम होती है, हम सुख मान लेते हैं। हमें पांचो इन्द्रियोंकी बहुतसी इच्छाएं रहती हैं जिनमें बहुतसी पूरी ही नहीं होती हैं। हम आपको बताएंगे कि इन्द्रिय सुखके सिवाय भी कोई सुख है। अच्छा क्या आपने कभी स्वयंसेवकी की है ?

शिष्य—मैंने एक दफे जब मेरे यहां एक जैन मेला था तब स्वयंसेवकीका काम किया है।

शिक्षक—क्या उस कर्तव्यको पालन करते हुए कभी आपत्तियां या कष्ट तो नहीं आए थे ?

शिष्य—एक रातको मेरी ड्यूटी यह बांधी गई थी कि मैं डेरोंके आसपास पहरा दूं। कारणवश उस रातको पानी खूब बरसा। मैं पानीहीमें छतरी लगाकर अंधेरी रातमें लालटेन लिये पहरा दिया। एक पहरेदारके समान सब कर्तव्य पाला।

शिक्षक—अच्छा बताओ। ऐसा कष्ट सहते हुए तुम्हें मनमें दुःखका अनुभव हुआ था या सुखका ?

शिष्य—क्या कहूं ! मुझे तो बड़ा सुख मालूम पड़ा था।

शिक्षक—ऐसा क्यों मालूम पड़ा ? यदि आप घरमें आरामसे बैठे हों और कोई आज्ञा करे कि रातको पानी बरसतेमें पहरा दो तो आप उस आज्ञाको नहीं मानोगे; क्योंकि यह जानते हो कि पानीमें भीगनेसे तो कष्ट होगा फिर इस स्वयंसेवकीका कर्तव्य पालते हुए

सुख कैसे मिला ? प्रगट रूपसे तो यह दुःखकारक काम था।

शिष्य—मैं समझता हूं कि उस समय मैं जातिसेवाका काम मनसे कर रहा था, इससे मुझे सुख मिला था।

शिक्षक—तब उस समय क्या आपने पांचों इन्द्रियोंके भोग भोगे थे जो सुख मिला ?

शिष्य—नहीं, पांचों इन्द्रियोंके भोग नहीं भोगे थे, वहां तो भोगके साधन भी नहीं थे। अंधेरी रातमें खड़े २ घूमता था, न कोई गाना था न बजाना था, न खाना था न पीना था, न सुन्दरताका देखना था, न सूंघना था, न किसी मित्रका समागम था।

शिक्षक—तब आपके कहनेसे ही यह बात आगई कि आपने इन्द्रियोंके भोगोंके विना भी कोई सुख पालिया जो सुख इन्द्रिय सुख नहीं है किंतु इन्द्रियसुखसे भिन्न है।

शिष्य—इसमें संदेह नहीं कि यह सुख इन्द्रियसुखसे भिन्न है तो क्या यही आत्माका स्वाभाविक सुख है ? यदि ऐसा है तो मुझे स्वयंसेवकीका कर्तव्य पालते हुए क्यों झलका तथा और समयपर क्यों नहीं मालूम पड़ता ?

शिक्षक—वास्तवमें यह सुख भीतरसे उठा है, यह आत्माके स्वाभाविक गुणका ही झलकाव है। स्वयंसेवकी एक परोपकारका काम है। जब आपने इस ड्यूटीको हाथमें लिया तब यह मंशा करली थी कि हम शरीरसे, मन परसे, आरामसे मोह छोड़कर जो कुछ छोटीसी भी सेवा होगी उसको बजायेंगे अर्थात् अपने मोहको कम किया था। और जब स्वयंसेवकी का कर्तव्य पाल रहे थे तब भी मोहको छोड़े हुए स्वार्थ [illegible]। मोहने ही [illegible]

आत्माके सुख गुणको ढक रक्खा था। जितना अंश आपका मोह हटा था उतना अंश उस अंतरंगके सच्चे सुखका कुछ स्वाद आपको आगया। यदि आत्मामें सुख गुण नहीं होता तो कभी भी परोपकार करते हुए सुख नहीं भासता। यदि कोई एक क्षणके लिये बिलकुल मोह छोड़ दे और आत्माकी ओर प्रेमी होजावे तो वह यह अनुभव करेगा कि वह परम सुखी है। इसलिये आपको यह निश्चय करना चाहिये कि आत्माका एक गुण आनन्द है।

शिष्य-गुरुजी! आज तो आपने मुझे बड़ी ही कामकी बात बता दी, मैं तो बहुत अंधेरेमें था। मैं विषयभोगको ही सुख जानता था। आज मैंने निश्चय करलिया और खूब समझ लिया कि सच्चा सुख मेरे आत्माका स्वभाव है। इन्द्रिय सुख अतृप्तिकारी है व चाहकी दाहको बढ़ानेवाला है। वास्तवमें दुःखकी कुछ कमीको ही इन्द्रिय सुख कहते हैं।

शिक्षक-इसी तरह यह आत्मा अमूर्तीक है, इसमें जड़ Matter के गुण जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हैं सो नहीं हैं इसीसे हम आत्माको हाथोंसे छूकर, जबानसे चखकर, नाकसे सूंघकर व आंखोंसे देखकर नहीं जान सके हैं। यह जड़ पुद्गल गुणोंसे जुदा ही है यह तो एक [illegible] [illegible] पदार्थ है इसीसे यह अमूर्तीक Immaterial कहा है।

शिष्य-इस आत्माका कुछ आकार है या नहीं।

शिक्षक-अवश्य है। जो इस जगतमें है कुछ न कुछ [illegible] [illegible] है, क्योंकि आकाश सबको जगह [illegible]। जो कोई [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible]। फिर यह पूछे कि

वहां कितनी जगहको घेरे हुए है। जवाब होगा कि वह घड़ी जितनी जगह घेरे हुए है वही उस घड़ीका आकार है। इसी तरह हम जितनी जगह घेरे हैं वह हमारा आकार है। आप जितनी जगह घेरे हुए हो वह आपका आकार है। तथा हम ज्ञानका काम व सुख दुःखका जानना सर्व शरीरभरसे कर सक्ते हैं, शरीरसे बाहरकी चीजको जो हमसे नहीं छूरही है उसके स्पर्शको हम मालूम नहीं करसक्ते न उसके बिगाड़ सुधारका कोई दुःख सुख हमें सहन होता है। यदि एक ही समयमें हमारे सारे शरीर भरमें सुइयां चुभादी जावें तो हमें सारे शरीरभरमें एक साथ दुःखका अनुभव होगा। यदि हमारे शरीरसे एक इंच दूर हवामें सुइयां हिलाई जावे या भोंकी जावें तो हमें उसका कुछ भी दुःख नहीं मालूम होगा। इससे यह जाना जाता है कि हरएक संसारी आत्माका आकार उसके शरीर भरके बराबर है। आत्मा अपने शरीररूपी घरमें फैला रहता है।

शिष्य—परन्तु शरीर तो छोटेसे बड़ा होता है, कभी बीमारीमें बड़ेसे कुछ छोटा होजाता है। बालकावस्थामें शरीर जरासा था युवानीमें बड़ा होगया, तब क्या आत्मा भी छोटेसे बड़ा व बड़ेसे छोटा होता है?

शिक्षक—वास्तवमें यही बात है, जैसे एक दीपकका उजाला एक घड़ेमें घड़ेभरमें ही फैलेगा, वही उजाला एक कोठरीमें कोठरीभरमें फैलेगा, वही एक कमरेमें कमरेभरमें फैलेगा, वही मैदानमें और भी अधिक फैलेगा। जैसे दीपकके प्रकाशमें फैलनेकी व सकुड़नेकी शक्ति स्थान व पात्रके आधारसे है वैसे इस संसारी आत्मामें शरीरके आधारसे फैलने सकुड़नेकी शक्ति है। यही कारण है कि एक

मानवका जीव मरनेके बाद एक गायके गर्भमें जाकर छोटा उसी बछड़ेके आकार होजाता है या एक हाथीका जीव मरनेके बाद यदि चींटी जन्मे तो चींटीके आकार होजाता है। यह बात प्रत्यक्ष प्रगट है, हम व आप सब अनुभव कर सक्ते हैं।

शिष्य—तब यह तो बताइये कि इस आत्मामें कहांतक फैल-नेकी शक्ति है?

शिक्षक—इस आत्माका आकार निश्चयसे या असलमें इतना बड़ा है जितना बड़ा यह जगत है। किसी समय यह सब जगतमें भी व्याप जाता है।

शिष्य—फिर इसको निराकार क्यों कहते हैं?

शिक्षक—जड़मई आकार आत्माका ऐसा नहीं है जिसे हम देख सकें या छू सकें, इसलिये इसे निराकार कहते हैं। यह अमूर्ती-कके ही अर्थमें है। कोई भी आकार आत्माका नहीं है, यह अर्थ निराकारके नहीं है।

शिष्य—अच्छा! आपने यह बताया था कि सब आत्माएं स्वभावसे बराबर हैं, सबका मूल स्वभाव एकसा है। सो मैं आपके समझानेसे समझ गया कि हरएक आत्मा स्वभावसे सब कुछ जान-नेकी शक्ति रखता है, परम शांतिमय है, परमानन्दमय है व अमूर्तिक है अर्थात् हरएक आत्मा स्वभावसे परमात्मा या ईश्वर है। अब यह बताइये कि फिर यह अशुद्ध क्यों है तथा यह भिन्नता जगतकी आत्माओंमें क्यों मालूम पड़ती है? क्यों एक पशु है, क्यों एक पक्षी है, क्यों एक मानव है, क्यों एक स्त्री है, क्यों एक पुरुष है, क्यों एक सुखी दिखता है, क्यों एक दुःखी दिखता है, क्यों एक बलवान

है, क्यों एक निर्बल है, क्यों एक धनवान है, क्यों एक निर्धन है, क्यों एक जल्दी मरता है, क्यों एक दीर्घकाल जीता है, क्यों एक शांत स्वभावी है, क्यों एक क्रोध स्वभावी है, क्यों एक चतुर है, क्यों एक मूर्ख है ?

शिक्षक—आपका प्रश्न बहुत उपयोगी है और अच्छी तरह समझने लायक है। पहले हम आपको एक दृष्टांत देकर बतावेंगे। यदि हमने रुईके बने कपड़ेसे ५० कुरते बनवाए और हमने पचासों कुरतोंको पचास किस्मके रंगोंमें घोल करके रंगीन कर दिया। अब ये कुरते एक रुई जातिके सफेद होनेपर भी विचित्र दीख रहे हैं। इसका कारण भिन्न२ प्रकारके रंगका संयोग है। इसी तरह इस आत्माके साथ किसी ऐसे जड़ पदार्थका सम्बन्ध है जो नाना प्रकारका है। इसी कारण जगतके संसारी जीवोंमें भिन्नता दिख रही है। पहला सम्बन्ध तो इस दिखनेवाले मोटे शरीरसे ही है। सबका शरीर एकसा नहीं है, परन्तु यह तो छूटता है व फिर दूसरा मिलता है। एक ऐसा महीन जड़ पदार्थ इस संसारी आत्माके साथ रहता है जिसके असरसे इसकी दशा भीतरी व बाहरी तरह२की होती है। इस सूक्ष्म जड़ पदार्थको कार्मण शरीर (Karmic body) या कारण शरीर कहते हैं। इस स्थूल शरीरके छूटनेपर भी वह साथ रहता है। इसीके असरसे पशु, पक्षी, पुरुष, स्त्री, गाय, भैंस, हिरण, मक्खी, चींटी, लट, वृक्ष आदि रूपधारी होता है। इसीके असरसे भीतरी व बाहरी दशा जीवोंकी होती है। यह कार्मण शरीर सूक्ष्म जड़ स्कंधोंसे बनता है जिनको कार्मणवर्गणा (Karmic molecules) कहते हैं। इन सब संसारी जीव जब कुछ भी अपने मनसे, वचनसे

या कायसे अच्छा या बुरा काम करते हैं तब हमारे भीतर हरकत पैदा होती है उसी समय ये कर्मके स्कंध खिंचकर आजाते हैं और हमारे कार्मण शरीरमें बन्ध जाते हैं। जैसे गर्मीका निमित्त पाकर पानी स्वयं भाफरूप होजाता है, वैसे हमारे अच्छे या बुरे भावोंके निमित्तसे ये स्कंध स्वयं आकर मिल जाते हैं तब इन्हींको पुण्य पापकर्म कहते हैं, भाग्य कहते हैं, किस्मत कहते हैं, फेट (fate) कहते हैं, अदृष्ट कहते हैं प्रकृति कहते हैं, माया कहते हैं।

शिष्य—पुण्य पापमें क्या भेद है?

शिक्षक—जब हमारे भाव अच्छे कार्योंकी तरफ होते हैं तब हम जिन कर्मोंको बांधते हैं उनको पुण्य कर्म कहते हैं। जब भाव बुरे कार्योंकी तरफ होते हैं तब हम जिन कर्मोंको बांधते हैं उनको पाप कर्म कहते हैं।

शिष्य—कृपा कर अच्छे या बुरे भावोंके नमूने बताइये।

शिक्षक—जब हम जीवदया, परोपकार, दान, सत्य वचन, सत्य व्यवहार, ईमानदारी, संतोष, ब्रह्मचर्य पालन, क्षमा, विनय, सरलता, शुचिता, इन्द्रियनिग्रह, मननिग्रह, वैराग्य, परमात्मभक्ति, उत्तम शास्त्र पढ़ना, सच्चे गुरुकी सेवा, आदि प्रसन्नताके भाव करते हैं तब पुण्यकर्म बांधते हैं। जब हम हिंसा, परपीड़ा, असत्य वचन, चोरी, कुशील, अति लोलुपता, इंद्रिय लम्पटता, क्रोध, मान, माया, लोभ, काम विकार, कुटिलता, अविनय, ईर्षा, घृणा, भीति, शोक, मूर्छा, पासा जुआ, जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पीना, शिकार खेलना, वेश्या प्रसंग, परस्त्री प्रसंग आदि खोटे भाव करते हैं तब पापकर्म बांधते हैं। ये पुण्य या पापकर्म बंधनेके पीछे जब समय पाकर

पकते हैं तब अच्छा या बुरा फल देते हैं। जैसे हम शरीरमें हवा, पानी, भोजन लेते हैं। ये सब भीतर पक कर अपना फल स्वयं खून, चरबी, मांस, हड्डी व वीर्यमें पलटते हैं। वीर्यकी शक्तिसे हम लोग चलते फिरते, देखते सुनते, दौड़ते बैठते आदि जीवनके काम करते हैं। वैसे ही इस सूक्ष्म कार्मण देहमें संचय किये हुए पुण्य या पापकर्म अपने अवसरपर पककर अच्छा या बुरा फल दिखाते हैं। जो कर्म सूक्ष्म शरीरमें बंधते हैं उनके मूल आठ भेद हैं—

(१) ज्ञानावरण कर्म--जो ज्ञान स्वभावको ढकता है।

(२) दर्शनावरण कर्म—जो देखनेके स्वभावको ढकता है।

(३) मोहनीय कर्म--जो मदिराके समान भ्रममें डालता है, रागद्वेष मोह पैदा करता है, शांतभाव व सच्चे विश्वासको भ्रष्ट करता है।

(४) अंतराय कर्म—जो आत्मबलको रोकता है।

(५) आयु कर्म-जो किसी शरीरमें कैद रखता है।

(६) नाम कर्म-जो शरीरकी रचना बनाता है।

(७) गोत्र कर्म—जो माननीय व निन्दनीय कुलमें जन्म कराता है तथा जिसके असरसे हम जगतमें ऊंच व नीच कहलाते हैं।

(८) वेदनीय कर्म—जो सुख दुःखकी सामग्रीका सम्बंध मिलाकर सुख दुःख भोगनेमें कारण होता है। इनमेंसे ऊपरके चार कर्मोंको घातिया (destructive) कहते हैं क्योंकि ये चार कर्म आत्माके स्वभावको बिगाड़ते हैं। बाकीके चार कर्मोंको अघातीय (non-destructive) कहते हैं क्योंकि ये केवल बाहरी सम्बन्ध मिलाते हैं।

जितना ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मोंका जोर हटा हुआ है

उतना ज्ञान व दर्शन गुण हमारा प्रगट है। जितना ज्ञान व दर्शन ढका हुआ है वह ज्ञानावरण दर्शनावरणका असर है। जितना अंतराय कर्म हटा हुआ है उतना आत्मबल प्रगट है। जितना आत्मबल ढका हुआ है वह अंतरायकर्मका असर है। एक बात यह भी समझलो कि जितना गुण आत्माका प्रगट है उसे पुरुषार्थ कहते हैं। जितनी कर्मोंके असरसे मलीनता है या कर्मोंका बाहरी फल होता है उसे दैव कहते हैं।

शिष्य—जरा कृपा करके दैव और पुरुषार्थको ठीक ठीक बताइये। मैं इस बातको अच्छी तरह जानना चाहता हूं।

शिक्षक—ऊपर हमने बताया है कि चार घातीय कर्म आत्माके गुणोंको बिगाड़ते हैं। इनमेंसे तीनके दबनेसे जितना ज्ञान, दर्शन, आत्मबल प्रगट है, यही वह शक्ति है जिससे हम विचारपूर्वक किसी कामका उद्यम कर सक्ते हैं। यह दैव व कर्मसे उल्टी वस्तु है, इसे ही पुरुषार्थ या उद्योग कहते हैं। यह हमारा शस्त्र जगतमें काम करनेके लिये है। चौथा मोहनीय कर्म है जब वह कुछ दबता है तब जितनी शांति प्रगट होती है वह भी पुरुषार्थमें गर्भित होजाती है। वह शांति भी हमारे उद्योगमें सहायक होती है। हरएक मानवको उचित है कि वह इस पुरुषार्थसे विचारपूर्वक लौकिक या पारमार्थिक काम करे। यदि कभी कर्मोंका उदय प्रतिकूल होगा तो काम सिद्ध न होगा, यदि अनुकूल होगा तो काम सिद्ध होजायगा। बहुधा हमारी उत्तम बुद्धि द्वारा विचार किये हुए काम सफल होजाया करते हैं। जैसे हम किसी व्यापारको बुद्धिसे विचारकर अपने अल्पबलके अनुकूल करें, यदि साता वेदनीय कर्म

अनुकूल होगा व अंतराय कर्म बाधक न होगा तो हमारे मनके अनुकूल कार्य सिद्ध होजायगा। व्यापारमें लाभ होगा। यदि कर्म प्रतिकूल होगा तो हानि होगी। हमने विचारपूर्वक किसी गाड़ी घोड़ेकी सवारी की और मार्गमें जाने लगे, यदि कर्म प्रतिकूल होगा तो हमारी गाड़ी लड़खड़ायेगी और हमें चोट लगजायेगी। जगतमें पुरुषार्थ और दैव दोनोंकी आवश्यकता है। एक दूसरेसे विरुद्ध हैं। जो प्रबल होता है उसकी विजय होजाया करती है।

अब आप यह समझ गये होंगे कि यह आत्मा कर्म जड़के संयोगके कारण अशुद्ध है जब कि स्वभाव इसका शुद्ध है। जैसे मैला पानी मैलके संयोगसे अशुद्ध है, पानीका स्वभाव शुद्ध है। मैला कपड़ा मैलके संयोगसे अशुद्ध है, स्वभावसे सफेद रुईका है। मैला सुवर्ण कालिमाके संयोगसे मैला है, स्वभावसे शुद्ध है। इसी तरह आत्मा स्वभावसे शुद्ध है, मात्र जड़ कर्मके संयोगसे अशुद्ध है।

अब आपसे कोई पूछे कि आप कौन हैं तो आप क्या उत्तर देंगे !

शिष्य–अब तो मैं बहुत अच्छी तरह समझ गया हूं। मैं यही कहूंगा कि स्वभावसे मैं शुद्ध आत्मा हूं जिसमें पूर्ण ज्ञान है, पूर्ण शांति है, पूर्ण आनन्द है, स्वभावसे मैं अमूर्तीक हूं, कर्मके संयोगसे मैं अशुद्ध हूं। मेरेमें जो वर्तमान अवस्था होरही है वह कर्मोंका असर है।

शिक्षक–वास्तवमें आप समझ गए हैं कि आप कौन हैं। जब आप अपनेको समझ गए हैं तब क्या आपने दूसरेको नहीं समझा है ?

शिष्य–मैंने सर्व ही चेतन शरीरधारी प्राणियोंको अपने समान समझ लिया है। सर्व ही शरीरधारी प्राणियोंमें स्वभावसे आत्मा शुद्ध है, कर्मसंयोगसे अशुद्ध है।

शिक्षक–एक बात ध्यानमें रक्खो कि यह संसार एक नाटकघर है जिसमें यह जीव जड़की संगतिसे नाना प्रकार पशु, पक्षी, कीट, वृक्ष, मनुष्य आदिके रूप बनाकर वर्तन किया करता है। स्वभावसे सब ही शुद्ध आत्मा हैं।

शिष्य–अब यह बताइये कि मेरा कर्तव्य क्या है?

शिक्षक–कल इसी समय मिलेंगे तब बतावेंगे।

दूसरा अध्याय ।

मेरा कर्तव्य ।

शिक्षक—आपने कल प्रश्न किया था कि मेरा कर्तव्य क्या है, मैं आपको बतानेकी कोशिस करूंगा । आप भीतरसे क्या चाहते हैं ?

शिष्य—हम यही चाहते हैं कि सुखशांतिसे जीवन वितावें व जगतकी कुछ सेवा बने तो कर जावे । मैं समझता हूं कि हरएक बुद्धिमान मानव ऐसा ही चाहता है। कोई भी दुःख व अशांतिको नहीं चाहता है।

शिक्षक—आपका विचार बहुत ही ठीक है। मानव जीवनके दो ही मुख्य उद्देश हैं—एक सुखशांतिका लाभ, दूसरा परोपकार । मानव सबसे बड़ा प्राणी है ऐसा यह अपनेको समझता भी है। इसलिये जो बड़ा होता है उसका काम यही होता है कि अपनेसे छोटोंकी रक्षा करे व सेवा करे । उनका उपकार करे। बराबरवालोंका भी भला करे व उनसे प्रेम रक्खे । इसलिये मानवका कर्तव्य है कि यदि त्यागी हो तो जगतका उपकार करे, सबको समानभावसे देखकर उत्तम उपदेश देवे, मार्ग बतावे। यदि गृहस्थ हो तो अपने मुख्य सम्बंधी स्त्री पुत्रादिका सच्चा उपकार करे, अपने कुटुम्बियोंकी सच्ची भलाई करे, अपनी जातिकी सेवा करे, धर्मकी सेवा करे, नगर व ग्रामकी सेवा करे, स्वदेशकी सेवा करे, जगतके मानवोंकी सेवा करे, पशु समाजकी सेवा करे, इत्यादि छोटे छोटे प्राणियोंकी सेवा करे, जितना अधिक व जितना विस्तारसे हो सके करे । परोपकारसे ही मानवका मनुष्यपना सफल होता है।

शिष्य—कृपाकर यह बताइये कि सुखशांतिका लाभ कैसे हो?

शिक्षक—यह बात हम आपको बहुत अच्छी तरह बताएंगे, आप ध्यान देकर सुनें। यह तो आप भले प्रकार जान चुके हैं कि सुख व शांति ये दोनों आत्माके स्वाभाविक गुण हैं। जो आत्मा शुद्ध होता है उसको परमात्मा कहते हैं. उसके भीतर तो सर्व आत्मीक गुण पूर्णपने शुद्धतासे प्रकाशमान होजाते हैं। हम संसारी आत्माएं अशुद्ध हैं तथापि हमारी आत्मामें भी ये गुण हैं। हम किस-तरह इन गुणोंका स्वाद लें यही बात समझनेयोग्य है। हम आपसे पूछते हैं कि आपको मीठी नारंगीका स्वाद कैसे आता है?

शिष्य—जब हम नारंगीका गूदा जबानपर रखकर चाखते हैं तब उसका मीठा स्वाद आता है।

शिक्षक—यदि नारंगी खाते वक्त आपका मन व्याकुल हो, कहीं जानेकी आकुलता हो तो आपको स्वाद आयेगा या नहीं?

शिष्य—मैं समझता हूं कि जब हम स्थिरतासे चाखेंगे तब ही हमको स्वाद आयगा। घबड़ाहटमें स्वाद नहीं आयगा।

शिक्षक—आपका कहना ठीक है। असल बात यह है कि स्वादको जाननेवाला हमारा ज्ञान है जो जीभके द्वारा काम कररहा है। जब हमारा ज्ञान बिलकुल उस नारंगीकी ओर एकाग्र होगा अर्थात् उसी तरफ जम जायगा तब ही नारंगीका स्वाद आयगा। यदि डावांडोल ज्ञान होगा—उस नारंगीके स्वाद जाननेमें थिर न होगा तो कभी भी उसका स्वाद न आयगा। इसी दृष्टांतसे आपको मालूम हो कि जब सुख शांति अपने आत्मामें है तब अपनी आत्मा-की ओर एकाग्र होकर स्थिर होनेसे अर्थात् आत्मामें ज्ञानको

रोकनेसे या आत्मध्यानसे सुख शांतिका लाभ होगा। इसलिये यदि आपको सुखशांतिका लाभ करना है तो आत्मध्यान करनेका अभ्यास करना चाहिये।

शिष्य- गुरुजी ! हम आत्माका ध्यान कैसे करें ?

शिक्षक—आप विद्यार्थी हैं। आप ध्यानका थोड़ासा अभ्यास कुछ देर प्रारम्भ कर दीजिये। मैं आपको आत्मध्यानका उपाय बताता हूं। लोग कहते हैं बहुत कठिन है परन्तु आत्माको अभ्यास करनेसे सुगम मालूम होगा। आत्मध्यान एक तरहका व्यायाम है। जैसे शारीरिक व्यायाम करनेसे शरीर पुष्ट होता है वैसे आत्मिक व्यायाम करनेसे आत्मा बलवान होता है। जैसे शरीरकी कसरत शुरू करते हुए कठिन मालूम होती है लेकिन एक दफे शुरू कर दी गई और कुछ दिन जारी रक्खी गई तो फिर सुगम होजाती है वही हाल आत्मीक व्यायामका है। आप सवेरे सूर्यके उदयके कुछ पहले जब आकाशमें लाली छारही हो, बिछौना छोड़कर व हाथ पग धोकर यदि कुछ मनमें ग्लानि हो तो बदन पोछकर व कपड़े बदलकर एक आसन या पाटा बिछाकर अलग एकांतमें बैठ जावे। ५, १०, १५ जितने मिनट आप दे सकें उतनी देरके लिये आप यह इरादा करलें कि इतनी देरके लिये मैंने दुनियांके सब कामोंसे छुट्टी लेली है। मैं इतनी देर सिर्फ अपने आपसे बातें करूंगा; अपनी ही तरफ देखूंगा। किसी और वस्तुकी तरफ दिल न लगाऊंगा। ऐसा दृढ़ संकल्प करके आप बैठ जाइये और अपना आसन पद्मासन या अर्ध पद्मासन बना लीजिये।

दोनों पैर जांघपर रखकर बाएं हाथपर दाहना हाथ रखकर

सीधे बैठनेको पद्मासन कहते हैं। आपने कभी जैन मंदिरमें मूर्तिको देखा होगा, मूर्तिका आसन जो बैठे हुए मिलता है वह ऐसा ही पद्मासन होता है। जिसमें एक पग जांघके ऊपर हो एक पग जांघके नीचे हो वह अर्ध पद्मासन है। हाथ दोनों वैसे ही रहते हैं। आसन लगानेसे शरीर निश्चल होजाता है। ऐसा दृढ़ होजाता है कि तेज पवन भी नहीं हिला सक्ता है। आसनसे बैठकर अपने भीतर देखो कि निर्मल जलके समान आत्मा भरा हुआ है। जैसे निर्मल जल शुद्ध, शीतल व मीठा होता है वैसे यह आत्मा शुद्ध ज्ञान पूर्ण, शांतिमय व आनंदमई है। इस जल समान आत्मामें अपने मनको डुबादो। उसी तरह डुबादो जैसे नदीमें नहाते हुए पानीमें डुबकी लेते हैं, जब मन हटे तब नीचे लिखे मंत्रोंमेंसे कोई धीरे धीरे पढ़ते रहो, कभी मंत्र पढ़ना बंदकर आत्माके ज्ञान, शांति व आनंदके गुणोंको विचार लो फिर उसी जल स्वरूप आत्मामें मन डुबाओ। इस तरह तीन बातोंको बदलते हुए अभ्यास करो। (१) मनको आत्मामें डुबाना. (२) मंत्र पढ़ना. (३) गुणोंका विचार।

मंत्र कई हैं पर थोड़ेसे तुम्हें बताता हूं—

(१) ॐ, (२) अरहंत, (३) सिद्ध, (४) अरहंत सिद्ध, (५) सोऽहम्. (६) ॐ ह्रीं, (७) अर्हं, (८) णमो अरहंताणं, (९) णमो सिद्धाणं।

इनमेंसे कोई भी मंत्र पढ़ सक्ते हो। इस तरह जितनी देरका नियम हो उतनी देर अभ्यास करो। यदि मनमें दूसरे विचार आवे तो उसकी तरफ दिल न लगाओ, उनको तुर्त हटादो-यह कहदो कि इस समय तुम्हारा काम नहीं है फिर आना। जैसे हम किसी जरूरी

हिसाबको कर रहे हों उस समय कोई बात करनेको आता है तो हम कह देते हैं कि फिर आना, इसी तरह जो दूसरे विचार आवें उनकी तरफ यही उदासीन (indifference) भाव रखना चाहिये ।

आप देखेंगे कि ५-१० दिनके अभ्याससे ही आपको सुख शांति मिलने लगेगी व आपकी आत्मामें कुछ बल भी बढ़ेगा. जो आपके कालेजके पाठके स्मरणमें सहाई होगा !

शिष्य-आपने यह कहा था कि यह आत्मा अमूर्तीक है फिर इसको जलके समान कैसे मान सक्ते हैं ?

शिक्षक-आपका कहना ठीक है कि आत्मा अमूर्तीक है. परन्तु हमारे ज्ञानमें अमूर्तीकका ध्यान एकदमसे होना कठिन है । इसलिये हमें उस आत्माकी स्थापना (representation) किसी वस्तुमें करके मनको स्थिर करनेका अभ्यास करना चाहिये । अभ्यास करते करते कभी ऐसा समय आयगा कि जलके देखनेकी जरूरत न पड़ेगी । आत्मा स्वयं अपने ध्यानमें आजायगा ।

शिष्य-मैं तो कलसे ही ऐसा अभ्यास शुरू कर दूंगा। क्या ध्यानकी सिद्धिके लिये और कुछ भी काम जरूरी है ?

शिक्षक-बहुत अच्छा प्रश्न तुमने किया। प्रिय मित्र ! ध्यानेका अभ्यास वास्तवमें एक चित्रका खींचना है। जैसे चित्रके खींचनेका अभ्यास चार बातोंसे होता है. वैसे ध्यानका अभ्यास चार बातोंसे होता है ।

ये चार बातें हैं-(१) चित्रका नकशा देखना (२) नकशा खींचना किसी शिक्षकसे सीखना (३) चित्रविद्याकी पुस्तकें पढ़ना (४) कागज व पेन्सिल लेकर चित्र खींचनेका अभ्यास करना. इसी-

तरह आत्मध्यानके लिये चार बातोंकी जरूरत है। (१) आत्मध्यानमें लीन आदर्श मूर्तिका देखना व उसको देखते देखते आत्माके गुणोंका विचार करना व गुणसूचक पाठको पढ़ना (२) आत्मज्ञानी गुरुसे समझना (३) आत्मज्ञानवर्द्धक शास्त्रोंको पढ़ना (४) ध्यानका अभ्यास एकांतमें बैठकर करना।

शिष्य—क्या मूर्ति द्वारा भक्ति लाभकारी है सो किस तरह ?

शिक्षक—हम लोगोंका मन चंचल है इसलिये मूर्तिके द्वारा देर तक गुणोंके विचारमें लग सक्ता है। आंखोंकी दृष्टि जिस मूर्ति पर पड़ती है वैसा ही चित्तका भाव होजाता है। यदि हमारे सामने लोकमान्य तिलककी मूर्ति आवे तो उसको देखते ही तिलकके गुण स्मृतिमें आजाते हैं, देशभक्ति पैदा होजाती है। यदि हमारे सामने किसी सुन्दर स्त्रीकी मूर्ति आती है तो रागभाव पैदा कर देती है। यदि किसी पहलवान योद्धाकी मूर्ति आती है तो वीर भाव पैदा कर देती है। इसी तरह वैराग्यपूर्ण शांत ध्यानमय मूर्ति शुद्ध आत्माका स्मरण करा देती है। मूर्ति मात्र मूर्तिमानके भावोंको दर्शानेका एक चित्र है। फोटो देखकर यह हम जान सक्ते हैं कि जिसका फोटो है वह किस विचारमें फोटो लेते वक्त था—क्रोधमें था, लोभमें था, मानमें था, मायामें था, भयमें था, कामभावमें था, जिस किसी भावमें मानवका मन जमता है, वैसी ही छाया उसके मुखपर चमकती है फोटोमें वही छाया आती है। इसलिये फोटोका चित्र उसी चित्तकी दशाको बताता है, जो उस मानवमें उस समय था जब उसका फोटो लिया गया था। मूर्तिका सम्मान व निरादर उसीका सम्मान व निरादर समझा जाता है जिसकी मूर्ति है। यदि हम स्वामी दया-

नन्दके चित्रके सामने झुककर नमें तो स्वामीका ही सन्मान किया गया ऐसा समझा जायगा। इसी तरह यदि हम स्वामी दयानन्दके चित्रका अविनय करें—कदाचित् उसे पगके नीचे दबा लें या उसको मुंहसे चिढ़ावें तो स्वामी दयानन्दका निरादर समझा जायगा। आपने क्या नगरमें देखा नहीं है कई स्थानोंपर महापुरुषोंकी मूर्तियां खड़ी हैं। कहींपर कीन विक्टोरियाकी मूर्ति है। ये सब क्यों खड़ी कीगई हैं। वे ईसीलिये हैं कि उनको देखते ही देखनेवालोंके दिलोंमें उनके गुण याद आवें जिनकी वे मूर्तियें हैं। यदि कहींपर पं० मदन-मोहन माल्वीयाकी मूर्ति या फोटो हो और हम देरतक देखते रहें तो हमारा मन उनके जीवनके कार्योंपर चला जायगा कि देखो यह वही माल्वीयाजी हैं जिन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालयको काशीमें बड़े परिश्रमसे स्थापित कराया, जो हिन्दू धर्मके कट्टर माननेवाले व नियमरूपसे पूजापाठ जप तप करनेवाले व बड़ा ही चित्ताकर्षक व्याख्यान देने-वाले हैं। यदि कोई माल्वीयाजीके गुणोंका भक्त उस मूर्तिके सामने उनकी गुणावलीको कहनेवाला पाठ पढ़ डाले तो वह पाठ माल्वीयाजीके लिये पढ़ा गया ऐसा समझा जायगा। क्योंकि यद्यपि वह आंखोंसे माल्वीयाकी मूर्तिको देख रहा है परन्तु उसका ध्यान पाठ पढ़ते हुए माल्वीयाजीके गुणोंकी ही तरफ है। यह पाठ पढ़ना उस पढ़नेवालेके मनमें यह असर भी पैदा करेगा वा वह इस उत्साहको अपने भीतर पैदा कर लेगा कि मुझे भी कुछ थोड़ेसे भी गुण माल्वीयजीके अपने जीवनमें जागृत करने चाहिये। इसी तरह यदि कोई श्री महावीर तीर्थंकरकी मूर्तिके सामने जाकर बैठ जावे व उनकी ध्यानमई मूर्तिको बारबार देखें और महावीर भगवानके गुणानुवाद गावे व भक्तिसे

भर करके मस्तक झुकावें तो वह सब भक्ति व गुणानुवाद महावीर भगवानका ही समझा जायगा और उस भक्तके मनके भीतर यही असर पैदा होगा कि मुझे भी कुछ गुण श्री महावीर भगवानके समान अपनेमें जगाना चाहिये। यह तो आप जानते हैं कि महावीर भगवान गौतमबुद्धके समकालीन जैनियोंके चौवीसवें व अंतिम तीर्थंकर या महान धर्मप्रचारक थे और उन्होंने आत्मध्यानसे आत्माको पवित्र किया था, परमात्म पद पाया था। जैन लोग उनकी ध्यानमय मूर्ति उसी आदर्शकी बनाते हैं जब वे अर्हत पदमें जीवन्मुक्त परमात्मा थे। उस समय उनका आत्मध्यान व आत्मामें एकाग्रता भाव नमूनेदार होता है। वास्तवमें ध्यानमय मूर्ति द्वारा दर्शन, भजन, मनन या पूजन आत्मध्यान जगानेका व बनानेका एक प्रबल साधन है। और यह साधन वहां तक आवश्यक है जहांतक ध्यानकी पूरी सिद्धि न होजावे जैसे—चित्र खींचनेवालेको सामने चित्रको वारवार देखते रहनेकी उस समय तक जरूरत है जहांतक चित्र पूरा न खिंच जावे।

शिष्य—आपने बहुत अच्छा समझा दिया कि वैराग्यमई ध्यानका चित्र आत्मध्यानमें सहायक है। परन्तु यदि कोई मूर्तिका सम्बन्ध न करें तो क्या उसको ध्यानकी सिद्धि न होगी?

शिक्षक—प्रिय भाई! मुख्य बात तो यह है कि हमारा मन आत्माके स्वरूपमें एकाग्र होजावे। यह बात सवेरे या शाम थोड़ी देर अभ्यास करनेसे पैदा होगी। इस अभ्यासमें दूसरी तीनों बातें सहकारी हैं, इन्हींमें मूर्ति द्वारा पूज्यकी भक्ति भी है। यदि किसीको बिना मूर्ति देखे व मूर्तिद्वारा भक्ति किये ध्यान सिद्ध होजावे तो कोई बाधा नहीं है परन्तु गृहस्थोंका ध्यान बहुत कम देर होसकता है—

थोड़ी देरमें दिल घबड़ा जाता है। परन्तु मूर्ति द्वारा भक्ति घंटा दो घंटा होसक्ती है क्योंकि उसमें कभी मूर्तिका दर्शन है कभी पाठ पढ़ना है, कभी गुण विचारना है, कभी चढ़ानेकी सामग्री उठाना व धरना है। नाना प्रकारके आलम्बन होनेसे मन परमात्माके गुणोंकी तरफ लगातार लगता जाता है। सवेरे या शामको मात्र आत्मध्यानमें मन बहुत कम देर लगता है। मूर्ति द्वारा भक्ति हमारे आत्मध्यानमें साधक है-बाधक नहीं है। तथापि यदि किसीको ऐसा सम्बन्ध न मिले तोभी गुरुके उपदेशसे व शास्त्रकी सहायतासे आत्मध्यानकी सिद्धि होसक्ती है। जैसे कोई चित्रकारको किसी ऐसे चित्रको खींचनेके लिये कहा जावे जिसका पहलेका चित्र नहीं है तो वह चित्रकार कहनेवालेके मुखसे उस मानवके शरीरका सब हाल सुनेगा। जिसका चित्र खींचना है और सुनकर पहले एक चित्र उस कथनके अनुसार दिलमें बना लेगा, फिर वैसा चित्र खींच सकेगा। इसमें एक बात यह होगी कि ठीक वैसा ही चित्र नहीं आसकेगा जैसा उस मानवका खास मुख था। दूसरे चित्रकारको कुछ कठिनता होगी। यदि चित्र सामने होगा तो चित्रकारको चित्र खींचनेमें बड़ी सुगमता होगी। इसी तरह मूर्तिके द्वारा भक्ति विना भी आत्मध्यान होसकेगा, परन्तु कुछ देरमें व कुछ कठिनतासे होगा।

शिष्य—हमने सुना है कि जैनोंमें एक ऐसा फिरका है जो मूर्तिको स्थापन नहीं करता है, तो क्या उस फिरकेवाले ध्यान नहीं कर सके?

शिक्षक—यदि गुरु बतावें तो इन फिरकेवाले भी आत्मध्यान कर सके हैं। परन्तु एक साधन जो ध्यानमें सहायक होता उसको

न माननेमें अवश्य कुछ कठिनता होगी तथा देवभक्तिमें जो आत्म-ध्यान होकर सुखशांति मिलती है उस लाभसे उनको वंचित रहना पड़ेगा।

शिष्य—यदि ऐसे लोग मात्र गुणानुवाद गावें तो क्या भाव निर्मल न होगा?

शिक्षक—अवश्य भाव निर्मल होगा परन्तु ध्यानमय मूर्तिके द्वारा जो चित्तकी एकाग्रतामें सहायता मिलती उसकी कमी अवश्य रहेगी।

शिष्य—तो ऐसे फिरकेवाले मूर्ति स्थापनका प्रचार क्यों नहीं करते हैं?

शिक्षक—जगतका ऐसा नियम है कि चली आई प्रथाको बदलना बड़ा दुर्लभ काम है। यदि कोई इतना प्रबल सुधारक हो जो अपना असर उस फिरकेके भाई बहनोंपर डाले तो वे कर सके तब ही एक प्रथा बदलकर दूसरी चल सक्ती है अन्यथा नहीं। उस फिरकेवालोंमें जो यथार्थ विचार करनेवाले हैं वह अवश्य वीर पूजाके (Hero worship) समान मूर्तिपूजाको समझते हैं परन्तु पिछली प्रथाको बदलना कठिन होता है। तथापि हमको उन लोगोंके साथ एकता व प्रेम रखनेमें कोई कमी न करनी चाहिये। उनका भी असली भाव वही है जो हमारा है कि आत्मध्यानसे आत्माको लाभ होगा, सुखशांति मिलेगी, आत्मोन्नति होगी। तब उसके साधनोंमें यदि हम तीन साधन बताते हैं व वे दो ही बताते हैं इतनेसे बाहरी फर्कके कारण जैनत्वके नातेसे अप्रेम न करना चाहिये। जो विशेष ज्ञानी हैं उनके विचारोंमें अवश्य एकता होसक्ती है। विशेष ज्ञानी सब जैनी परस्पर एक भावपर पहुंच सक्ते हैं। भिन्न२ फिरकोंके भाई यदि

परस्पर एकता करना चाहे तो उनको एक दूसरेके शास्त्रोंको शांतिसे पढ़कर मनन करना चाहिये, तब विचारवानके दिलमें जो कुछ यथार्थ तत्व है सो स्वयं झलक जायगा। हमें बाहरी साधनोंके संबंधमें परस्पर विवाद न करना चाहिये न एक दूसरेसे अप्रेम करना चाहिये, स्वयं अपनी बुद्धिसे विचारना चाहिये। असली सुख शांतिके साधनमें हम सबको एकमत रखना चाहिये। बाहरी साधनोंके सम्बन्धमें मतभेद होनेपर भी बुद्धिसे निर्णय कर लेना चाहिये।

शिष्य-जब ध्यानमय मूर्ति वैराग्य दर्शानेवाली होती है तब ऐसी मूर्तिको जैनीके कोई फिरकेवाले आभूषणोंसे अलंकृत क्यों करते हैं? मुकुटादि क्यों पहनाते हैं?

शिक्षक-हमारी रायमें तो वीतरागताके भावको दिखानेवाली मूर्तिको आभूषणोंसे शृंगारित न करना चाहिये। ऐसा करनेसे अवश्य वीतरागताके दृश्यमें अंतर पड़ेगा। परन्तु वे लोग भक्तिवश ऐसा करते हैं। यदि वे शांतिसे लाभ हानिपर विचार करें तो हमारी रायमें वे ऐसा न करें। हमने सीलोन तथा ब्रह्मदेशमें बौद्धोंकी ध्यानमय मूर्तियाँ बहुत देखी हैं। वे मूर्तियां शृंगारित नहीं की जातीं, हां वस्त्रका चिह्न उनपर होता है। गौतम बुद्ध धोती या चादर पहनते थे उन्हींका चिह्न मूर्तिपर होता है। वीतरागता व शांति तो बहुत अच्छी तरह झलकती है।

शिष्य-जो जैनी मूर्तियोंको वस्त्र रहित बनाते हैं उनका क्या अभिप्राय है?

शिक्षक-वे लोग ऐसा मानते हैं कि वस्त्रादिको त्यागे बिना साधुपद नहीं होसक्ता, इसलिये वस्त्रादि रहित मूर्ति बनाते हैं। जो

मूर्तियोंपर वस्त्रादिका चिह्न करते हैं वे ऐसा मानते हैं कि वस्त्र सहित भी साधु होसक्ता है। किंतु सभी बौद्ध व सर्व ही जैनी आत्मध्यानसे उन्नति मानते हैं। उस आत्मध्यानमें एक सहायक साधन ध्यानमय मूर्ति है।

शिष्य-क्या जैन और बौद्ध मतमें साम्यता है ?

शिक्षक-जैन मत और बौद्ध मतमें बहुत कुछ साम्यता है सो हम फिर आपको बताएंगे। अभी तो आपको यह समझाना था कि ध्यानमय मूर्तिके द्वारा गुणानुवाद भी आत्मध्यानमें एक सहकारी साधन है। अब हम दूसरे साधनकी जरूरत बताते हैं कि आत्मज्ञानी व आत्मध्यानी गुरुसे आत्मध्यानको समझा जावे। विना गुरुके ज्ञान ठीक नहीं होता। जैसे कालेजमें जो बातें सीखनी हैं उनको बतानेवाली पुस्तकें तो सब होती ही हैं परन्तु यदि समझानेवाले प्रोफेसर या अध्यापक न हों तो उनका ठीक २ भाव शिष्योंकी समझमें न आयगा इसी तरह आत्मध्यानका उपाय जैन शास्त्रोंमें तो लिखा है परन्तु आत्मध्यानी गुरुके विना ठीक २ समझमें नहीं आयगा। इसीसे गुरु भक्ति या गुरु सेवाकी भी आवश्यक्ता है।

शिष्य-मैंने तो आपसे बहुतसा ज्ञान सीखा है। मैं तो आपको ज्ञानदाता गुरू मानता हूं।

शिक्षक-भाई, मैं भी एक श्रावक हूं। सच्चे अनुभवी गुरु साधुजन होते हैं जो रात दिन आत्मध्यानका अभ्यास करते हैं। यदि ऐसे गुरु मिल जावें तो उनसे ध्यानके मार्गका ज्ञान बहुत अच्छी तरह होसक्ता है। यदि ऐसा समागम दुर्लभ हो तो जो श्रावक कुछ आत्मध्यानके अभ्यासी हों उन हीसे लाभ लेना चाहिये।

तीसरा साधन आत्मज्ञानवर्द्धक शास्त्रोंका पढ़ना नित्य जरूरी है।

शास्त्रको ध्यानसे पढ़नेसे मनके विकार शांत होजाते हैं व आत्माका स्वभाव और भी साफ झलकता है, ज्ञानकी दृढ़ता होती जाती है।

शिष्य—कृपाकर बताइये कि मैं कौनसा शास्त्र देखा करूं?

शिक्षक—मैं आपको इष्टोपदेशके देखनेकी सम्मति दूंगा व उसके पीछे आप आत्मधर्म फिर समाधिशतकको देख जाइये। ये तीनों ग्रन्थ दिगम्बर जैन पुस्तकालय, कापड़ियाभवन—सूरतसे हिन्दी भाषामें मिलेंगे, आप खूब समझ सकेंगे।

चौथे साधनको मैं आपको पहले बता चुका हूं इसलिये जीवनमें सच्चे सुख व सच्ची शांति पानेका उपाय एक आत्मध्यान है। जिसका मुख्य उपाय आत्मध्यान है उसके साधनके लिये अन्य तीन साधन हैं।

आप कालेजके विद्यार्थी हैं, आपको समय बहुत कम है तथापि यदि आप अभीसे आत्मोन्नतिके मार्गमें न लगेंगे तो गृहस्थ जीवनमें पड़कर तो आप और भी बहुधन्धी होजावेंगे, आपको फुरसत ही नहीं मिलेगी, परन्तु जो विद्यार्थी अवस्थामें अभ्यास जम जायगा तो जन्म-पर्यंत कभी न छूटेगा। और जीवन आनन्दमय होता चला जायगा।

शिष्य—मैं आपके उपदेशको स्वीकार करता हूं। मेरे बोर्डिंगमें जिनमंदिर है। मैं रोज प्रतिमाके सामने कुछ भक्ति कर लिया करूंगा। आप कोई स्तुति बता दीजिये जो छोटीसी हो। मैं इष्टोपदेश मंगाकर कुछ मिनट पढ़ भी लिया करूंगा। आपसे तो मैं रोज मिलकर कुछ देर बातें करूंगा तथा बड़े सबेरे १० मिनट मैं आत्मध्यानका अभ्यास भी शुरू कर दूंगा। मैंने समझ लिया है कि यह मेरा साधन मेरे चित्तको निर्मल करेगा जिससे मुझे मेरे कालेजकी पढ़ाईमें भी सुभीता मिलेगा।

शिक्षक—नीचे लिखी छोटीसी स्तुति आप पढ़ लिया करें।

छंद स्रग्विणी।

जय चिदानन्द आनन्दरूपी जिनं,
ज्ञानमय दर्शमय वीर्यमय मलहनं।
राग नहि द्वेष नहि क्रोध नहि मान ना,
मोह ना शोक ना भाव अज्ञान ना ॥ १ ॥

है कपट कोई ना लोभ ना काम ना,
पंच इन्द्रिय मई सौख्यका धाम ना।
जन्म ना मर्ण ना खेद ना दोष ना,
कोई सन्ताप ना कोई पर रोष ना ॥ २ ॥

कर्म आठो हने शुद्ध आपी भये,
आपसे आपमें आप जानत भये।
नाहि है वर्ण रस गंध अरु फर्श ना,
जड़ मई मूर्ति ना जड़ मई दर्श ना ॥ ३ ॥

आप तो ज्ञान मय आप ध्याता बली,
आपने सर्व बाधा जगतकी दली।
आप ही पूज्य हो आप ही सिद्ध हो,
आपको देखते आप सम रिद्ध हो ॥ ४ ॥

आदिनाथं तुम्हीं शान्तिनाथं तुम्हीं,
नेमिनाथं तुम्हीं पार्श्वनाथं तुम्हीं।
हो महावीर सन्मति परम शिव मई,
सुक्खसागर तुम्हीं, देख समता भई ॥ ५ ॥

भक्ति करते समय आपको जैनियोंका परमपूज्य महामंत्र भी पढ़ लेना चाहिये। मैं आपको अर्थ सहित बताए देता हूं।

शिष्य—जरूर बताइये—मैं इसे भी कंठ करलूंगा।

शिक्षक इस महामंत्रमें सब अक्षर ३५ पैंतीस हैं। इसे शुद्ध पढ़ना चाहिये।

महा मंत्र।

१ णमो अरहंताणं	अक्षर	७
२—णमो सिद्धाणं	,,	५
३—णमो आइरियाणं	,,	७
४—णमो उवज्झायाणं	,,	७
५—णमो लोए सव्वसाहूणम्	,,	९
		३५

अर्थ—इस लोकमें सर्व अर्हंतोंको नमस्कार हो, इस लोकमें सर्व सिद्धोंको नमस्कार हो, इस लोकमें सर्व आचार्योंको नमस्कार हो, इस लोकमें सर्व उपाध्यायोंको नमस्कार हो, इस लोकमें सर्व साधुओंको नमस्कार हो।

नोट-यहां लोए और सव्व ये दो शब्द पांचों ही पदोंके लिये हैं। सर्व शब्द भूत, भविष्य, वर्तमानकालको झलकाता है। इसलिये इस मंत्रमें अनंत शुद्धात्माओंको नमस्कार है। इस ही लिये इसको महामंत्र कहते हैं।

इस जगतमें जितने बड़े२ पद हैं, इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती, महाराजा आदि सर्व जिनको नमस्कार करते हैं, ऐसे ये पांच पद (offices) हैं।

जो आत्मध्यानके अभ्याससे चार घातीय कर्मोंको नाश करके अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख व अनंत बल इन चार विशेष गुणोंको प्रकाश करके आयु पर्यंत जीवन्मुक्त परमात्मा शरीर सहित होते हैं, धर्मोपदेश देते हैं, विहार करते हैं उनको अरहंत कहते हैं। वे ही अरहंत जब शेष अघातीय चार कर्मोंको भी नाश कर देते हैं और शरीर रहित मात्र आत्मा रह जाते हैं, वे सर्व अपने गुणोंका प्रकाश धारते हुए नित्य ज्ञानानन्दमें मगन रहते हैं तब उनको सिद्ध कहते हैं। जो साधुओंमें प्रधान व प्रभावशाली होते हैं, अन्य साधुओंमें शासन कर रक्खे हैं उनको आचार्य कहते हैं। जो साधुओंमें शास्त्रज्ञानमें प्रधान होते हैं, और अन्य साधुओंको शास्त्रज्ञान देते हैं उनको उपाध्याय कहते हैं। जो मात्र मोक्षका साधन करते हैं उनको साधु कहते हैं। अन्तके तीनों ही पद साधुओंके हैं। मात्र कार्यका अन्तर है। ये सब साधु तेरह प्रकार चारित्र पालते हैं।

पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति ।

हमको गुणोंका आदर करना चाहिये। जो कोई आत्माएं इन पांच पदोंके योग्य गुण पालती हैं वे ही अरहंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय या साधु कहलाती हैं। जिन मंदिरमें मूर्ति अरहंतोंकी मुख्यतासे विराजमान की जाती है उनकी परम वीतरागताका दृश्य मूर्तिमें रहता है। इस मंत्रके पढ़नेसे अनंत आत्माओंकी भक्ति होजाती है।

आप आत्मध्यानके समय भी इस मंत्रको पढ़कर जप सक्ते हैं व गुणोंका विचार कर सक्ते हैं।

शिष्य—कृपा करके महाव्रत, समिति, गुप्तिको भी समझा दीजिये।

शिक्षक-पांच महाव्रत—या महान प्रतिज्ञाएं हैं जिनको साधु पालते हैं—

१—अहिंसा महाव्रत-सर्व प्राणीमात्रकी रक्षा करना, किसीको कष्ट न देना, सर्वपर प्रेमभाव या साम्यभाव रखना।

२—सत्य महाव्रत—आत्महितकारक सत्य प्रिय वचन मर्यादा-पूर्वक कहना।

३-अचौर्य महाव्रत—बिना दी हुई कोई वस्तु लेना नहीं। स्वयं फलादि व जल भी नहीं लेना। गृहस्थ जो भक्तिसे दे उसे ही स्वीकार करना।

४-ब्रह्मचर्य महाव्रत मन वचन कायसे शील व्रत पालना। परिणामोंको काम विकारसे शुद्ध रखना।

५ परिग्रह महाव्रत-क्षेत्र, मकान, धन, धान्यादि सामानको त्यागकर ममतारहित निर्ग्रंथ हो जाना। इन्हीं पांच महाव्रतोंकी रक्षाके हेतु पांच समिति पालना चाहिये।

पांच समिति पांच बातोंका ध्यान रखना।

१ ईर्या समिति-दिनमें रौंदी हुई भूमिपर चार हाथ जमीन आगे देखते हुए पग रखना।

२-भाषा समिति कोमल, मिष्ट अल्प, वचन बोलना।

३-एषणा समिति जिस भोजनपानको गृहस्थने अपने कुटु-म्बके लिये तैयार किया हो उसीका कुछ भाग भिक्षार्थीको भक्ति-पूर्वक दिये जानेपर लेना।

४-आदाननिक्षेपण समिति-अपने शरीरको व शास्त्रको व पीछी कमंडलादिको देखकर रखना व उठाना।

५—प्रतिष्ठापना समिति—मल मूत्रादि निर्जंतु भूमिपर देखकर करना ।

पांचो महाव्रतोंमें सावधान रहनेके लिये तीन गुप्ति पालना चाहिये।

तीन गुप्ति—तीन वस्तुओंको अपने आधीन रखना ।

१—मनोगुप्ति—मनको वश रखना, आत्मविचार व साम्य भावमें लगाए रखना ।

२—वचनगुप्ति—वचनोंको वश रखना, मौन रहना, काम पड़नेपर ही अल्प कहना ।

३—कायगुप्ति—शरीरके अंग उपंगोंको वश रखना, आसनसे ही बैठना, लेटना, प्रमाद रूप न रहना ।

शिष्य—वास्तवमें ये तेरह प्रकार चारित्र बहुत ही सुन्दर है। मैंने आपसे बहुत उपयोगी बातें जानीं । मैं आपकी कही हुई बातोंको याद रक्खूंगा और जिन चार साधनोंको आपने बताया है, कालेजकी पढ़ाई करता हुआ भी साधन करूंगा । मुझे समझमें आगया कि मैं आत्मा हूं । मुझे आत्माकी उन्नतिका हर समय ध्यान रखना चाहिये । सच्ची सुखशांति इसीसे मिलेगी ।

आपने मेरे कर्तव्यमें दो बातें बताई थीं । एक सुखशांतिका लाभ, दूसरा परोपकार । पहली बातको मैं अच्छी तरह समझ गया हूं । परोपकारके सम्बन्धमें मैं पूछना चाहता हूं कि मुझे त्याग जीवन बिताना चाहिये या गृहस्थका जीवन । अभी मेरी शादी नहीं हुई है । आप बतावें कि मुझे क्या करना चाहिये ?

शिक्षक—आपका प्रश्न बहुत ही उत्तम है । इसमें संदेह नहीं जितना परोपकार त्याग जीवनमें होसक्ता है उतना गृहस्थमें नहीं हो

सक्ता है। गृहस्थको घरकी चिन्ताएं बहुतसी रहती हैं। इसे समय भी कम मिलता है, तथापि यह आप स्वयं विचार सक्ते हैं कि आप कौनसा जीवन पालनेकी शक्ति रखते हैं। परोपकार दोनोंहीमें होसक्ता है, एकमें अधिक एकमें कम।

शिष्य—यदि त्याग जीवनमें रहकर परोपकार किया जावे तो परोपकारकी क्या रीति होगी।

शिक्षक-विवाह न करके त्याग जीवनको पालनेका वही अधिकारी है जो ब्रह्मचर्यको भले प्रकार पाल सक्ता हो। जिसने पांचो इन्द्रियोंपर अपना पक्का स्वामित्व प्राप्त कर लिया हो जो जबानका लोलुपी न हो, सुगंधका आसक्त न हो, सुन्दरताका प्रेमी न हो तथा ताल, स्वर गानेका रागी न हो, जिसको सच्ची सुखशांतिकी गाढ़ रुचि हो, आत्मध्यानका अभ्यासी हो व परोपकारके लिये जीवनतक अर्पण करनेमें कुछ भी संकोच न रखता हो। परोपकारी त्यागी नवयुवकोंके लिये अभी तेरह प्रकार चारित्र लेकर साधु होनेकी जरूरत नहीं है। क्योंकि साधुकी प्रतिज्ञाओंमें रहते हुए स्वदेश परदेश गमनमें बहुत बाधाएं पड़ेंगी खानपानकी व बहुत कठिनताएं होंगी। यह साधुका पद उसीके लिये योग्य है जो बिलकुल विरक्त हो। जिसका मुख्य ध्येय मात्र आत्मसाधन हो, परोपकारकी मुख्यता न हो. आत्मसाधन यथार्थ करते हुए जितना परोपकार संभव हो उतना ही साधन किया जासक्ता है। आजकल जैन समाजमें ऐसे त्यागियोंकी जरूरत है जो मनसे विरक्त हों, वीर हों, धैर्यवान हों, विद्वान हों, परिश्रमी हों, दुःखोंके सहनेवाले हों, अपमान व मानको एक समान जानते हों, कष्टोंके पड़नेपर भी परोपकारको न त्यागनेवाले हों, सत्यके अनुयायी

हों, निर्भीक हों, धनवानोंके मुंह ताकनेवाले न हों, वे बाहरी चारित्र खानपानादिको इतना ही पालें जितने पालनेसे वे हर देशमें जीवन-निर्वाह कर सकें, सवारीपर जासकें, जहज व रेलपर सफर कर सकें। वे मदिरा व नशा न पीवें, मांस न खावें, अन्यायपूर्वक किसीको सतावें नहीं. अन्यायरूप झूठ न बोलें, चोरी न करें. जरूरी वस्त्रादि व पैसा व नौकर आदि रखसकें, ब्रह्मचर्य हो अच्छी तरह पालें। इनको रेलपर, जहाजपर बिकता हुआ खान पान लेनेका परहेज न हो, केवल मद्य मांससे जरूर बचें। ऐसे त्यागियोंकी बहु संख्यामें इसलिये जरूरत है कि वे भारतमें सर्वत्र जाकर आत्मकल्याणका व सुख शांतिका मार्ग बनासकें तथा भारतके बाहर सीलोन. ब्रह्मा, यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, आफ्रिका आदि स्थानोंपर भी जासकें और सत्यका प्रचार करसकें, सच्चा सुख शांतिका उपाय व परोपकारका मार्ग बतासकें, प्राणियोंको मांसाहारसे छुड़ासकें, जीवदया का प्रचार करसकें। इस समय जैन व्यापारी व जैन कर्मचारी ब्रह्मदेशमें, श्याममें, जापानमें, चीनमें, यूरूपमें, आफ्रिकामें प्रायः हर जगह फैल गये हैं, उनको भी उपदेशकी जरूरत है, नहीं तो वे बिगड़कर मांसाहारी आदि होजायंगे व जैनधर्मको भूल जायगे। जैन साधु पैदल चलने वाले व भिक्षासे भोजन करनेवाले वहां पहुंच नहींसक्ते हैं। जगतमें सत्यका प्रचार करना बहुत जरूरी है।

शिष्य—ऐसे त्यागियोंके लिये भोजनपानादि खर्चका क्या प्रबन्ध होगा?

शिक्षक—जो घरसे धनसम्पन्न हैं उनको इतना धन कहीं जमा करके त्यागी होना चाहिये जिसके व्याजसे वे अपना सर्व खर्च चला सकें। हां! ऐसे त्यागियोंको यह छुट्टी रखे व मानरहित

भावसे रखनी चाहिये कि यदि कोई भक्तिके साथ निमंत्रण दें, भोजन करावें तो कर लेना चाहिये। यदि कोई यात्रा खर्च व अन्य कार्यके लिये द्रव्य दें तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिये व उसे परोपकारमें लगाना चाहिये।

इसके सिवाय जो धनरहित महोदय त्यागी होकर परोपकार करना चाहें उनके लिये एक धर्मप्रचारक संस्था रहनी चाहिये जिसमें योग्य भण्डार रहना चाहिये, जिससे कुछ नियमित संख्याके त्यागियोंका सर्व खर्च जो उनके द्वारा धर्मप्रचारमें हो उसे देना चाहिये। वह संस्था उन धनरहित त्यागियोंके जीवन निर्वाहकी जिम्मेदार होगी। वास्तवमें इस जमानेमें ऐसे ही त्यागी ईसाई पादरियोंकी तरह बहुत कुछ जगतका हित कर सक्ते हैं। इनको हम पाक्षिक विरक्त श्रावक कह सकेंगे।

जो महाशय इन्द्रियविजय करनेको असमर्थ हैं उनको किसी योग्य गृहिणीके साथ विवाह करके रहना चाहिये। ऐसे विवाहित युगल भी परोपकारी विरक्त होसक्ते हैं। दोनों युगल साथ साथ रहते हुए धर्म, समाज व जगतकी सेवा करें। यदि वे धनसम्पन्न हों तो धनकी आमदसे सब खर्च चलावें। यदि वे धनवान न हों और दम्पति परोपकारमें अपनी शक्ति लगाना चाहें तो धर्मप्रचारक संस्थाको व अन्य किसी परोपकारिणी संस्थाको उचित है कि दम्पतिके प्रतिष्ठासहित सादगीसे निर्वाहका सर्व खर्च देना स्वीकार करके उनकी जीवनपर्यंत सेवा स्वीकार करें। वे युगल बहुत अधिक धनोपार्जनकी योग्यता रखते हुए भी थोड़े खर्चमें संतोष करें। आवश्यक खर्च ही लेकर सेवा करें। संस्थाओंके प्रबन्धक, अधिष्ठाता, शिक्षक, सुपरिन्टे-

न्डेन्ट, संरक्षक, प्रचारक आदि कार्य वे परोपकारभावसे कर सक्ते हैं। अन्य जो गृहस्थ जीवनमें रहकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहें उनको उचित है कि न्यायपूर्वक आजीविकासे धन कमावे व न्यायपूर्वक इन्द्रियोंके भोग करें, इन्द्रियोंके दास न बने किन्तु इन्द्रियोंपर स्वामित्व रखते हुए नियमित इन्द्रिय भोग करें जिससे कभी शरीरमें निर्बलता न हो-वीरता, साहस बना रहे, कोई बीमारी पास न आवे तथा आत्मध्यानके लिये जो साधन अभी हम आपको बता चुके हैं उनको करते रहे तथा परोपकारके लिये तन, मन, धन खर्च करनेका उत्साह रखें। वे गार्हस्थ जीवनमें रहते हुए समाजका सुधार करें। बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, कन्या विक्रय, पुत्र विक्रय, मरणमें बिरादरीका भोज, आतशबाजी, वेश्या नृत्य आदि बुराइयोंको दूर करावें। व्यर्थ व्ययको मिटावे। व्याहादिके खर्चोंको बहुत कम करावें। जनताका धन अधिकतर शिक्षा प्रचारमें खर्च करावें। अनाथ व विधवाओंकी रक्षा करावें, औषधालय, पशुशाला, आदिका प्रचार करें। गुरुकुलोंको स्थापित करावें, समय निकालकर साहित्यकी सेवा करें। अच्छे पत्र निकालें, पुस्तकें लिखें, इन गृहस्थोंको भी दिनमें घंटा दो घण्टा समय परोपकारके लिये अवश्य निकाल लेना चाहिये। मानवोंका कर्तव्य है कि वे अन्य मानवोंको शिक्षित, स्वास्थ्ययुक्त, न्यायमार्गी व आत्मज्ञानी बनावें--उनको सताकर अपना स्वार्थ साधन न करें किंतु यथाशक्ति उनके साथ भलाई करें, उनके कष्टोंको मेटें। भूखेको अन्नदान, रोगीको दवाई, अज्ञानीको विद्या, तथा निराश्रय व भयभीतको आश्रय देकर भय रहित करें।

पशुओं, पक्षियों व जलचरोंकी हत्या शिकारके लिये, देवताओं-
पर बलि देनेके लिये व मांसाहारके लिये न करें । खानपान वस्त्र-
व्यवहारमें यह ध्यान रखें कि जितनी कम हिंसासे काम चले वैसा
वर्ताव करें । पशु समाजपर भी दया पालें वृथा वे सताए न जावें,
इसपर ध्यान रखें । जो पशु हमारे उपयोगमें आसक्ते हैं, उनको
पालकर हम उनसे दूध लें, उनसे हल चलावें, उनपर बोझा ढोवें,
उनपर सवारी करें परन्तु उनसे उतनी ही मिहनत लेवें जितनी वे
आराममें देसकें । उनको हमें अन्नपान समयपर देना चाहिये । चम-
ड़ेका व्यवहार हम बहुत अल्प करें क्योंकि इस चमड़ेके लिये बहुत
पशु मारे जाते हैं। हमें छोटे२ जंतुओंपर भी दया रखनी चाहिये। पानी
भलेप्रकार छान कर पीना चाहिये इससे हमारी भी रक्षा है व हमारे मुखमें
कीट व तृणादि नहीं जा सकेंगे । देशकालके अनुसार यथाशक्ति
पानी छानकर पीनेका एक साधारण गृहस्थको अभ्यास रखना
चाहिये तथा यह भी अभ्यास करना चाहिये कि भोजन दिव-
समें किया जावे । इससे रात्रिको उड़नेवाले जंतुओंके प्राण
बचते हैं व अपने भी मुखमें उन जंतुओंके कलेवर नहीं जाते हैं
तथा दिवसका किया हुआ भोजन पचता भी अच्छी तरह है ।
अपने देशकालके अनुसार जिसमें किसी आवश्यक काममें बाधा
नहीं आवे इस रात्रि आहार त्यागका अभ्यास करना चाहिये ।
गृहस्थोंको उचित है कि वे भलेप्रकार अपनी ही विवाहिता स्त्रीमें
संतोष रक्खें तथा वे सम्पत्तिकी एक मर्यादा करलें कि इतना धन
पैदा कर लेनेपर हम संतोषसे रहकर जीवन बितावेंगे । व्या-
पारादि द्वारा धन पैदा करनेका काम अपने पुत्रोंको सौंप देंगे ।

इससे लाभ यह होता है कि तृष्णा अपने वश होती है व अंतिम जीवनका समय भलेप्रकार परोपकारमें विताया जा सक्ता है। हरएक गृहस्थ अपनी इच्छानुसार संपत्तिका प्रमाण कर सक्ता है। जैसे दसहजार, पचासहजार, एक लाख, दोलाख, दशलाख, एक करोड़, दश करोड़ इत्यादि।

गृहस्थोंको योग्य है कि जब पुत्रादि समर्थ हों व गृहीजीवनसे मन भरगया हो तो वे त्यागका जीवन विता सक्ते हैं। जिस तरह त्यागके जीवनका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं, वैसा जीवन विताया जासक्ता है। यदि परिणामोंमें वैराग्य अधिक हो तो तेरह प्रकार चारित्र पालकर साधुका जीवन विताया जासक्ता है।

प्रिय भाई! आत्मोन्नति व परोपकार करना यही हमारा मुख्य कर्तव्य है। आप मानवजीवनका सर्व ध्येय समझ गए होंगे।

शिष्य—मैं बहुत अच्छी तरह समझ गया हूं। अब कल मैं आपसे यह जानना चाहता हूं कि जैन धर्मके तत्व क्या हैं।

तीसरा अध्याय ।

जैनोंके तत्व ।

शिष्य—तत्त्व किसे कहते हैं ?

शिक्षक—किसी वस्तुके भावको तत्त्व कहते हैं। तत् यह सर्व-नाम (pronoun) है। तत्का भाव सो तत्त्व है। जो पदार्थ जैसा है उसका वैसा होना भाव है।

शिष्य—जैनोंके तत्व इससे क्या मतलब है ?

शिक्षक—जिन तत्वोंको जैन सिद्धांतमें आत्माका हितकारी बताया गया है उनको जैनोंका तत्व कहा गया है। हम पहले बता चुके हैं कि आत्माका सच्चा हित सुख शांतिकी प्राप्ति है। और यह भी समझा चुके हैं कि सुख व शांति आत्माका स्वभाव है तथा यह भी बता चुके हैं कि आत्माका असली स्वभाव शुद्ध है परन्तु संसार अवस्थामें पाप पुण्य रूपी कर्मोंसे मैला है। जैन तीर्थंकरोंने तथा जैनाचार्योंने आत्माका पूर्ण हित स्वाधीनताका लाभ बताया है, जिसमें आत्माके स्वाभाविक सर्व गुण प्रकाशित होजावें, सर्व कर्मोंके मैलसे आत्मा छूट जावे। इसहीको मोक्ष या मुक्ति भी कहते हैं। जब आत्मा पूर्ण मुक्त होजाता है तब इसको परमात्मा कहते हैं। इसहीको सिद्ध कहते हैं। मुक्त अवस्थामें परमात्मा सदा अपने स्वभावमें मग्न होकर निजानन्दका भोग करता है। इस ही मुख्य उद्देश्यको ध्यानमें रखकर तत्वोंका कथन जैनाचार्योंने किया है। इन तत्वोंसे यह बताया है कि यह आत्मा वास्तवमें तो शुद्ध है परन्तु आठ कर्मोंके संयोगसे

अशुद्ध होरहा है। इन कर्मोंका किस तरह संयोग होता है और किस तरह इन कर्मोंसे वियोग होता है इतनी ही बात जैन तत्वोंमें बताई है। जैसे रोगी रोगसे पीड़ित हो जब वैद्यके पास जाता है तब वैद्य रोगीकी परीक्षा करके यह बताता है कि तू असलमें तो रोगी नहीं है परन्तु तेरे साथ रोग इस समय लगा हुआ है। तब वह रोग होनेका कारण बताता है, रोग न बढ़ने पावे इसका परहेज बताता है तथा रोग दूर करनेकी औषधि बताता है। जिससे यह रोगसे छूट जावे। अथवा एक मलीन कपड़ेको साफ करनेके लिये हमें कपड़ेका और मैलका अलगर स्वभाव जानना होगा। मैल किस तरह चिपटा है, किस तरह मैल अधिक न बढ़े व किस तरह मौजूद मैलको हटा दिया जावे व मैल हटनेपर यह शुद्ध होजावेगा। जो इन बातोंको जानता है वही मैलको धोकर कपड़ेको साफ कर देता है। हरएक मलीन वस्तुको शुद्ध करनेका यही तरीका है। इसी स्वाभाविक जानने योग्य बातको जैनाचार्योंने जैन तत्वोंमें बताया है। इनका जानना बहुत ही जरूरी है। इनको जाननेसे ही हम अपने आत्माको शुद्ध करनेका उपाय कर सक्ते हैं।

शिष्य-जैनोंके तत्त्व कितने हैं ?

शिक्षक-मुख्य तत्व सात हैं, इनमें दो और जोड़नेसे नौ तत्व या पदार्थ होजाते हैं।

शिष्य-इनको पदार्थ क्यों कहते हैं ?

शिक्षक-पदसे समझने लायक अर्थको पदार्थ कहते हैं, अक्षरोंके समूहको पद कहते हैं। जिसका निश्चय करना जरूरी है या जो निश्चय किया जासके उसे अर्थ कहते हैं। ये नौ निश्चय करने-

लायक बातें हैं जो नौ भिन्न२ पदोंके द्वारा जानी जाती हैं। इस-लिये नौ तत्वोंको नौ पदार्थ कहते हैं।

शिष्य–सात तत्त्व या नौ तत्त्वोंके नाम बताइये।

शिक्षक–ये सात तत्त्व हैं–१ जीव, २ अजीव, ३ आस्रव, ४ बंध, ५ संवर, ६ निर्जरा, ७ मोक्ष।* इनमें पुण्य तथा पाप जोड़नेसे नौ तत्त्व या नौ पदार्थ होजाते हैं।

शिष्य–इनका कुछ स्वरूप बता दीजिये।

शिक्षक–जो अपने चेतना (consciousness) लक्षण (differentia) को रखते हुए सदा जीता रहे उसे जीव कहते हैं। चेतनाको उपयोग भी कहते हैं।×

शिष्य–लक्षण किसे कहते हैं?

शिक्षक–जिस चिह्न या गुणके द्वारा एक पदार्थको दूसरोंसे जुदा पहचान सकें उसे लक्षण कहते हैं। जैसे निमक व शक्कर दोनों सफेद सफेद दिखते हैं। निमकका लक्षण खारापना है व शक्करका लक्षण मीठापना है। जबान पर दोनोंको रखनेसे हम निमकको शक्करसे अलग पहचान सकेंगे। निर्दोष लक्षण उसको कहते हैं जिसमें तीन दोष न हों–अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव। जो लक्षण या पहचान पदार्थके एक हिस्सेमें पाया जावे, सबमें न पाया जावे वह लक्षण अव्याप्ति दोष सहित है। जो सब पदार्थोंमें न हो उसे ही अव्याप्ति कहते हैं। जैसे कोई कहे कि जानवर उनको कहते हैं जिसके सींग हों। इस लक्षणमें अव्याप्ति दोष है, क्योंकि,

* जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं ॥४।१॥ त. सू.
× उपयोगो लक्षणं ॥८।२॥ त. सू.

सींगके विना भी जानवर मिलते हैं। या कोई कहे जीवका लक्षण क्रोध करना है, इसमें भी अव्याप्ति दोष है। क्योंकि हर समय जीवमें क्रोध नहीं मिलता। क्रोध विना भी जीव मिलते हैं। लक्षण उसे ही कहते हैं जो सदा पाया जावे।

अतिव्याप्ति दोष उसे कहते हैं जो उस पदार्थमें भी रहे जिसका लक्षण करते हैं और उसके सिवाय अन्य पदार्थोंमें भी पाया जावे। जैसे गौका लक्षण सींग करना। क्योंकि सींग भैंस, हिरन, बकरे आदिमें भी पाए जाते हैं, इसलिए इस लक्षणमें अतिव्याप्ति दोष है। क्योंकि यह लक्षण उस पदार्थकी हदके बाहर चला गया। इससे गौकी पहचान नहीं होसकती। या यह कहना कि जीव उसे कहते हैं जो अमूर्तिक (immaterial) हो। इसमें भी अतिव्याप्ति दोष है क्योंकि अमूर्तिक तो आकाश भी है। इससे जीवकी पहचान न होसकेगी, कोई आकाशको ही जीव मान लेगा। असंभव दोष उसको कहते हैं जो साफ साफ न होतासा दीख पड़े। जैसे कहना शक्कर उसे कहते हैं जो मीठा न हो। जीव उसको कहते हैं जो जड़ हो।

शिष्य—आपने जीवका लक्षण चेतना या समझना बताया। क्या इसमें तीनों दोष नहीं आते हैं? समझा दीजिये।

शिक्षक—चेतनामें अव्याप्ति दोष इसलिये नहीं है कि जितने जीव हैं सबमें कुछ न कुछ समझ पाई जाती है। कीटमें, चींटीमें, मक्खीमें, मोरमें, कबूतरमें, मानवमें, सबमें चेतना है। जितने सजीव प्राणी हैं वे चेतना रखते हैं तब ही जीव सहित कहलाते हैं। जब चेतना निकल जाती है तब उनको अचेतन, जड़ मुर्दा कहते हैं।

वृक्षोंमें भी चेतना है। वे इच्छा करके भूख मिटानेको कमती या ज्यादा हवा लेते हैं, पानी व मिट्टीको खींचते हैं। अतिव्याप्ति दोष इसलिये नहीं है कि कोई ऐसा और पदार्थ जगतमें नहीं है जो जीव न हो और उसमें चेतना पाई जावे। असंभव दोष इसलिये नहीं है कि यह हमारे अनुभवमें या जाननेमें बराबर आरहा है कि मैं समझ रहा हूं, जान रहा हूं, यह बात साफर सबको प्रगट है। इसलिये जीवका लक्षण चेतना निर्दोष है। चेतना लक्षण जिसमें हो वही जीव तत्व है। संसारमें सर्व जीव आठ कर्मोंके संयोगमें हैं इसलिये संसारी जीवोंको अशुद्ध कहते हैं। जो कर्मोंके बंधनसे छूट जाते हैं उनको शुद्ध, मुक्त व सिद्ध जीव कहते हैं।

शिष्य—अजीव तत्व किसे कहते हैं ?

शिक्षक- जिसमें जीवका लक्षण चेतना न हो उसको अजीव कहते हैं। अजीव इस लोकमें पांच हैं—पुद्गल, आकाश, काल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय।

शिष्य—पुद्गल किसे कहते हैं ?

शिक्षक—पुद्गलका लक्षण स्पर्श, रस, गंध, वर्ण है।* जिसमें ये चार गुण पाए जावें उसको पुद्गल कहते हैं। जो छुआ जासके, जिसमें कुछ स्वाद हो, जिसमें कोई गंध हो, जिसमें कोई वर्ण हो वह सब पुद्गल है। इसीलिये पुद्गलको मूर्तीक (material) कहते हैं। पुद्गलका उल्था इंग्रेजीमें (matter) मैटर किया जाता है। पुद्गलमें ही परस्पर मिलकर एक स्कंध या समुदाय पिंड होजानेकी व स्कंध या पिंडका बिगड़कर बिछुड़ जानेकी शक्ति है। मिलना व

*—स्पर्शरसगंधवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३।५, त० सू० ॥

बिछुड़ना पुद्गलमें ही होता है। देखिये, हमारे सामने शकर रखी है, इसको हम छूसक्ते, इसका स्वाद लेसक्ते, इसको सूंघ सक्ते, इसको देख सक्ते हैं। इसलिये इसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हैं, इसीलिये यह शकर पुद्गल है। इस शकरको घोलकर एक शकरका गोला बना सक्ते हैं। फिर चूरा करके एक एक दाना अलग कर सक्ते हैं।

हमारी पांचों इन्द्रियोंसे जो ग्रहणमें आता है सब पुद्गल हैं। स्पर्शन इन्द्रिय या त्वचा या चर्मसे हम ठंडा गरम स्पर्श जानते हैं। रसना इन्द्रियसे हम रसको जानते हैं। नाक इन्द्रियसे गंधको जानते हैं। आंखसे वर्णको जानते हैं। कानसे शब्दको जानते हैं। शब्द भी पुद्गल है, हम उसे देख नहीं सक्ते हैं परन्तु उसका कठोरपना या नम्रपना मालूम करते हैं। यह लोक पुद्गलसे भरा हुआ है। सबसे छोटे पुद्गलको जिसका दूसरा भाग नहीं होसक्ता परमाणु (particle) कहते हैं। दो परमाणुओंके बने हुए पिंडको लेकर कितनी भी संख्याके परमाणुओंके बने हुए पिंडको स्कंध (molecule) कहते हैं।* हमारी किसी भी इन्द्रियमें शक्ति नहीं है जो हम परमाणुओंको जान सकें। स्कंधोंको हम इन्द्रियोंसे जान सक्ते हैं तो भी बहुतसे ऐसे स्कंध हैं जिनको हम इन्द्रियोंसे नहीं जान सक्ते हैं किंतु उनका अनुमान उनके कार्योंसे करते हैं। ऐसे सूक्ष्म स्कंधोंमें ही कार्मण वर्गणाएं (Karmic molecules) हैं जिनसे कार्मण या शरीर या पुण्य पापका संचित शरीर बनता है, जैसा हम आपको पहले बता चुके हैं। पुद्गलका लक्षण हम मूर्तिमय या मूर्तीक (material) भी करसक्ते हैं। क्योंकि मूर्तीकपना (materiality)

* अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५-५-त० सू०

पुद्गलके सिवाय और किसीमें नहीं पाया जाता है। जैसे जीव अमूर्तीक है वैसे आकाश, काल, धर्मास्तिकाय व अधर्मास्तिकाय भी अमूर्तीक हैं।

शिष्य–मैं भलेप्रकार समझ गया कि यह अपना कर्मरूप सूक्ष्म शरीर, यह स्थूल दिखनेवाला शरीर, यह मेरे शरीरके कपड़े कलम, दावात, कागज, वर्तन आदि सब पुद्गल हैं तथा मैं जाननेवाला जीव हूं। अब चार अजीवोंका लक्षण और बताइये।

शिक्षक–आकाश एक अखंड अनंत सर्वव्यापक द्रव्य है जो और सब द्रव्योंको अवकाश देता है या जगह देता है।* हम आकाशमें ही चलते, बैठते, खड़े होते, हाथ पग फैलाते हैं। पक्षी आकाशमें उड़ते हैं। आकाश (space)के दो विभाग हैं। अनंत आकाशके मध्यमें जहांतक जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय पाए जावें वह लोक (universe) है। जहां चारों तरफ मात्र आकाश ही है उसे अलोक (non-universe) कहते हैं।

काल द्रव्य वह है जिसके निमित्तसे सब पदार्थोंमें अवस्थाएं बदलती हैं।× द्रव्यको पुराना करनेवाला कालद्रव्य है। हमारा कपड़ा कुछ दिनोंमें पुराना पड़जाता है क्योंकि कालद्रव्यकी सहायतासे वह हर समय हालतोंको बदलता है। हम बालकसे जवान तथा जवानसे बूढ़े होजाते हैं। हमारे शरीरको पुराना होनेमें निमित्त काल (time) है। जगत परिवर्तनशील है, हर क्षणमें बदलता है। कोई वस्तु एक ही दशामें नहीं रहती है–बदलानेवाला काल है। मिनट, घड़ी, घन्टा,

---

* आकाशस्यावगाहः ॥ १८-५ ॥ त० सू० ।

× वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य २२-५, त. सू.

दिन, रात, सप्ताह, मास आदि व्यवहार काल है जो काल द्रव्यकी अवस्थाएं हैं। काल द्रव्यकी पर्याय सबसे कम काल एक समय (instant) है। समयोंसे मिनट आदि बनते हैं। इस व्यवहार कालका जानपना तीन तरहसे होता है।

(१) अवस्थाओंके बदलनेसे, जैसे चावलका भात बना। जितना समय भात बननेमें लगा वह व्यवहार काल है।

(२) एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेसे, जैसे हम कलकत्तेसे दिल्ली गए, जितना समय लगा वह व्यवहार काल है।

(३) कई आदमी एक प्रकारके कामको करें व कहींपर जावें इसमें सबको एकसा समय न लगेगा कम व अधिक लगेगा, यही व्यवहार-काल है। असली या निश्चय कालद्रव्य कालाणु (Time atom) है जो सर्व लोकमें भिन्न२ रत्नोंके ढेरके समान फैले हुए हैं। ये ही कालाणु उसी तरह अपने पासके पदार्थोंके बदलनेमें कारण हैं जैसे गाड़ीके पहियेके पलटानेमें कारण धुरी होती है।

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय दोनों अलग२ अमूर्तीक अखंड द्रव्य हैं। हरएक लोकव्यापी है। धर्मास्तिकाय (midium of motion) जीव और पुद्गलोंको गमन करते हुए उसी तरह मदद देता है जैसे पानी मछलीको चलनेमें मदद देता है। अधर्मास्तिकाय (midium of rest) जीव और पुद्गलोंको ठहरनेमें मदद देता है जैसे छाया पथिकको ठहरनेमें मदद देती है। ये दोनों चलाने या ठहरानेमें प्रेरक नहीं हैं* इन दोनों द्रव्योंका जहांतक फैलाव है वहीं तक जीव पुद्गल जासक्ते हैं और फिर ठहर जाते हैं। इन ही दोनों

*-गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७।५. त० सू० ॥

द्रव्योंके कारण लोक अपनी मर्यादामें स्थिर है, नहीं तो अनंत आकाशमें जीव पुद्गल चले जाते—सर्व लोक बिखर जाता।

शिष्य—इनको आपने द्रव्य क्यों कहा?

शिक्षक- जो अपने ही गुणोंमें अवस्था किया करे उसे द्रव्य कहते हैं। जीव और अजीव तत्त्वोंमें छः द्रव्य गर्भित हैं। एक जीव द्रव्य, पांच अजीव द्रव्य। ये छहों पदार्थ कूटस्थ नहीं हैं, अपने२ स्वभावोंमें रहते हुए कुछ काम किया करते हैं इसीलिये इनको द्रव्य (substance) कहते हैं। छः द्रव्योंके सिवाय जगतमें कुछ नहीं है, इन ही की सारी रचना है। छः द्रव्योंमें काम करनेवाले (actors) संसारी अशुद्ध जीव और पुद्गल हैं। ये चार काम करते रहते हैं—चलना, ठहरना, जगह पाना तथा बदलना। इनके इन चारों कामोंमें क्रमसे सहायता देनेवाले चार द्रव्य हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाश और काल। यह नियम है कि हरएक कार्यके लिये दो कारणोंकी जरूरत है—एक उपादान या मूल कारण (root or primary cause) दूसरा निमित्त या सहायक कारण (auxiliary cause) जैसे रुईसे तागे बने। उपादान कारण रुई है, निमित्त कारण चरखा व चरखा चलानेवाला आदि है। रोटीका उपादान कारण गेहूं है, निमित्त कारण चक्की, चकला, आग व बनानेवाली है।

शिष्य—द्रव्यका भी कोई लक्षण है?

शिक्षक—जो सदा बना रहे, न कभी पैदा हो न कभी नाश हो उसको द्रव्य कहते हैं। दूसरा लक्षण यह है कि उसमें हर समय तीन बातें पाई जावें—उत्पत्ति, व्यय तथा स्थिरता (rise, decay

and Continuity) अवस्थाको बदलते हुए पुरानी अवस्थाका व्यय या नाश होता है, नवी। अवस्थाकी उत्पत्ति या पैदाइश होती है तौभी मूल द्रव्य अपने गुणोंके साथ बना रहता है। जैसे सोनेकी डलीकी अँगूठी बनाई गई तब डलीकी दशाका व्यय हुआ, अंगूठीकी दशाकी उत्पत्ति हुई, सुवर्ण द्रव्य बना हुआ है। चनेका दाना हमारे हाथमें है उसको उंगलीसे मल डाला तब चनेकी दशा बिगड़ी। चूरेकी दशा प्रगट हुई तौ भी जो कुछ चनेमें था, सो ही चूरेमें है। क्रोधभाव किसी जीवमें था, वह जब मिटा तब शांतभाव प्रगट हुआ तथापि जिसमें भाव पलटा वह जीव वही है। यह लक्षण यदि द्रव्यमें न हो तो द्रव्यसे कोई काम न हो। कोई बाजारसे चांदी खरीद करके लाता है, यदि चांदीका गहना न बने अवस्था न बदले तो चांदी खरीद करके न लावे तथा चांदी अपनी हरएक दशामें बनी न रहे—नाश होजावे तौ भी कोई चांदीको न खरीदे। द्रव्यका एक लक्षण गुण पर्यायवान पना है। जिसमें गुण तथा पर्याय सदा पाए जावे। गुण द्रव्यके साथ सदा रहता है—पर्यायें बदलती रहती हैं। जैसे चांदी पुद्गलमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुण हैं, उसकी हालत कुछ न कुछ बदलती रहती है, यही पर्याय है। कोई द्रव्य, गुण तथा पर्यायके विना नहीं मिल सक्ता है।

हम जीव हैं. चेतना आदि हमारे गुण हैं, हमारी अवस्था जो कुछ है, या होगी सो पर्याय है।*

---

*—सत् द्रव्यलक्षणम्॥२९॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्॥ ३०॥ गुणपर्ययवत् द्रव्यम्॥ ३८।५ ॥ त० सू०।

आप समझ गए होंगे कि ये छहों द्रव्य बहुत जरूरी हैं। ये छहों ही द्रव्य जीव अजीव तत्त्वमें गर्भित हैं।

शिष्य-हम इन दो तत्वोंको तो समझ गए हैं, अब तीसरे तत्वको समझाइये।

शिक्षक—शुभ या अशुभ कर्मोंके बंधने लायक कार्मणवर्गणाओंके आनेके द्वार या कारणको तथा उन कर्म-पिंडोंके आत्माके निकट आनेको आस्रव कहते हैं। जो कर्मपिंडके आनेके द्वार या कारण हैं उसको भावास्रव कहते हैं और कर्मपिंडके आजानेको द्रव्यास्रव कहते हैं। जैसे नावमें छेद होनेपर पानी आजाता है. छेद पानी आनेका द्वार है। इसी तरह भावास्रव छेदके समान है और द्रव्यास्रव नावमें पानी आनेके समान है।

हमारे पास तीन कारण अच्छे या बुरे काम करनेके हैं। वे हैं—मन, वचन, काय। मनसे हम सोचते हैं, इरादा करते हैं। वचनसे बात करते हैं। शरीरसे क्रिया करते हैं।

हमारा आत्मा शरीरमात्रमें फैला हुआ है। इसलिये मन या वचन या कायकी कुछ भी क्रिया जब होती है तब आत्मामें हलन-चलन होजाता है. इसीको योग कहते हैं। जो संयोग करावे उसे योग कहते हैं। यही योग कर्मवर्गणाओंको खींच लेता है। यही कर्मपिंडोंके आनेका द्वार है। इसलिये इसीको भावास्रव या आस्रव कहते हैं।*

जब मन वचन कायकी क्रिया शुभ भावोंसे या इरादेसे की जाती है तब उसको शुभ योग कहते हैं और जब मन, वचन,

*कायवाङ्मनः कर्मयोगः ॥१॥६ त. सू.॥ स आस्रवः ॥२॥६॥ त.सू.

कायकी क्रिया अशुभ भावोंसे या बुरे इरादेसे की जाती है तब उसे अशुभ योग कहते हैं। शुभ योगसे मुख्यतासे पुण्य कर्म बंधनेलायक कर्मपिंड आते हैं। अशुभ योगसे पाप कर्म बंधनेलायक कर्मपिंड आते हैं।×

शिष्य-शुभ भाव तथा अशुभ भावोंके कुछ नमूने बता दीजिये।

शिक्षक-शुभ भावोंके नमूने इस तरह होसक्ते हैं—

जीवदया, सत्य वचन बोलनेका भाव, ईमानदारीसे पैसा कमानेका भाव. संतोष भाव, ब्रह्मचर्य पालनेका भाव, देवपूजा, गुरुसेवा, शास्त्र स्वाध्याय, संयम, तप या दानके भाव, भूमि देखकर चलनेका भाव, परोपकार भाव, स्वार्थत्याग भाव, दुःख पड़नेपर समतासे सहलेनेका भाव, सुख होनेपर उन्मत्त न होनेका भाव, क्षमा, विनय, सरलता, शुचिभाव, ममताकी कमी, प्राणीमात्रपर मैत्री, गुणवानोंको देखकर आनंदभाव, अपनेसे विरुद्ध जो हों उनपर माध्यस्थ भाव या क्षोभ रहित भाव।

अशुभ भावोंके नमूने ये होसक्ते हैं—

हिंसक भाव, असत्य वचन बोलनेका भाव, चोरीका भाव, कुशीलका भाव, तीव्र ममता, मिथ्यादेव, मिथ्यागुरु, मिथ्या शास्त्र, व मिथ्या धर्मकी भक्ति, प्रतिज्ञा या व्रत भंग करनेका भाव, दुष्ट या दुर्जनताका भाव. हिंसाके उपकरण बनानेका भाव, दूसरोंको संतापित या दुःखित व शोकित करनेका भाव, प्राण लेनेका भाव, रागी होकर रमणीक रूप देखनेका भाव, रागी होकर रमणीक स्त्री आदिके स्पर्शनेका भाव, आम्नाय यथार्थ होनेपर भी निरादरका भाव, परि-

× शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३।६॥ त. सू.

ग्रह बढ़ानेका भाव. तीव्र क्रोध, तीव्र मान, तीव्र माया, तीव्र लोभ, जिह्वा आदि इन्द्रियोंकी लम्पटता, शिकार खेलनेका भाव, मदिरा पीनेका भाव, अभक्ष्य भोजनकी लालसा, वेश्याप्रसंग व परस्त्री प्रसंगके भाव आदि।

शिष्य–इन अशुभ भावोंके होनेके मूल कारण क्या हैं?

शिक्षक–मिथ्याज्ञान इन्द्रियोंकी इच्छाएं और क्रोधादि कषाय हैं। मिथ्याज्ञान उस ज्ञानको कहते हैं जो असत्यको सत्य समझे। मैं पहले बता चुका हूं कि हमारा आत्मा स्वभावसे पूर्ण ज्ञानमय, पूर्ण शांतिमय तथा पूर्णानन्दमय है। जो ऐसा न समझकर यह माने कि आत्मा रागी द्वेषी है, शरीरकी अपेक्षा आत्मा ही पशु, पक्षी, मानव, कीटादि है, जो शरीरको और आत्माको, पापपुण्यमई कर्मको और आत्माको भिन्न न जाने, जो संसारके क्षणभंगुर सुखको सच्चा सुख माने, जो आत्मीक आनंदको न जाने, जो संसारके नाशवंत धनादि व पुत्रादिको अपना ही जान मोह करे–उनके मोहमें अपने आत्माके गुणोंको भुलादे, यह सब मिथ्या ज्ञान है। इसे अविद्या, अज्ञान, मोह भी कहते हैं। संसारके जालमें फंसानेका यही मूल है। जिसके भीतर यह मिथ्याज्ञान रहता है वही अपनी स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियोंसे जिन जिन विषयोंको या पदार्थोंको जानता है उनमें रागद्वेष कर लेता है। यदि अच्छे मालूम होते हैं तो राग करता है, बुरे मालूम होते हैं तो द्वेष कर लेता है। जिनको अच्छे जानते हैं, प्यारे जानते हैं उनके लेनेके लिये या पानेके लिये लोभ कषाय तथा माया कषाय करता है। जब वे मिल जाते हैं तब मान कषाय करके दूसरोंको छोटा बड़ा देखता है। जिनको बुरा समझता है

उनसे क्रोध करता है । इस तरह अविद्याके कारणसे इन्द्रियोंके विषयोंमें लम्पटता होती है । और इन्द्रिय विषयोंकी लम्पटतासे क्रोधादि कषायोंमें फंसता है। बस, कषायोंमें उलझकर अपना स्वार्थ साधनेको यह हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, परस्त्रीमें रत होजाता है, धनादि परिग्रहमें तीव्र ममता करके उनको बढ़ाता है। ऊपर कहे हुए सब नमूने विषय कषायमें फंसनेके कारणसे हैं।

शिष्य—शुभ भावोंके होनेमें मूल कारण क्या है ?

शिक्षक—मिथ्या ज्ञानकी जगह सम्यग्ज्ञानका होना मूल कारण है । तब सम्यग्ज्ञानी इन्द्रिय भोगोंकी तृष्णा नहीं रखता है । पांचों इन्द्रियोंसे जानकर जिन विषयोंके सेवनसे आत्मोन्नतिमें बाधा नहीं पड़े उनको मन्द रागसे सेवन करता है । उसके क्रोधादि चारों कषाय मन्द होते हैं । वह जानता है कि मेरे आत्माका सच्चा हित आत्मीक सुखशांतिको पाना व आत्माको शुद्ध करना है । वह जानता है कि इन्द्रियोंके भोगोंसे तृप्ति नहीं होसक्ती है । सच्चा ज्ञानी जगतको एक नाटक समझता है । यदि सुखकी सामग्री मिलती है तब उसमें उन्मत्त नहीं होता है। यदि दुखकी सामग्री मिलती है तब उसमें घबड़ाता नहीं है । सुख व दुःखको समता भावसे भोग लेता है । दोनोंको धूप व छायाके समान नाशवंत जानता है । इसीसे सम्यग्ज्ञानी न्यायमार्गी होजाता है। वह अपने कष्टोंके समान दूसरोंके कष्टोंको समझता है इसीलिये उसके मनमें चार भावनाएं रहती हैं ।

शिष्य—कृपा करके चार भावनाएं समझा दीजिये ।

शिक्षक—मैत्री भावना—सर्व प्राणी मात्रपर प्रेम रखना कि मुझसे यदि उनका कुछ हित हो तो ठीक है ।

प्रमोद भावना-गुणवानोंको, सज्जनोंको, धर्मात्माओंको देखकर मनमें प्रसन्न होजाना।

करुणा भाव-दुःखितोंको देखकर व जानकर दयाभाव रखना, उनके कष्टोंको दूर करनेका यथाशक्ति उद्यम करना।

माध्यस्थ भाव-जो अपनी सम्मतिसे विरुद्ध हैं उनपर न राग न द्वेष रखना, उनपर उदासीन भाव (indiff rence) रखना।

सम्यग्ज्ञानी जीवके शुभ मन, वचन, कायोंका वर्तन ऊपर प्रमाण होता है।

शिष्य-मिथ्याज्ञानीके भी जगतमें शुभ मन, वचन, कायका वर्तन देखा जाता है वो कैसे?

शिक्षक-मिथ्याज्ञानी भी जीव दया पालते हैं, सत्य बोलते हैं, चोरी नहीं करते हैं, अपनी स्त्रीमें संतोष रखते हैं, लाभमें संतोष रखते हैं, परोपकार करते हैं, दान देते हैं परन्तु उनका भीतरी आशय आत्मशुद्धि व सुख शांतिका लाभ नहीं होता है किंतु कुछ और ही होता है। जैसे हमें पुण्य कर्म बन्धेगा तो संसारका सुख होगा अथवा हमारा जगतमें यश होगा। अथवा समाजमें हम प्रतिष्ठित माने जावेंगे। इस तरह किसी भीतरी लौकिक आशयसे बड़े २ पुण्यके कर्म करते हैं।

आपको हमने संक्षेपसे यह बता दिया है कि हम अपने ही भावोंसे कर्मपिंडको खींचते हैं, यही आस्रव तत्त्व है।

शिष्य-अच्छा! अब कृपा करके बंध तत्त्वको समझाइये।

शिक्षक-जैसे नावमें पानी आकर नावमें भर जाता है तब नाव पानीसे भारी होजाती है, इसी तरह जो कर्मपिंड आता है वह

आत्माके कार्मण शरीरके साथ मिलकर ठहर जाता है, इसीको बंध कहते हैं। बंध चार तरहका होता है—**प्रकृति बंध, प्रदेश बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध**। यह बंध वास्तवमें मन, वचन, काय योगोंसे तथा क्रोध, मान, माया, लोभ कषायोंके कारण होता है। बंधके कारणोंको भाव बंध कहते हैं। कर्मोंके बंधनेको द्रव्य बंध कहते हैं। जब कर्म बंधता है तब जैसी मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति होती है उसीके अनुसार उन कर्मपिंडोंमें जो बंधते हैं प्रकृति या स्वभाव पड़ जाता है व उसीके अनुसार कर्मपिंडोंकी संख्या नियमित होती है कि इतना कर्मपिंड इस इस प्रकृतिका बंधा उसे प्रदेश बंध कहते हैं। ये दोनों प्रकृति और प्रदेश बंध योगोंसे होते हैं, कर्मपिंड तब बंधता है जब उसमें कालकी मर्यादा पड़ती है कि ये कर्मपिंड इतने कालतक बंधे रहेंगे व इस कालके पीछे न रहेंगे। इस कालकी मर्यादाको स्थिति बंध कहते हैं। कषायकी तीव्रता व मंदताके कारण कर्मोंमें स्थिति अधिक या कम पड़ती है। इसी समय उन कर्मपिंडोंमें तीव्र या मन्द फल-दानकी शक्ति पड़ती है उसको अनुभाग बंध कहते हैं। यह बंध भी कषायके अनुसार अधिक या कम होता है। स्थितिबंध और अनुभागबंध कषायोंके अनुसार होते हैं।

वास्तवमें मन, वचन, काय और कषाय ही बंधके कारण हैं। जैसे हम भीतमें लाल रंग पोत दें तो लाल रंगका भीतके साथ बन्ध होजायगा, उसमें भी चार भेद मालूम पड़ेंगे। उस रंगका स्वभाव तो प्रकृति बंध है, कितना रंग चिपटा सो प्रदेश बन्ध है, कितने कालतक चिपटा रहेगा यह स्थितिबन्ध है, उसकी

तीव्रता या मन्दता अनुभाग बन्ध है।× कर्मोंकी प्रकृति यह आठ तरहकी होती हैं ज्ञानावरण आदि, यह हम आपको बता चुके हैं। कर्म बंधनेके पीछे उसी तरह पकते रहते हैं जैसे खेतमें बीज बोनेपर वृक्ष पकता है। वे ही कर्म अपनी मर्यादाके भीतर फल देकर झड़ने भी जाते हैं। जैसे हम इस दिखनेवाले शरीरमें हवा, पानी, भोजन खाते हैं वे ही हमारे भीतर स्वभावसे पककर खून आदि बन जाते हैं उन हीका वीर्य बनता है, वीर्यसे ही हम चलते फिरते व काम करते हैं, हमारे अंग उपंगमें शक्ति रहती है, वैसे ही हम इस सूक्ष्म शरीरमें आप ही पुण्य व पाप कर्म बांधते हैं व आप ही उसका अच्छा या बुरा फल भोगते हैं। आस्रव और बंध तत्त्वोंसे हमें यह ज्ञान होता है कि हम किस तरह हर समय कर्मोंको बांधकर अशुद्ध होते रहते हैं। आप समझ गए होंगे कि ये दोनों तत्त्व कितने जरूरी हैं।

शिष्य–वास्तवमें बहुत जरूरी हैं। अच्छा कृपाकर आप पांचवें संवर तत्त्वको बताइये।

शिक्षक--आस्रवका विरोधी संवर है। कर्मपिंडके आनेका रुक जाना सो संवर है। जिन भावोंसे कर्म रुकते हैं उनको भावसंवर कहते हैं, कर्मोंके रुक जानेको द्रव्य संवर कहते हैं।+

हम पहले बता चुके हैं कि मन, वचन, कायकी क्रियाओंसे कर्म पिंडोंका आस्रव होता है। अशुभ मन, वचन, कायसे पापकर्म

× सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः। प्रकृतिस्थित्यनुभाग प्रदेशास्तद्विधयः ॥ २, ३। ८ त. सू.

+ आस्रवनिरोधः संवरः ॥ १।९ त. सू.

तथा शुभ मन, वचन, कायसे पुण्य कर्म आता है। यदि हम चाहते हैं कि पाप कर्म न आने पावे तो हमें चाहिये कि हम अशुभ मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिको बन्द करदें। जैसे हमको जुए खेलनेकी आदत हो तो जुएको त्यागदें। किसीको सतानेकी व किसीके प्राण घात करनेकी आदत हो तो हम सताना व प्राणघात करना छोड़दें। झूठ वचन बोलनेकी आदत हो तो हम झूठ वचन बोलना छोड़दें, चोरी करनेकी आदत हो तो हम चोरी करना छोड़दें, मदिरा पीनेकी आदत हो तो हम मदिरा पीना छोड़दें, भांग पीनेकी आदत हो तो हम भांग पीना छोड़दें, वेश्या प्रसंग व परस्त्री प्रसंगकी आदत हो तो हम वेश्या या परस्त्री प्रसंग छोड़दें। अपने मन, वचन, कायको पापके द्वारोंसे बचानेके लिये हमको सच्चे भावसे उनके त्यागकी प्रतिज्ञा लेलेनी चाहिये फिर उस प्रतिज्ञाको दृढ़तासे पालनी चाहिये। मानवोंकी बुरी आदतोंको सुधारनेके लिये प्रतिज्ञा बड़ी आवश्यक बात है।

हम यह भी बता चुके हैं कि अशुभ भावोंके मूलकारण मिथ्या ज्ञान, इन्द्रियोंकी इच्छाएं तथा क्रोधादि कषाय हैं। अशुभ भावोंसे बचनेके लिये हमें सम्यग्ज्ञान, इन्द्रियोंका निरोध (control of senses) व कषायोंका वश करना या शांत रखना (peacefulness) आवश्यक है। हमको यह सच्चा ज्ञान रखना चाहिये कि हम आत्मा हैं। हमारा असली स्वभाव कर्मबन्ध, रागद्वेषादि व शरीरादिसे भिन्न है। सच्चा सुख व सच्ची शांति हमारे ही आत्मामें है। हमें दुःख पड़नेपर आकुलित व संसारके सुख होनेपर उन्मत्त न होना चाहिये। शरीरको एक दिन छूटनेवाला समझकर हम शरीरके रहते हुए आत्मोन्नति व परोपकार करलेना चाहिये। स्त्री, पुत्र, मित्रादिको मात्र

शरीरको थोड़े दिनका साथी मानना चाहिये। आत्मा अकेला ही शरीरमें आता है व अकेला ही मरता है। अकेला अपने कर्मोंका फल भोगता है। ऐसा समझकर मोहमें पड़कर अपने आत्माको पापोंमें नहीं फंसाना चाहिये। धर्म व नीतिसे चलकर जगतके मोहमें अपनेको न उलझाना चाहिये। इन्द्रियोंको अपने आधीन रखना चाहिये। उनके वशमें पड़कर अनुचित काम नहीं करना चाहिये। क्रोध, मान, माया, लोभको अपने आधीन रखकर शांत भाव, कोमल भाव, सरल भाव तथा संतोष भाव रखना चाहिये।

जीवोंके भाव तीन तरहके होते हैं—अशुभ उपयोग, शुभ उपयोग, शुद्ध उपयोग। bad thought-activity, good thought-activity, pure thought-activity. अशुभ उपयोगसे पाप कर्म बंधता है, शुभ उपयोगसे पुण्य कर्म बंधता है, शुद्ध उपयोगसे कर्मोंका नाश होता है।

पापकर्मसे बचनेके लिये हमें अशुभ उपयोग छोड़ना चाहिये। शुभ उपयोगमें वर्तना चाहिये। जब हमको शुद्ध उपयोगका लाभ होगा तब पुण्य कर्मका आना भी बंद हो जायगा। आत्माको सर्व कर्मबंधसे बचानेका उपाय शुद्ध उपयोग है।

शिष्य—कृपाकर निर्जरातत्वको बताइये।

शिक्षक—कर्म अपने समयपर फल दिखला करके झड़ते हैं। इसको सविपाक निर्जरा कहते हैं। आत्मध्यानसे लिए हुए तप करनेसे व इच्छाओंको निरोध करनेसे जब भावोंमें वीतरागता होती है तब बांधे हुए कर्म अपने पकनेके समयके पहले ही बिना फल दिये

हुए झड़जाते हैं। इसको अविपाक निर्जरा कहते हैं।* जैसे नावके भीतर भरे हुए पानीको धीरे धीरे निकाल दिया जावे और नये पानीके आनेका छेद बन्द कर दिया जावे तो वह नाव चलने लायक होकर सीधी अपने स्थानपर चली जायगी, इसी तरह संवरके द्वारा जब नए कर्मोको रोक दिया जाता है और आत्मध्यानके द्वारा धीरे २ कर्मोकी निर्जरा की जाती है तो बंधे हुए कर्म दूर किये जाते हैं तब आत्मा कभी न कभी कर्मोसे खाली या मुक्त होजाता है।

शिष्य–मोक्ष तत्व किसे कहते हैं।

शिक्षक–आत्माका सर्व कर्मोसे छूट जानेको व नवीन कर्म बंध होनेके कारणोंके मिट जानेको मोक्ष तत्त्व कहते हैं। मोक्ष होजानेपर आत्मा शुद्ध होजाता है। इसी शुद्ध आत्माको सिद्ध कहते हैं।

इन सात तत्त्वोंसे यह भलेप्रकार जानलिया जाता है कि आत्मा अशुद्ध कैसे होता है व शुद्ध कैसे होसक्ता है। इसी लिये इनका जान लेना जरूरी है।

शिष्य–पुण्य पापका क्या स्वरूप है?

शिक्षक–पुण्य कर्मको पुण्य व पाप कर्मको पाप कहते हैं। सात तत्वोंके भीतर इनका स्वरूप गर्भित है। आस्रव तत्व और बंध तत्वमें ये दोनों आजाते हैं।

शिष्य–फिर इनको अलग कहनेका क्या प्रयोजन है?

शिक्षक–क्योंकि जगतमें पुण्य व पाप प्रसिद्ध हैं, इसीलिये

* तपसा निर्जरा च ॥ ३।९

बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्म विप्रमोक्षो मोक्षः ॥२।१०॥ त०

इनको कहा गया है कि जगतके प्राणी समझ सकें कि पुण्य कर्मका व पाप कर्मका बन्ध कैसे होता है। तथा इनका फल क्या होता है।

शिष्य—आठ कर्मोमें कौन पाप हैं कौन पुण्य हैं ?

शिक्षक—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अंतराय ये चार घातीय कर्म तो पाप रूप ही हैं, शेष चार अघातीयमें पाप पुण्य दो भेद हैं। शुभ आयु, शुभ नाम, उच्च गोत्र व सातावेदनीय पुण्य कर्म हैं तथा अशुभ आयु, अशुभ नाम, नीच गोत्र तथा असाता वेदनीय पाप कर्म हैं।

इन नौ तत्व या पदार्थोंका विशेष स्वरूप आगे बताएंगे।

शिष्य—मुझे जैन तत्वोंको जानकर बड़ा ही आनन्द हुआ। मैं रोज एक घंटा आपको दूंगा। अब कल आऊंगा, आप कुछ और, विशेष बातें बतावें।

चौथा अध्याय ।

तत्वज्ञानका साधन ।

शिष्य—कृपाकर यह बताइये कि इन सात तत्वोंके जाननेके उपाय जैन शास्त्रमें क्या २ कहे हैं ?

शिक्षक—यह प्रश्न बहुत ही जरूरी है । बहुतसे उपाय कहे हैं । मैं जरूरी २ आपको बताऊंगा ।

हम अपने वचनोंसे किसी भी पदार्थको सर्वांग एक साथ नहीं कह सक्ते हैं । जिस दृष्टि या अपेक्षासे एक अंशी कथन किया जाता है उसको नय (Standpoint) कहते हैं । जैन सिद्धांतमें दो नय बहुतजरूरी हैं—एक निश्चयनय या द्रव्यार्थिक नय (Real or substantial point of View) दूसरा व्यवहार नय या पर्यायार्थिक नय (practical or point of modification).

जो नय असली, मूल, शुद्ध स्वभावको बतावे उसको निश्चयनय कहते हैं । जो मूल स्वभावको न बताकर शुद्ध या अशुद्ध अवस्थाओंको या भेदोंको बतावें सो व्यवहारनय है । जगतके साधारण प्राणी व्यवहारनयका ज्ञान तो रखते हैं परन्तु निश्चयनयसे हैं । जानकार नहीं है । इसीलिये उनको मूल तत्व हाथ नहीं लगता । अशुद्ध वस्तुको शुद्ध करनेका यही उपाय है कि हम उस वस्तुको दो दृष्टियोंसे जानें । एक रुईका बना सफेद कपड़ा मैलके संयोगसे मैला है । इसको निश्चयनयसे हम रुईका बना सफेद देखेंगे तथा व्यवहारनयसे इसको मैलसे मिला मैला देखेंगे । तब हमारी यह बुद्धि पैदा होगी कि मैल

कपड़ेसे अलग है, इसको दूर किया जासक्ता है। तब हम मसाला लेकर कपड़ेको धोडालेंगे। यदि हम एक ही दृष्टिसे देखें तो कपड़ा कभी साफ नहीं होसक्ता है। यदि हम मैले कपड़ेको मैला ही देखें या हम उसे सफेद ही देखें तब हम कभी उसे साफ नहीं कर सक्ते हैं। इसीतरह हम आत्माको निश्चयनयसे शुद्ध व व्यवहारनयसे कर्म मलसे मिला अशुद्ध जानेंगे तब ही यह बुद्धि हमारेमें पैदा होगी कि हम इस कर्म मैलको जो अशुद्ध है दूर कर सक्ते हैं। एक मिट्टीका घड़ा हमारे सामने है यह निश्चयनयसे पुद्गल द्रव्य है, व्यवहारसे मिट्टीका घड़ा है। एक वृक्षको हम व्यवहारनयसे वृक्ष कहते हैं, निश्चयनयसे देखेंगे तो उस वृक्षमें जितना पुद्गल है उसको पुद्गल देखेंगे। और उसके सिवाय जो शुद्ध जीव है उसे शुद्ध जीव देखेंगे। इन दोनों नयोंसे जाननेकी रीति ही हमारे मोहको या रागद्वेषको घटा सक्ती है। हमारे कुटुम्बमें स्त्री पुत्रादि हैं। हम व्यवहारनयसे उनको शरीरसे हमारा सम्बन्ध होनेके कारणसे स्त्री पुत्रादि कहेंगे परन्तु निश्चयनयसे ये सब हमें जीव और पुद्गल दो रूप दिखलाई पड़ेंगे। उनमें चेतनालक्षणधारी जीव अलग एक शुद्ध स्वभावमें दीख पड़ेगा। शेष स्थूल व सूक्ष्म शरीर सब पुद्गल दीख पड़ेगा। हम स्त्री पुत्रादिको व्यवहारमें ऐसा कहते हुए भी यह जानेंगे कि ये मूलमें हमारे स्त्री पुत्रादि नहीं हैं। ये तो सब शुद्ध आत्मा हैं। जैसा निश्चयनयसे मेरा आत्मा शुद्ध है वैसा इनका आत्मा शुद्ध है। हम सब एकरूप हैं, यह ज्ञान हमारे भीतर समताभाव पैदा कर देगा, रागद्वेषको मिटा देगा। निश्चयनयसे देखते हुए जगतमें न कोई मित्र या बंधु दिखलाई पड़ेगा और न कोई शत्रु दीख

पड़ेगा । सब एकरूप दीख पड़ेंगे । आत्मध्यानके समय इसी निश्चय-नयसे देखनेका अभ्यास करना चाहिये । व्यवहारनयको बंद कर देना चाहिये । जब आत्मध्यान न हो और व्यवहारमें चलना हो तब व्यवहारनयसे देखकर यथायोग्य परस्पर काम करना चाहिये । यद्यपि व्यवहारनयसे देखते हुए रागद्वेष होगा तथापि भीतरसे मोहरूप न होगा । प्रयोजन मात्र ही होगा, क्योंकि वह जानता है कि ये सब जीव मेरेसे भिन्न हैं, अपने२ कर्मोंको बांधकर यहां आए हैं और कर्मोंको बांधकर अपनी२ भिन्न गतिमें चले जांयगे, इनसे मेरा नाता कुछ नहीं है । व्यवहारनयसे जब भेषोंका ज्ञान होता है तब निश्चय नयसे मूल पदार्थोंका ज्ञान होता है ।

भेष बदलते रहते हैं इसीसे इनको पर्याय या अवस्था कहते हैं । मूल द्रव्य कभी बिगड़ता नहीं इसीसे उसको नित्य कहते हैं* इन दोनों नयोंके द्वारा जबतक तत्वोंको न समझा जायगा तबतक सच्चा ज्ञान नहीं होगा । और जिनवाणीके उपदेशका फल प्राप्त न होगा । किंतु इनको समझनेसे पूरा फल प्राप्त होसकेगा ।

शिष्य—मैं इन दो नयोंको तो समझ गया । क्या कोई और भी उपाय है ?

शिक्षक—एक उपाय यह है कि हम पर्यायोंके सम्बन्धमें नीचे

---

*निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम् ।
भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः ॥ ५ ॥
व्यवहारनिश्चयौ यः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः ।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्यः ॥८॥ पु.सि.

लिखी छः बातें समझें तथा दूसरोंको बतानेके लिये इन्हें समझावें। ये छः बातें × ये हैं—

१ **निर्देश**, या स्वरूप कहना (definition) २ **स्वामित्व** या मालिक बताना (ownership), ३ **साधन** या उसकी उत्पत्तिका कारण बताना (cause), ४ **अधिकरण** या आधार (support) बताना, ५ **स्थिति** या कालकी मर्यादा (duration) बताना, ६ **विधान** या भेद (kinds) बताना। तत्वोंके जाननेका यह एक अच्छा कायदा है। किसी भी विषयपर व्याख्यान करना हो तो हम इन छः बातोंको सोचकर व्याख्यान ठीकर बनासक्ते हैं। जैसे अहिंसा पर कहना हो तो हम पहले निर्देश करें कि प्रमाद सहित मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति रोककर जहां पूर्ण शांतभाव हो वह अहिंसा है। अहिंसाका स्वामी विचारवान मानव होता है। अहिंसाका साधन देखकर चलना, रखना, उठाना, काम करना आदि है। अहिंसाका आधार सब जगहपर है, जहांपर भी हम काम करें, हमें दयाभावसे काम करना चाहिये। अहिंसाकी स्थिति यह है कि हमें हरवक्त अहिंसाका ध्यान जबतक हम कोई काम करते हों रखना चाहिये। अहिंसाके भेद दो हैं—एक स्वअहिंसा, एक परअहिंसा। अपने आपको क्रोधादिसे बचाना स्वअहिंसा है। परकी रक्षा करना पर-अहिंसा है। इसीलिए हम यदि सम्यग्दर्शनके ऊपर समझावें तो कहेंगे कि तत्वोंका श्रद्धान करना निर्देश है, सम्यग्दर्शनके स्वामी सब ही मन सहित पंचेन्द्रिय जीव होसक्ते हैं, सम्यग्दर्शनका साधन तत्वोंका मनन व उसके रोकनेवाले कर्मोंका हटना है। सम्यग्दर्शनका आधार यह

× निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ॥७॥१॥ त. सू.

सब जगह है जहां, पांच इन्द्रिय मनवाले जीव पैदा होते हैं। सम्य-ग्दर्शनकी स्थिति थोड़ी भी है व अनंतकाल है। सम्यग्दर्शनके भेद तीन हैं--औपशमिक, क्षायोपशमिक, व क्षायिक। जो बाधक कर्मोंके उपशमसे हो वह औपशमिक है। यह करीब ४८ मिनटसे ज्यादा नहीं रहता है। इस समयको अंतर्मुहूर्त कहते हैं। जो बाधक कर्मोंके क्षयसे, उपशमसे या कुछ उदय या असरसे हो वह क्षयोपशमिक है। इसकी स्थिति अधिकसे अधिक छ्यासठ सागर (असंख्य वर्षोंका होता है) जो बाधक कर्मोंके नाशसे हो वह क्षायिक है। यह कभी छूटता नहीं, अनंत कालतक रहता है।

शिष्य–यह तरीका तो बहुत अच्छा है। इससे हम हरएक विषयपर लेख बना सक्ते हैं।

शिक्षक–किसी विषयपर लेख लिखते हुए छः से कममें भी काम चल सक्ता है। जिस किसीमें छहों बातें हम कह देंगे वहां पूरा वर्णन हो जायगा। अच्छा, आपके पास यह कोट है इसका वर्णन कर जाओ।

शिष्य–कोट वह है जिससे शरीरको शरदी, गर्मी व हवासे बचाया जाता है, यह निर्देश है। कोटका स्वामी मैं हूं, यह स्वामित्व है। यह कोट कपड़ेसे व दरजीसे बना है, यह साधन है। कोट मेरे शरीर पर रहता है या कमरेमें टंगा रहता है या गठरीमें बंधा रहता है वह आधार है। कोट दो वर्षसे ज्यादा चलता नहीं मालूम होता यह इसकी स्थिति है। कोटके भेद दो कह सक्ते हैं-मैला या उजला। उजला साफ दिखता है, मैला बुरा मालूम होता है।

शिक्षक–अच्छा, आप मनुष्य हैं इसपर भाषण कर जाइये।

शिष्य—हम मनुष्य हैं, हमारा काम विचारपूर्वक हरएक काम करनेका है यह निर्देश है । हमारे स्वामी हम हैं या हमारे पिता माता हैं । हमारा साधन—या हमारी उत्पत्तिका कारण हमारा बांधा कर्म है तथा हमारे माता पिता हैं । हमारा आधार वह नगर है जहां हम पैदा हुए या वह कुल स्थान है जहां हम जासक्ते हैं । हमारी स्थिति हमारी उम्र है जबतक हम जीवेंगे । हमारे भेद बाल-कपन, युवापन, वृद्धपन होसक्ते हैं । या विद्यार्थी व गृहस्थ, आदि होसक्ते हैं । मैं समझ गया । और कोई उपाय है ?

शिक्षक—तत्वोंके समझनेका एक और उपाय है । सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अंतर, भाव, अल्पबहुत्व । इन आठ बातोंसे भी हम वर्णन कर सक्ते हैं ।*

(१) किसी वस्तुको सिद्ध करना कि वह है यह सत् (existence) है ।

(२) उसकी गिनती बताना व उसके भेदोंको बताना संख्या (number) है ।

(३) वर्तमानकालमें उसके रहनेका ठिकाना बताना—क्षेत्र (present place) है ।

(४) कहांतक वह रहा स्पर्श कर सक्ता है या जासक्ती है बताना स्पर्शन (extent of going) है ।

(५) उस वस्तुके रहनेकी मर्यादा बताना काल (duration) है ।

* सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८। १ ॥
त० सू०

(६) एक अवस्थासे दूसरी अवस्था होनेपर फिर उसी अवस्थामें आनेतक जो बीचकी जुदाईका काल है उसे बताना सो अन्तर (interval) है।

(७) उस वस्तुका स्वभाव बताना सो भाव (nature) है।

(८) उस वस्तुकी प्राप्ति कम कहां व कब होती है, अधिक कहां व कब होती है यह बताना अल्पबहुत्व comparative quantity है।

जैसे जीव द्रव्यका व्याख्यान करना हो तो हम इस तरह आठ बातोंसे बता सक्ते हैं—

(१) जीव है क्योंकि चेतनालक्षण प्रगट है, हम देखते जानते हैं, जड़में यह बात नहीं मिलती है। यह सत् है।

(२) जीवोंके भेद मुख्य संसारी और सिद्ध हैं, व इन्द्रियोंकी अपेक्षा पांच भेद हैं। संख्या अनंत है, यह संख्या है।

(३) जीवका वर्तमान निवास अपने२ देहमें है व अपनी२ गतिमें है व जहां वह पाया जावे वहां है, यह क्षेत्र है।

(४) जो जीव जहांतक जासक्ता है वह उसका स्पर्शन है। जैसे-हम पैदा तो बम्बईमें हुए हैं परन्तु जहांतक जहाज, रेल या हवाई विमान द्वारा जानेका मार्ग है वहांतक जासक्ते हैं, यह स्पर्शन है।

(५) जिस जीवकी जो उम्र जिस शरीरमें है वही उसका काल है।

(६) एक जीव मानव था, मरकर घोड़ा हुआ फिर मानव हुआ। बीचमें जो ४० वर्ष बीते वह विरहकाल या अंतर है।

(७) जीवका भाव ज्ञान दर्शन, शुद्ध अशुद्ध, अनेक प्रकारका है, यह भाव है।

(८) जीव कहीं थोड़े व कहीं अधिक पाए जाते हैं। जैसे-बम्बईमें बहुत मानव हैं-दिल्लीमें कम हैं।

क्या आप अजीवपर आठ बातें कह सकोगे ?

शिष्य-मैं कोशिश करता हूं—

(१) अजीव है क्योंकि यह कलम या दावात, कागज सब अजीव हैं। इनमें जीवपना नहीं है, हम देख रहे हैं। यह सत है।

(२) अजीवके भेद पांच हैं, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल, यह संख्या है।

(३) अजीवोंका क्षेत्र सर्वलोक है, विशेष करके इस दावातका वह क्षेत्र है जहां यह इस वक्त है। यह क्षेत्र है।

(४) अजीवोंका स्पर्शन आकाशकी अपेक्षा अनंत है। विशेष करके यह दावात जहांतक हम लेजावें वहांतक जासक्ती है, इसका यह स्पर्शन है। मेघ जहां बने यह तो उनका क्षेत्र है। जहांतक वे उड़के जासके हैं वहांतक उनका स्पर्शन है।

(५) अजीवोंका काल सामान्यसे अनंत है। विशेषसे एक चौकी जहांतक टूटे नहीं वहांतक उसका काल है। एक मकान जहांतक गिरे नहीं वहांतक उनका काल है।

(६) अजीवोंमें विशेषकी अपेक्षा ऐसा जानना कि यह नगर पहले बना था फिर उजाड़ हुआ बादमें बन गया, बीचमें ५०० वर्ष लगे यह अंतर है।

(७) अजीवोंके गुणोंको बताना भाव है. जैसे पुद्गल उसे कहते हैं जहां स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाए जावें।

(८) अजीवोंमें विशेष करके किसी जगह काठ बहुत है जैसे

बहुत है, दूसरी जगह काठ थोड़ा है। यह अल्पबहुत्व है। वास्तवमें यह भी अच्छी रीति है। इससे हम किसी विषयका ठीक वर्णन कर सक्ते हैं। क्या और भी कोई रीति पदार्थोंके जाननेकी है?

शिक्षक—प्रमाण और नयोंसे भी पदार्थोंका ज्ञान होता है।×

शिष्य—प्रमाण नयका स्वरूप समझाइये।

शिक्षक—जिस ज्ञानसे पदार्थको पूरा जान सकें वह प्रमाण है व जिससे कुछ अंश जान सकें वह नय है। जैसे यह नारंगी है ऐसा जानना प्रमाणसे हुआ; यह लाल है ऐसा जानना नयसे हुआ।

प्रमाण ज्ञानके पांच भेद हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञान।* जो ज्ञान पांच इन्द्रिय व मनके द्वारा सीधा पदार्थको जान सके वह मतिज्ञान mental knowledge है। जैसे स्पर्शन इन्द्रियसे छूकर जानना कि यह चिकना पत्थर है, यह गर्म लोहा है, यह ठंडी चद्दर है। रसना इन्द्रियसे स्वाद लेकर जानना कि यह नींबू खट्टा है। यह नारंगी मीठी है। यह इमली खट्टी है। घ्राण इन्द्रियसे सूंघकर जानना, कि यह गुलाब सुगंधित है, यह हवा दुर्गंधमय है। चक्षु इंद्रियसे देखकर जानना कि यह आदमी गोरा है, यह काला है, यह मकान सुन्दर है, यह कपड़ा गन्दा है। कानइन्द्रियसे सुनकर जानना कि यह शब्द घोड़ाका है यह वृषभका है। श्रुतज्ञान (scriptural knowledge) वह है जो मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थके सम्बन्धसे दूसरे पदार्थको जाने। जैसे कानसे शब्द सुनकर उसके अर्थका ज्ञान कर लेना। जीव शब्द सुनकर

× प्रमाणनयैरधिगमः ॥१।६॥ त. सू.

* मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९-१ त० सू०।

चेतनालक्षण जीवको जान लेना। ठंडी हवाको मालूम कर यह रोग-कारक होगी ऐसा जानना श्रुतज्ञान है। शास्त्रोंको पढ़कर या सुनकर अर्थ समझना श्रुतज्ञान है।

जो ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा लिये हुए बिना इन्द्रिय और मनकी सहायताके पुद्गल द्रव्यका तथा संसारी आत्माओंका हाल जान सके वह अवधिज्ञान Visual Knowledge है जैसे अपने या दूसरे पूर्व जन्म व आगेके जन्मका हाल जान लेना। कितने मोटे या महीन पदार्थको जाने वह द्रव्यका ज्ञान है, कितनी दूर तकके भीतरकी बात जाने वह क्षेत्रका ज्ञान है। कितने समय आगेकी व पीछेकी बात जाने वह कालका ज्ञान है। कितने गुणोंको व स्वभावोंको जाने वह भावका ज्ञान है। बहुतसे साधु योगबलसे इस ज्ञानको पालेते हैं तब उनसे कोई पूछे कि हमारे पूर्व जन्मोंका हाल कहिये तो वह उस ज्ञानसे उसी तरह सब हाल देखकर जानते हैं जैसे किसी चित्रसे सब हाल जाना जासके। अवधिज्ञानवालेको अपनी मर्यादाके भीतरके पदार्थ प्रत्यक्षके समान दीखते हैं जैसे दिल्लीको चार कोस तकका ज्ञान है तो वह यहां बैठा हुआ चार कोस तकका सब हाल जान सक्ता है।

मनःपर्यय ज्ञान Mental Knowledge उसे कहते हैं जो अवधिज्ञानकी तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा लिये हुए दूसरोंके मनमें विचार किये जानेवाले पुद्गल व संसारी जीवोंको बिना इन्द्रिय व मनकी सहायताके आप ही जान ले। यह ज्ञान योगियोंको योग बलसे होता है। एक आदमी १००० कोसकी दूरीपर किसी गणितके प्रश्नका विचार कर रहा है। मनःपर्यय ज्ञानवाला साधु

इस बातको जान जायगा। जो ज्ञान सर्व पदार्थोंके सर्व गुणोंको व सर्व पर्यायोंको एकसाथ विना किसी आलम्बनके जान सके वह केवलज्ञान Perfect Knowledge है। इसीको सर्वज्ञपना कहते हैं।

नयोंके दो भेद हम बता चुके हैं--निश्चयनय और व्यवहारनय। अब दूसरे जरूरी भेद बताते हैं। नयोंके सात भेद जरूरी हैं। नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, एवंभूत; इनमेंसे पहली तीन नयोंको द्रव्यार्थिक कहते हैं क्योंकि वह द्रव्य या सामान्यको जानती हैं। पिछली चार नयोंको पर्यायार्थिक कहते हैं क्योंकि वे पर्याय या अवस्था--विशेषको जानती हैं। इन नयोंको जाननेकी आवश्यक्ता इसलिये है कि जगतमें व्यवहार तरह२के वाक्योंसे होता है. वे वचन किस अपेक्षासे सत्य हैं. इस बातको जाना जासके, तथा कहनेवाला झूठा न कहलावे।

नैगमनय—जिस नयसे एक निश्चित बातपर न जाकर विकल्प उठाया जावे। या संकल्प किया जावे और उसी संकल्पका ग्रहण हो सो नैगमनय है। इसके तीन भेद हैं—

(१) **अतीतनैगमनय**—भूतकालकी बातमें वर्तमानकालका संकल्प जिससे हो. जैसे कहना कि आज बादशाहका जन्मदिवस है। यह कथन इस नयसे ठीक है क्योंकि हमने आजके दिन यह मान लिया कि बादशाहका जन्म हुआ, यद्यपि जन्म तो वास्तवमें ६० वर्ष पहले हुआ था। या यह कहना कि आज श्री महावीर भगवान मोक्ष गए हैं—आज उनका निर्वाणदिन है, ऐसा दीवालीके दिनको कहते हैं सो कहना इस अतीतनैगमनयसे ठीक है, वास्तवमें ठीक नहीं है क्योंकि जन्मको तो करीब २५०० वर्ष हुए।

(२) भाविनैगमनय—जो बात आगे होनेवाली है उसको वर्तमानमें होगई ऐसा संकल्प करना। जैसे—कोई दफ्तरमें उम्मेदवारी करता है, अभी नियत नहीं हुआ है तौभी यह समझकर वह अब जरूर नियत होजायगा, ऐसा कहना कि आप तो नियत होचुके हो क्यों घबड़ाते हो. ऐसा वचन इस नयसे ठीक है।

(३) वर्तमान नैगमनय—जो बात वर्तमानमें प्रारम्भ की हो व प्रारम्भ करनेका संकल्प हो व उसका प्रबन्ध करता हो तो भी कहना कि वह होरही है, वह होगई है. सो ऐसा संकल्प इस नयसे ठीक माना जाता है। जैसे कोई आदमी लकड़ी चीर रहा है उसके मनमें यह संकल्प है कि कुरसी बनाऊंगा। उससे कोई पूछता है भाई क्या कर रहे हो तो वह कह देता है कुरसी बना रहा हूं। वास्तवमें देखा जावे तो वह लकड़ी काट रहा है। कुरसीका कुछ भी काम नहीं कर रहा है। परन्तु लकड़ी काटना कुरसीका एक प्रारंभिक काम है, इसलिये यह वचन ठीक है।

(२) संग्रहनय—जो नय जो एक जातिके पदार्थोंको एक साथ ग्रहण करे संग्रहनय है। जैसे कहना कि यह उपवन [illegible] है। यहां उपवन शब्द बहुतसे वृक्षोंको बताता है। या कहना कि [illegible] सेना [illegible] होता है, [illegible]

दोनों जगह संग्रहनयसे ठीक है।

(३) व्यवहारनय—[illegible]

[illegible]

[illegible]

संसारी और मुक्त। या संसारी जीवोंके पांच भेद हैं–एकेंद्रिय, द्वेन्द्रिय, तेंद्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

(४) **ऋजुसूत्रनय**–जो पदार्थकी वर्तमान पर्यायको या अवस्थाको ग्रहण करे सो ऋजुसूत्रनय है। जैसे कहना कि यह आदमी बूढ़ा है, यह लड़की रोगी है, यह आम पक गया है, आजका मौसम ठण्डा है।

(५) **शब्दनय**–जो व्याकरण व साहित्यके नियमके अनुसार शब्दोंका व्यवहार करे वह शब्दनय है। कहींपर एकवचनमें बहुवचन, बहुवचनमें एकवचन, स्त्रीलिंगमें पुरुषलिंग। वर्तमानकालमें भूतकाल आदिका व्यवहार शब्दोंसे हो तो वह शब्दनयसे ठीक माना जायगा। जैसे एक मानवको देखकर कहना आप तो कभी कभी आते हैं, यहां एकको बहुत कहना शब्दनयसे ठीक है। या रावण रामसे युद्ध करनेको सेना एकत्र कर रहे हैं। यहां भूतकालमें वर्तमानकी क्रिया है सो शब्दनयसे ठीक है। संस्कृतमें स्त्रीके लिये दारा पुंलिंग शब्दका व्यवहार करते हैं, शब्दनयसे यह ठीक है।

(६) **समभिरूढनय**--शब्दोंके अनेक अर्थ होनेपर भी एक किसी पदार्थमें उस शब्दके एक अर्थका व्यवहार करना जिसमें हो वह समभिरूढ़नय है। जैसे गौको गौ कहना, गो शब्दके अर्थ पृथ्वी, जल, वाणी, चलनेवाले अनेक हैं, उनमेंसे चलनेवाली अर्थ लेकर गौको गोका शब्द कहना, सोती हुई दशामें भी उसे गौ ही कहेंगे। यह बात समभिरूढ़नयसे ठीक है। या जैसे किसीको बढ़ई या लुहार कहके पुकारना चाहे वह रोटी खाता हो व शयन करता हो।

(७) **एवंभूतनय**–जिस शब्दका जो अर्थ हो उसीके समान क्रिया करते हुए पदार्थको जो माने या ग्रहण करे सो एवंभूतनय है।

जैसे जब बढ़ई बढ़ईका काम करता हो तब ही बढ़ई कहना. डाक्टर जब डाक्टरी करता हो तब ही उसे डाक्टर कहना।

इन पिछले तीन नयोंको शब्दनय भी कहते हैं, क्योंकि इन तीनोंमें शब्दकी मुख्यता है।

मैं समझता हूं कि आप प्रमाण और नयका मतलब समझ गए होंगे।

शिष्य–मैंने आपके कथनको लिख लिया है। अभी तो मैं समझ गया हूं, मैं इसपर और विचार करूंगा।

क्या और भी कोई तरीका समझनेका है।

शिक्षक–पदार्थोंके सम्बन्धमें चार प्रकारका लोकमें व्यवहार होता है। उनको निक्षेप कहते हैं। इनको भी समझ लीजिये––

(१) **नाम निक्षेप**–लोकमें पदार्थको पहचाननेके लिये ऐसा नाम रखना जिसके गुण पदार्थमें न हों, जैसे किसी बालकका नाम महावीर रख दिया या देवसिंह या पार्श्वनाथ या पन्नालाल रख दिया। यह नाम लिखने पढ़ने बुलानेमें बहुत जरूरी है, नामके बिना किसीके सम्बन्धमें वर्णन करना कठिन है। इसीसे जगतमें हरएकका नाम रखा जाता है।

(२) **स्थापना निक्षेप**–काष्ट, मिट्टी, पाषाण आदिमें किसीकी स्थापना करके यह भाव करना कि यह वही है सो स्थापना निक्षेप है। इसके दो भेद हैं--तदाकार स्थापना, अतदाकार स्थापना। जैसी जिसकी सूरत हो वैसी ही उसकी मूर्ति या चित्र बनाकर मानना कि यह वही है यह तदाकार स्थापना है। जैसे लाला लाजपतरायका पुतला या लोकमान्य तिलकका पुतला बनाकर मानना यह वे ही हैं या श्री महावीर भगवानकी मूर्ति बनाकर मानना कि यह श्री महावीर

हैं। इस मूर्तिका सम्मान या अपमान उसीका सम्मान या अपमान समझा जाता है जिसकी वह मूर्ति है।

किसी भी वस्तुमें बिना वैसे आकारके किसीको मानना अनाकार स्थापना है। जैसे भूगोलमें कलकत्तेके नकशेमें एक लकीरको गंगा नदी मान लेना। किसी दूसरी लकीरको रेलगाड़ीका मार्ग मान लेना। किसी तीसरी लकीरको हरिसन रोड़ मान लेना। जगतमें इन दोनों प्रकारकी स्थापनाकी जरूरत पड़ती है। मकान बनानेके पहले नकसा खींचना पड़ता है। मृतक प्राणियोंके चित्रोंसे उनकी यादगार बनी रहती है।

(३) **द्रव्य निक्षेप**—जो अवस्था भूतकालमें थी व भविष्यमें होनेवाली है उसको वर्तमानमें उस पदार्थमें व्यवहार करना सो द्रव्य निक्षेप है। जैसे कोई जज था अब जजी नहीं करता है, पेन्शनपर है, तोभी उसको जज कहना, या कोई मॅजिस्ट्रेट होनेवाला तो भी पहलेसे ही उसे मजिष्ट्रेट कहना।

(४) **भाव निक्षेप**—वर्तमान अवस्था जिस पदार्थकी जैसी हो उसको वैसा कहना। जैसे राज्य करते हुएको राजा कहना, वैद्यकका काम करते हुवेको वैद्य कहना।

शिष्य—वास्तवमें ये निक्षेप भी बहुत जरूरी मालूम पड़ते हैं। कृपा करके बताइये कि निक्षेप और नयमें क्या अंतर है।

शिक्षक—नय तो उस ज्ञानको कहते हैं जो पदार्थके एक [illegible] स्वभावको जानता है। निक्षेप उस पदार्थको कहते हैं जिसको [illegible] है। जैसे [illegible] व राजपुत्र नयसे भाव निक्षेप [illegible] [illegible] द्रव्यनिक्षेप हो जायेंगे। समभिरूढ़ नयसे

नाम निक्षेपको जानेंगे। नय देखनेवाली है निक्षेप देखने योग्य है।

शिष्य—क्या और कोई बात ऐसी जरूरी है जिससे पदार्थोंका व तत्वोंका ठीक २ ज्ञान हो।

शिक्षक—जैनियोंमें प्रसिद्ध स्याद्वाद (manysided doctrine) सिद्धांत है या सप्तभंगी नय है, उसको जानना जरूरी है।

शिष्य--जरूर समझाइये।

शिक्षक—एक पदार्थमें बहुतसे आपेक्षिक स्वभाव पाए जाते हैं। जिनमें एक दूसरेका विरोध दीखता है, स्याद्वाद उनको भिन्न २ अपेक्षा (standpoint) से ठीक ठीक बता देता है। सर्व विरोध मिट जाता है। स्याद्वादका अर्थ है स्यात्--किसी अपेक्षासे (from some point of view) वाद--कहना (to describe) किसी अपेक्षासे किसी बातको जो बतावे वह स्याद्वाद है।

एक मानव पचास वर्षका है। वह अपने भीतर अनेक सम्बन्ध रखता है। वह अपने पिताका पुत्र है। अपने पुत्रका पिता है। अपने चाचाका भतीजा है, अपने मामाका भानजा है। अपने भाईका भाई है इत्यादि। परन्तु इन सबको एक ही साथ हम शब्दोंसे कह नहीं सके। जब हम एक संबंधको कहते हुए स्यात् शब्द पहले लगा देंगे तो समझनेवाला जानेगा कि इसमें और भी संबंध हैं।

जैसे हमने कहा **स्यात् पिता**—किसी अपेक्षासे यह पिता है, तब सुननेवाला समझ जायगा कि इसमें और भी सम्बन्ध हैं।

स्यात् पुत्र—किसी अपेक्षासे पुत्र है।

हरएक पदार्थ जगतमें नित्य भी है अनित्य भी है, एक रूप भी है अनेक रूप भी है; सत् रूप भी है असत्रूप भी है।

ये तीन जोड़े विरोधी स्वभावोंके हैं तथापि ये भिन्न २ अपेक्षासे पाये जाते हैं, इससे कोई विरोध नहीं रहता है।

इनमेंसे नित्य, अनित्य इन दो स्वभावोंको पदार्थमें बताते हुए सात भंग कैसे बनते हैं उनको हम बताते हैं। हरएक पदार्थ सतरूप है, अविनाशी है, इससे तो वह नित्य है। वही पदार्थ अवस्थाकी उत्पत्ति व व्ययकी अपेक्षासे अनित्य है। द्रव्यका लक्षण हम पहिले बता चुके हैं कि जो उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप हो वह द्रव्य है। दूसरे शब्दोंमें जो अनित्य व नित्यरूप हो वह द्रव्य है। यदि ये दोनों स्वभाव एक ही समयमें किसी भी द्रव्यमें न पाए जावें तो उस द्रव्यसे कुछ भी काम नहीं लिया जासक्ता।

हम सुवर्णका दृष्टांत लेते हैं। यदि सुवर्ण नित्य ही हो तो उसमें कोई अवस्था नहीं होसक्ती है। वह सदा एकसा बना रहेगा तब उसको कोई बुद्धिमान न खरीदेगा। क्योंकि उससे आभूषणकी अवस्था तो बनेगी ही नहीं। यदि सुवर्णको अनित्य ही मानलें तोभी उसे कोई खरीदेगा नहीं क्योंकि वह तो क्षणभरमें बिल्कुल न रहेगा। सो ऐसा सुवर्णका स्वभाव नहीं है। सुवर्ण सुवर्णरूपमें रहता हुआ भी अपनी अवस्थाओंको बदल सक्ता है। सुवर्णकी डलीसे बाली, बाली तोड़कर अंगूठी, अंगूठी तोड़कर कंठी बनजाती है। यदि नित्य अनित्य उभयरूप सुवर्ण न हो तो सुवर्णसे कोई काम नहीं होसक्ता। इसी तरह जीव द्रव्य भी मूल द्रव्यकी अपेक्षा नित्य है परन्तु अवस्थाओंके बदलनेकी अपेक्षा अनित्य है। एक जीव क्रोधी होरहा है। वही कुछ काल पीछे शांत होजाता है। उसकी अवस्था पलटी तब भी जिसमें अवस्था पलटी वह द्रव्य तो वही है।

जो क्रोधी था वही शांत है। जीवमें भी नित्य अनित्य दोनों स्वभावोंको मानना होगा तब ही वह संसारीसे सिद्ध होसकेगा। अवस्था बदलेगी परन्तु जीव वही संसारी था, वही सिद्ध होजाता है। किसी शिष्यको समझानेके लिये उसको सात तरहसे समझाएंगे—

१–स्यात् नित्यं–किसी अपेक्षासे अर्थात मूल द्रव्यकी अपेक्षासे पदार्थ नित्य है।

२–स्यात् अनित्यं–किसी अपेक्षासे अर्थात अवस्थाके बदलनेकी अपेक्षासे पदार्थ अनित्य है।

३–स्यात् अवक्तव्यं–किसी अपेक्षासे पदार्थ वचनसे एक साथ नहीं कहने योग्य है। पदार्थमें नित्य अनित्य दो स्वभाव एक ही समय हैं परन्तु हम अपने मुखसे एकके पीछे दूसरा कहेंगे, एक साथ दोनोंको एक ही समय नहीं कह सके, इसलिये वस्तु अवक्तव्य भी है।

तीन स्वभावोंसे सात भंग बन जाते हैं। जैसे हमारे पास लाल, पीला, काला रंग हों उनके भेद सात ही बनेंगे कम व अधिक नहीं। वे इस तरहपर (१) लाल (२) पीला (३) काला (४) लाल पीला (५) लाल काला (६) पीला काला (७) लाल पीला काला। इसी तरह ऊपर कहे तीन स्वभावोंके सात भंग बनेंगे। तीन तो ऊपर कह चुके हैं, चार इस प्रकार होंगे

(४) स्यात् नित्यं अनित्यं–यदि दोनों धर्मोंको हम बतावें तो ऐसा कहेंगे कि दोनोंको कहनेकी अपेक्षासे द्रव्य नित्य भी है अनित्य भी है।

(५) स्यात् नित्यं अवक्तव्य च–किसी अपेक्षासे द्रव्य नित्य भी है अवक्तव्य भी है। यदि एक समयमें दोनों स्वभावोंको कहें

तो वस्तु अवक्तव्य है तथापि मूलद्रव्यकी अपेक्षा तो नित्य अवश्य है।

(६) **स्यात् अनित्यं अवक्तव्यं च**-किसी अपेक्षासे द्रव्य अनित्य भी है अवक्तव्य भी है। यदि एक समयमें दोनों स्वभावोंको कहने लगे तो वस्तु अवक्तव्य है तथापि अवस्थाके बदलनेकी अपेक्षा वस्तु अनित्य अवश्य है।

(७) **स्यात् नित्यं अनित्यं अवक्तव्यं च**-किसी अपेक्षासे वस्तु नित्य भी है अनित्य भी है और अवक्तव्य भी है। यदि दोनों स्वभावोंको एक साथ कहना चाहे तो वस्तु अवक्तव्य है। यदि क्रमसे कहेंगे तो वह नित्य भी है अनित्य भी है। इस तरह सात भंगोंमें नित्य अनित्य स्वभावोंका पाया जाना एक ही समयमें सिद्ध किया गया।

वस्तु अनेक गुण व पर्यायोंका पिंड है इसलिये एक रूप है। भिन्न २ गुणोंकी व पर्यायोंकी अपेक्षा वही अनेक रूप है। एक आमका फल है वह एक पिंडकी अपेक्षा एक रूप है तब ही स्पर्शकी अपेक्षा स्पर्शरूप, रसकी अपेक्षा रसरूप, गंधकी अपेक्षा गंधरूप, वर्णकी अपेक्षा वर्णरूप है। इसलिये आम अनेकरूप है। ये दोनों ही स्वभाव आममें एक ही समयमें हैं। इन दोनों स्वभावोंको समझानेके लिये भी सात भंग ऊपर प्रमाण बनेंगे।

(१) स्यात् एकं (२) स्यात् अनेकं (३) स्यात् अवक्तव्यं (४) स्यात् एकं अनेकं (५) स्यात् एकं अवक्तव्यं च (६) स्यात् अनेकं अवक्तव्यं च (७) स्यात् एकं अनेकं अवक्तव्यं च।

पदार्थ अपने स्वरूपकी अपेक्षा भावरूप है तब ही परके स्वरूपकी अपेक्षा अभावरूप है। एक रामचंद्र मनुष्य है उसमें रामचन्द्रका स्वरूप तो है परन्तु उसमें उसके सिवाय अन्य पदार्थोंका

स्वरूप नहीं है यह रामचंद्र है, लक्ष्मणसिंह नहीं है दुर्गासिंह नहीं है। चौकी नहीं है। कुरसी नहीं है, आकाश नहीं है। इसलिये पदार्थ भाव अभाव दोनों रूप है। जीवमें जीवपना है पुद्गलपना नहीं, आकाशपना नहीं; पुद्गलमें पुद्गलपना है जीवपना नहीं, आकाशपना नहीं। इन भाव अभाव स्वभावोंके भी नीचे प्रमाण सात भंग होंगे—

(१) स्यात् भावः (२) स्यात् अभावः (३) स्यात् अवक्तव्यः (४) स्यात् भावः अभावः (५) स्यात् भावः अवक्तव्यः (६) स्यात् अभावः अवक्तव्यः (७) स्यात् भावः अभावः अवक्तव्यः।

यह संसारी आत्मा शुद्ध भी है अशुद्ध भी है। यदि मूल स्वभावकी अपेक्षासे विचार किया जावे तब तो यह शुद्ध है; किन्तु कर्मोंके बंध व रागद्वेषादि भावोंकी अपेक्षा विचार किया जाय तो यह अशुद्ध है। यदि एकांतसे एक ही बात मानें तो कभी भी जीव शुद्ध नहीं होसकता। यह बात हम पहले भी मैले कपड़ेका दृष्टांत देकर बता चुके हैं। इसीको सात भंगरूप कहेंगे जिससे शिष्य समझ जावे।

(१) स्यात् शुद्धः (२) स्यात् अशुद्धः (३) स्यात् अवक्तव्यः (४) स्यात् शुद्धः अशुद्धः (५) स्यात् शुद्धः अवक्तव्यः (६) स्यात् अशुद्धः अवक्तव्यः (७) स्यात् शुद्धः अशुद्धः अवक्तव्यः।

शिष्य—बहुत ही बढ़िया तरीका है। मैंने एक दफे किसी अपने सहपाठीसे कहते सुना था कि शंकराचार्यने जैनियोंके स्याद्वादका खूब खंडन किया है।

शिक्षक—मैं समझता हूं कि शंकराचार्यजीने या तो ठीक ठीक समझनेका उद्यम न किया होगा या उस समयके पंडितोंने स्याद्वाद जानबूझकर और बताया होगा। क्योंकि इस समयमें जैनोंके साथ

अन्य मतोंका बहुत कुछ वैमनस्य था। एक दूसरेका खंडन किया जाता था। आजकलके अजैन विद्वानोंने स्याद्वादको समझकर इसकी बहुत प्रशंसा लिखी है। मैं कुछ मत ऐसे विद्वानोंके बताता हूं। डाक्टर भंडारकर बम्बई कहते हैं---

There are two ways of looking at things—one called *Dravyarthiknaya* and the other *Paryayarthiknaya*. The production of a jar is the production of something, not previously existing; if we take the latter point of view, i. e. as Paryaya or modification; while it is not the production of something not previously existing, when we look at it from the former point of view, i. e. as a Dravya or substance.

So when a soul becomes through his merits or demerits, a god, a man or a denizen of hell, from the first point of view, the being is the same, but from the second he is not the same, i. e. different in each case. So that you can confirm or deny something of a thing at one and the same time.

This Leads to the celebrated *Sapta Bhangi Naya* or the seven modes of assertion.

You can confirm existence of a thing from one point of view (Syad Asti), deny it from another (Syad Nasti), and affirm both existence and non-existence with reference to it at different times (Sayd Astinasti). If you should think of affirming both existence and non-existence at the same time from the same point of view, you must say that thing can not be spoken of (Syad Avaktavya)...........It is not meant by these modes as there is no certainty or that we have to deal with probabilities only, as some scholars have thought. All that is implied is that every assertion which is true is true only under certain conditions of space, time etc.

भावार्थ—पदार्थोंके विचार करनेके दो मार्ग हैं--एक द्रव्यार्थिक नय, दूसरा पर्यायार्थिक नय। जैसे मिट्टीका घड़ा बना, तब

जो पहले न था सो बना ऐसा कहेंगे। यह बात हम पर्याय या अवस्थाकी अपेक्षा कहेंगे। तथा जब हम उसे द्रव्य दृष्टिसे विचारेंगे तो कहेंगे कि यह पहले न था सो नहीं है किन्तु वही मिट्टी है। इसी तरह जब कोई जीव अपने पुण्य, पापके कारण देव, मनुष्य, या नारकी होता है तब द्रव्यकी दृष्टिसे वही है किंतु पर्यायकी दृष्टिसे भिन्न भिन्न है। इस तरह आप एक ही समयमें किसी वस्तुमें विधि निषेध सिद्ध करसक्ते हैं। इसीको समझानेके लिये सप्तभंगी नय है या कहनेके सात मार्ग हैं। आप किसी अपेक्षासे किसी वस्तुकी सत्ता कह सकते हैं, यह स्यादस्ति है। विधि निषेध दोनों क्रमसे कह सकते हो यह स्यादस्तिनास्ति है। यदि दोनों अस्ति नास्तिको एक साथ एक समयमें कहना चाहो तो नहीं कह सके हो यह स्यादवक्तव्य है....। इन भंगोंके कहनेका मतलब यह नहीं है कि इनमें निश्चित नहीं है या हम मात्र संभवित कल्पनाएं करते हैं, ऐसा कुछ विद्वानोंने समझा है।

इस सबका यह प्रयोजन है कि जो कुछ कहा जाता है वह किसी द्रव्य, क्षेत्र, कालादिकी अपेक्षासे सत्य है। (देखो जैनधर्मकी माहिती हीराचंद नेमचंदकृत सन् १९११ पृष्ठ ५९.

(२) जर्मनीके विद्वान तत्वज्ञानी डाक्टर जॉन हर्टेल कहते हैं "इस स्याद्वादसे सर्व सत्य विचारोंका द्वार खुल जाता है।" (देखो जैनदर्शन गुजराती जैनपत्र भावनगर सं० १९७० पृष्ठ १३६).

(३) प्रोफेसर फणिभूषण अधिकारी एम० ए० हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस अपने ता० २६ अगस्त १९२५के भाषणमें कहते हैं—

It is this intellectual attitude of impartiality, without which no scientific or philosophical researches can be successful, is what Syadvad stands for.

Even learned Shankaracharya is not free from the charge of injustice that he has done to the doctrine......It emphasis the fact that no single view of the universe or of any part of it would be complete by itself.

There will always remain the possiblities of viewing it from other stand-points.

भावार्थ—स्याद्वाद एक निष्पक्ष बुद्धिवाद है। इसके बिना कोई वैज्ञानिक या सैद्धांतिक खोजें पूर्ण नहीं होसक्ती हैं। विद्वान शंकराचार्य भी उस अन्यायके दोषसे मुक्त नहीं हैं जो उन्होंने इस सिद्धांतके साथ किया है। यह स्याद्वाद इस बातपर जोर देता है कि विश्वकी या इसके किसी भागकी एक ही दृष्टि अपनेसे पूर्ण नहीं है। उस पदार्थमें दूसरी अपेक्षाओंसे देखनेकी संभावनाएं सदा रहेंगी।

(४) श्रीयुत एस० राधाकृष्णन प्रोफेसर कलकत्ता युनिवर्सिटी अपनी पुस्तक Indian philosophy vol 1 में लिखते हैं—

It is a logical corollary of the anekantavada, the doctrine of the manyness of reality (P. 304).

भावार्थ—यह न्याययुक्त सिद्धांत अनेकांतवादका है, जिससे वस्तुके सत्योंका ज्ञान होता है।

शिष्य—मैंने अपने किसी मित्रसे कभी सुना था कि जैनियोंने इस स्याद्वादके सिद्धांतको दूसरे मतोंके खण्डन करनेके लिये बना लिया है। यह कोई असली पुराना सिद्धांत नहीं है।

शिक्षक—आपके मित्रकी समझ ठीक नहीं है। यह स्याद्वाद

स्तुका स्वरूप है। यह तो जैन [illegible] है।*
इसीको अनेकांतवाद कहते हैं। यह सिद्धांत ही हमको अपने जीव द्रव्यका सच्चा ज्ञान कराता है। हमारे जीवमें हमारे जीवपनेका भाव है, उसी समय मेरे जीव सिवाय अन्य सबका मेरेमें अभाव है। मेरा जीव अपने शुद्ध द्रव्यरूप व गुणरूप आप अकेला है। इसमें दूसरे कोई जीव नहीं हैं न इसमें पुद्गल आदि कोई पांच द्रव्य अजीव हैं। न इसमें राग, द्वेषादि हैं। इन सबका जीवमें अभाव है। मेरा जीव भावरूप भी है, अभावरूप भी है। इसीके सात भंग बन जायेंगे।

आत्माके आनंदका भोग करनेके लिये आत्माके शुद्ध स्वरूपका सच्चा ज्ञान होना उचित है। वह भाव अभावरूप स्वभावों व धर्मोंके ज्ञानसे ही होगा। हरएक वस्तु नित्य अनित्य दोनों रूप है यह हम आपको बता चुके हैं। इन्हीं वस्तु-स्वभावोंको समझानेवाला स्याद्वाद है। इसका संकेत संवत विक्रम दूसरी [illegible] में प्रसिद्ध श्री उमास्वामी महाराजने तत्वार्थसूत्रमें इस सूत्रसे किया है—
"अर्पितानर्पितसिद्धेः" अर्थात् जब नित्य व अनित्य दोनों स्वभाव द्रव्यमें हों और उनको सिद्ध करके बताना हो तब एकको मुख्य करके समझाओ तब दूसरेको गौण करदो।

शिष्य—मैं समझ गया। अच्छा अब [illegible] होगा।

---

* [illegible]
[illegible] ॥ ९ ॥
भा०— [illegible]
[illegible]
[illegible] है। [illegible]

पाँचवाँ अध्याय।

जीव तत्व।

शिष्य–जीवतत्वके सम्बन्धमें कुछ और जरूरी बातें हों तो बताइये।

शिक्षक–जीवोंके प्राण पाए जाते हैं जिनसे वे जीते थे, जीते हैं, व जीते रहेंगे निश्चयनयसे या मूलद्रव्यके स्वभावसे तो इस जीवका एक चेतना (consciousness) प्राण है तो कभी छूटनेवाला नहीं है। व्यवहारनयसे संसारी जीवके मूल चार प्राण पाए जाते हैं–इंद्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास जिनके द्वारा हम स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द जान सकें उनको इंद्रिय कहते हैं वे पांच हैं–स्पर्शन इंद्रिय, रसना इंद्रिय, घ्राण इंद्रिय, चक्षु इंद्रिय, कर्ण इंद्रिय।

जिनसे हम शक्तिपूर्वक कुछ काम कर सकें उसको बल कहते हैं वे तीन प्रकार हैं–कायबल जिससे चलते, उठते, उठाते, धरते हैं। वचनबल जिससे शब्द निकालते या बात करते। मनबल जिससे हित अहितका व कारण कार्यका विचार करते हैं। जिसके असरसे हम एक स्थूल शरीरमें बने रहते हैं वह आयु है। जिससे हमारे शरीरमें रक्त आदिका संचार होता है ऐसी हवाको लेना व निकालना सो श्वासोच्छ्वास है। इन चार प्राणों (Vitalities) के दस भेद होजाते हैं।

संसारी जीवोंके मूल दो भेद हैं–स्थावर, त्रस। एक स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा स्पर्शको जाननेवाले स्थावर होते हैं। वे पांच प्रकारके हैं–

१–पृथ्वीकायिक–जीव सहित पृथ्वी–जैसे खेतकी व खानकी।

२–जलकायिक–जीव सहित जल–जैसे कूएका, नदीका।

३–अग्निकायिक–जीव सहित आग–जैसे अग्निकी लौ।

४–वायुकायिक–जीव सहित पवन–जैसे ठंडी समुद्रकी हवा।

५–वनस्पतिकायिक–जीवसहित वृक्ष, फूल, फल, शाखा, पत्ते आदि।

इन पांच तरहके एकेन्द्रिय जीवोंके चार प्राण होते हैं। स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, आयु, श्वासोछ्वास।

दो इन्द्रिय जीवसे लेकर पांच इन्द्रिय तक जीवोंको त्रस कहते हैं। त्रसोंके पांच भेद नीचे प्रकार होंगे·

(१) द्वेन्द्रिय जीव–जिनके स्पर्शन और रसना ऐसी दो इंद्रियां पाई जाती हैं। जैसे–लट, शंख, सीप, केंचुआ आदि। इनके छः प्राण पाए जाते हैं।

स्पर्शन इंद्रिय, रसना इंद्रिय, काय बल, वचन बल, आयु, श्वासोछ्वास।

शिष्य–इनके वचन बल होता है तो क्या ये शब्द करते हैं?

शिक्षक–जिनके बल होता है उनके शब्द करनेकी शक्ति होती है। कोई२ बोलते मालूम पड़ते हैं जैसे समुद्रके शंख व सीप।

(२) तेन्द्रिय जीव–जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण तीन इंद्रियें होती हैं जैसे चींटी, खटमल, जूं, बिच्छू, गेंडु आदि।

इनके सात प्राण होते हैं। तीन इन्द्रिय, काय बल, वचन बल, आयु, श्वासोछ्वास।

(३) चौन्द्रिय जीव–जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु चार

इन्द्रियें होती हैं जैसे—मच्छर, मक्खी, भौंरा, भिड़, आदि इनके आठ प्राण होते हैं—चार इन्द्रिय, दो बल, आयु, श्वासोछ्वास।

(४) पंचेन्द्रिय जीव असैनी (मन विना) जिनसे पांचों इन्द्रियें होती हैं कान भी होते हैं जैसे कोई २ पानीमें उपजनेवाले सांप। इनके मन बल विना नौ प्राण होते हैं।

(५) पंचेन्द्रिय सैनी-(मनसहित) जिसमें पांचों इन्द्रियें मन सहित होती हैं ऐसे जीव तिर्यंच गतिमें तीन प्रकारके होते हैं—

(१) थलचर—जैसे हिरण, गाय, भैंस, बकरी, सिंह, कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, हाथी, ऊंट आदि।

(२) जलचर—जैसे मगरमच्छ, मच्छ, कच्छप, मछली आदि।

(३) नभचर जैसे कबूतर, मोर, मुरगा, तोता, मैना, तीतर, काक, चील आदि।

मनुष्य गतिमें सर्व ही मानव, नरकगतिमें सर्व नारकी, देव गतिमें सर्व देव। इन सबके दश प्राण होते हैं।

शिष्य—मन किसको कहते हैं?

शिक्षक—एक कमलके आकार सूक्ष्म दिव्य पुद्गलोंका बना हुआ हृदयमें होता है इसके बलसे कारण कार्यका तर्क बुद्धिके साथ विचार किया जाता है।

शिष्य—इन प्राणोंके जाननेका क्या प्रयोजन है?

शिक्षक—हिंसा तथा अहिंसाको समझनेके लिये इनका जानना [illegible] है। आपको हम बता चुके हैं कि जीव [illegible] अधिकारी [illegible] [illegible] हिंसा करते हैं। प्राणोंकी रक्षाको अहिंसा या दया कहते

हैं। हरएक प्राणीके पास जितने प्राण हैं वे उसके लिये बड़े कामकी चीजें हैं। इन हीके द्वारा वे प्राणी इस स्थूल शरीरमें रहते हुए अपना अपना काम करते हैं। यदि हम उनको मार डालेंगे, हमने उनके प्राणोंको नाशकर उनके काममें विघ्न डाला यही अपराध किया।

जितने अधिक व जितने मूल्यवान प्राणोंका घात किया जायगा व उनके बिगाड़से प्राणीको कष्ट दिया जायगा उतना ही अधिक अपराध होगा। जितने कम व कम मूल्यवान प्राणोंका घात किया जायगा व उनके बिगाड़से प्राणीको कष्ट दिया जायगा उतना ही कम अपराध होगा। सबसे कम अपराध स्थावरोंके घातका है, उससे बहुत अधिक द्वेन्द्रियोंके घातका, उससे बहुत अधिक तेन्द्रियोंके घातका, उससे बहुत अधिक चौन्द्रियोंके घातका, उससे बहुत अधिक पंचेन्द्रिय असैनीके घातका, उससे बहुत अधिक पंचेन्द्रियसैनीके घातका, उनमें पशुके घातसे मानवके घातमें अधिक पाप, मानवोंमें भी साधुके घातका, परोपकारीके घातका साधारण मानवकी अपेक्षा अधिक दोष है। पशुओंमें भी इसी तरह उपयोगिताके विचारसे कम व अधिक अपराध है। इसीलिये यह उपदेश है कि दयावान प्राणीको दया तो सबपर रखना चाहिये। अपने जरूरी कामोंके लिये जितनी कम हिंसासे काम चले ऐसा वर्ताव करना चाहिये। स्थावरोंके भीतर दो प्रकारके भेद हैं—सूक्ष्म तथा बादर। हम सब बादर होते हैं।

जो किसी भी इन्द्रियसे न मालूम पड़ें व जो इतने बारीक हों कि बादरोंसे उनका घात न हो न वे अन्यका घात कर सकें उनको सूक्ष्म स्थावर कहते हैं। ऐसे जीवोंसे ठसाठस सर्व लोकमें भरे

हैं। बादर तक भी जाते हैं व घाते भी जाते हैं व परस्पर भी ये घात करते हैं।

इस तरह आपको यह मालूम होना चाहिये कि इस सर्व लोकमें सात तरहके संसारी जीव हैं—एकेन्द्रिय सूक्ष्म, एकेन्द्रिय बादर, द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चोन्द्रिय, पंचेंद्रिय असैनी, पंचेन्द्रिय सैनी। इनके भीतर दो २ भेद होते हैं—पर्याप्त developable अपर्याप्त non-developable.

शिष्य—पर्याप्त अपर्याप्तको समझा दीजिये।

शिक्षक—पर्याप्त उनको कहते हैं जो शरीरादि बननेकी शक्तिको पूर्ण करते हैं। अपर्याप्त उनको कहते हैं जो शरीरादि बननेकी शक्तिको विना पूर्ण किये ही एक श्वासके अठारहवें भाग समयमें अवश्य मरजाते हैं। यहां श्वास एक तन्दुरुस्त मानवकी नाड़ी चलनेको कहते हैं। ४८ मिनट या एक मुहूर्तमें ऐसे ३७७३ श्वास होते हैं। जब कोई जीव कहीं जन्मता है तब जो पुद्गल स्थूल शरीरके बननेके लिये ग्रहण करता है उनमें शरीरादि बननेकी शक्ति पड़ती है। जैसे बीज खेतमें डालनेपर जो बीज जम जाता है उसमें वृक्ष होनेकी शक्ति बन गई ऐसा मानना होगा। ऐसी पर्याप्तियां छः होती हैं—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा व मन। एकेन्द्रियोंके पहली चार, द्वेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय असैनीतक भाषाको लेकर पांच, सैनी पंचेन्द्रियोंके छहों पर्याप्तियें होती हैं। जो पुद्गल शरीर बननेके लिये लेता है उसको स्थूल व तरलरूप करनेकी शक्तिकी प्राप्तिको आहारपर्याप्ति कहते हैं, इसी तरह और पांचोंको भी समझ लेना चाहिये। जैसे शरीररूप करनेकी शक्तिकी प्राप्ति शरीरपर्याप्ति है।

सातों प्रकारके प्राणी यातो पर्याप्त होते हैं या अपर्याप्त। बहुतसे पापी प्राणी जन्मते ही मर जाते हैं। यदि हम जगतके सब प्राणियोंके मिलकर समूह करें तो चौदह होंगे। अर्थात् चौदह जगह उनको बांटकर दूर कर सकेंगे। इन समूहोंको जैन सिद्धांतमें चौदह जीव समास (Soul classes) कहते हैं। क्या आप चौदह समूहोंके नाम लेसकेंगे?

शिष्य–मैं समझ गया, चौदह जीव समास इस तरह कहेंगे– १–एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त, २–एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्त, ३–एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त, ४–एकेंद्रिय बादर पर्याप्त, ५–द्वेंद्रिय अपर्याप्त, ६–द्वेंद्रिय पर्याप्त, ७–तेंद्रिय अपर्याप्त, ८–तेंद्रिय पर्याप्त, ९–चौंद्रिय अपर्याप्त, १०–चौंद्रिय पर्याप्त, ११–पंचेंद्रिय असैनी अपर्याप्त, १२–पंचेंद्रिय असैनी पर्याप्त, १३–पंचेंद्रिय सैनी अपर्याप्त, १४–पंचेंद्रियसैनी पर्याप्त।

शिष्य–जीव तत्वके सम्बन्धमें और कोई जरूरी बात है?

शिक्षक–जीव सब अपनी उन्नति व अवनतिके लिये आप ही स्वतंत्र हैं। ये जीव आप ही पाप पुण्यकर्म बांधते हैं व आप ही उनका फल सुख दुःख भोगते हैं। ये स्वयं कर्ता हैं व स्वयं भोक्ता हैं। निश्चयनयसे ये जीव अपने शुद्ध भावोंके करनेवाले हैं व अपने शुद्ध आत्मीक आनन्दके भोगनेवाले हैं परन्तु कर्मसहित अवस्थामें अशुद्ध निश्चयनयसे ये जीव रागद्वेषादि भावोंके कर्ता हैं व मैं सुखी व मैं दुःखी इस भावके भोक्ता हैं; क्योंकि ये भाव ज्ञान सहित जीवके ही हैं। ये भाव स्वाभाविक नहीं हैं, अशुद्ध हैं, इसलिये अशुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षासे ये जीवके हैं। शुद्ध निश्चयनयसे ये जीवके

नहीं हैं, क्योंकि यदि जीवके स्वभावका विचार करें तो ये भाव नहीं मिलेंगे।

व्यवहार नयसे यह जीव कर्मोंको बांधनेवाले व घटपट मकानादिके करनेवाले हैं व कर्मोंके फलको भोगनेवाले हैं। निश्चयसे जीव अपने भावोंके ही करनेवाले हैं। क्योंकि उन भावोंके निमित्तसे कर्म आप ही बंध जाते हैं या हाथ पैर आदि चलकर घटपट मकानादि बन जाते हैं इसलिये व्यवहारसे कर्ता कहलाते हैं। या जीव निश्चयसे अपने भावोंको ही भोगते हैं क्योंकि सुख या दुखरूप भाव कर्मोंके फलसे या बाहरी कारणसे होता है। इसलिये व्यवहार नयसे ही जीव इनके भोक्ता हैं ऐसा कहनेमें आता है।

जीवोंकी उन्नति करनेके लिये चौदह श्रेणियां हैं इनको गुणस्थान (spiritual stages) कहते हैं। इन श्रेणियोंको पार करके जीव परमात्मा होता है।

शिष्य--क्या आप इनको नहीं समझाएंगे?

शिक्षक--यदि आप ध्यान देके सुनेंगे तो हम जरूर बताएंगे। क्योंकि इनका जानना बहुत जरूरी है, ये हमारी उन्नतिके मार्ग हैं।

शिष्य--मैं आपके वचनोंपर बहुत ध्यान देरहा हूं, आप अवश्य बतावें।

शिक्षक--पहले इनके नाम समझ लो व लिखलो--१--मिथ्यात्व गुणस्थान. २--सासादन गु०. ३--मिश्र गु०, ४--अविरत सम्यग्दृष्टि गु०. ५--देशविरत. ६--प्रमत्तविरत. ७--अप्रमत्तविरत, ८--अपूर्वकरण, ९--अनिवृत्तिकरण. १०--सूक्ष्मसांपराय, ११--उपशांत

मोह, १२--क्षीणमोह, १३--सयोगकेवली, १४--अयोगकेवली।*

मानव जीवनकी उन्नतिकी तीन अवस्थाएं होती हैं--१--गृहस्थ, २--साधु, ३--अरहंत (पूज्य)।

इन चौदह गुणस्थानोंमेंसे पहलेसे लेकर देशविरत गुणस्थान तक अर्थात् पांच गुणस्थान गृहस्थोंके होते हैं। प्रमत्तविरत छठेसे लेकर क्षीणमोह बारहवें गुणस्थानतक सात गुणस्थान साधुओंके होते हैं। दो अंतके गुणस्थान अर्हतोंके होते हैं। इन गुणस्थानोंका सम्बन्ध मोहनीयकर्म तथा योगोंसे है। मोह और मन, वचन, कायके योग ही संसारके मूल हैं। जितना जितना मोहका असर घटता जाता है उतना उतना गुणस्थानका दरजा बढ़ता जाता है। जब ये दोनों मोह और योग बिलकुल नहीं रहते हैं तब आत्मा परमात्मा, मुक्त या सिद्ध होजाता है। मोहनीय कर्म आठों कर्मोंमें बड़ा ही बलवान है, इस कर्मके अट्ठाइस (२८) भेद समझनेकी जरूरत है, आप लिखिये।

शिष्य—आप कहिये मैं बराबर लिखता जाता हूं।

शिक्षक—मोहनीय कर्मके मूल दो भेद हैं—(१) दर्शन मोहनीय जो आत्माके सम्यग्दर्शन गुणको या आत्म प्रतीतिको बिगाड़े। (२) चारित्र मोहनीय जो आत्माके शांत भावको या वीतरागता रूप चारित्र गुणको बिगाड़े।

दर्शन मोहनीयके तीन भेद हैं—(१) मिथ्यात्व कर्म। जिसके

---

*—मिथ्यादृक्सासनो मिश्रो असंयतो देशसंयतः।
प्रमत्त इतरोऽपूर्वानिवृत्तिकरणौ तथा ॥ १८ ॥
सूक्ष्मोपशांतसंक्षीणकषाया योगायोगिनौ।
गुणस्थानविकल्पाः स्युरिति सर्वे चतुर्दश ॥ १९ ॥ त० सा०।

उदय या असरसे सच्चा श्रद्धान बिलकुल न हो। (२) सम्यक्त मिथ्यात्व कर्म—जिसके उदयसे सच्चा झूठा मिला हुआ मिश्र श्रद्धान हो जैसे दही गुड़का मिला स्वाद आवे। सम्यक्त कर्म—जिसके उदयसे सम्यग्दर्शन या सच्चे विश्वासमें कुछ मल या दोष लगे—निर्मल सम्यक्त न हो। चारित्र मोहनीयके पच्चीस भेद हैं—सोलह कषाय और नौ नोकषाय या ईषत् कषाय या हलके कषाय।

४—अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ जो मिथ्यात्वको मदद दे, जिसके उदयसे सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरणचारित्र (आत्मलीनतारूप भाव) न हो।

४—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। जिसके उदयसे अप्रत्याख्यान अर्थात् थोड़ा त्याग या श्रावकके व्रत न होसकें—जो देशविरतको रोके।

४—प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। जिसके उदयसे पूर्णत्याग या मुनिके व्रत न होसकें, जो मुनिके महाव्रतोंको रोकें।

४—संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। जिसके उदयसे यथाख्यात चारित्र या पूर्ण वीतरागता न हो। जो यथार्थ व नमूनेदार चारित्रको रोके।

९. नोकषाय हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुंवेद, नपुंसकवेद (तीन प्रकारका कामभाव)।

इसप्रकार २५ कषाय हुए।

ऊपरके कथनसे आपने जाना होगा कि क्रोध, मान, माया, लोभ चार चार प्रकारका होता है। अर्थात् अनं० क्रोध, अप्र० क्रोध, प्रत्या० क्रोध, संज्व० क्रोध। इत्यादि।

चार प्रकारके क्रोधके दृष्टांत हैं--१--पत्थरकी रेखाके समान बहुत कालमें मिटे, २--पृथ्वीकी रेखाके समान कुछ कालमें मिटे, ३--धूलमें रेखाके समान जल्दी मिटे, ४--जलमें रेखाके समान तुर्त मिटे।

चार प्रकार मानके दृष्टांत हैं--१--पत्थरके खंभेके समान जो न नमें, २--हड्डीके समान कठिनतासे नमे, ३--काठके समान जल्दी नमे, ४--बेतके समान तुर्त नम जावे।

चार प्रकार मायाके दृष्टांत हैं--१ बांसकी जड़के समान टेढ़ापन, जिसका सीधा होना कठिन हो। २. मेढ़ेके सींगके समान कठिनतासे सीधा हो। ३ गोमूत्रके समान टेढ़ापन जल्दी मिटे। ४--खुरपेके समान तुर्त मिटे।

चार प्रकार लोभके दृष्टांत हैं १ मिर्चके रंग समान न मिटनेवाला। २--रथके पहियेके रंग समान कठिनतासे मिटे। ३--शरीरके मलके समान जल्दी मिटे। ४--हल्दीके रंगके समान तुर्त उड़ जाय।

अब आगे गुणस्थानोंका स्वरूप कहा जाता है।

१--**मिथ्यात्व गुणस्थान**--जिस दर्जेमें अपने शुद्ध आत्मीक भावोंका श्रद्धान बिलकुल न हो कि मेरा आत्मा परमात्माके समान शुद्ध है। इसका स्वभाव ज्ञानानंद अविनाशी चैतन्य व पुद्गलसे भिन्न है। न आत्मिक आनंदकी श्रद्धा हो। इन्द्रिय सुखको ही सुख जाने। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व धर्मका भी यथार्थ श्रद्धान न हो। इस दर्जेमें मिथ्यात्व कर्म और चार अनंतानुबंधी कषायका उदय रहता है। सर्व संसारी प्राणी इसी दर्जेमें पड़े हैं।

इस श्रेणीवाला मन सहित पंचेंद्रिय जब गुरु व शास्त्र द्वारा सात तत्वोंपर विश्वास लाता है—आत्माको यथार्थ जानता है, बार-बार आत्माका मनन करता है तब इसके ये पांचों ही कर्म मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय उपशम होजाते हैं. अंतर्मुहूर्तके लिये दब जाते हैं तब उपशम सम्यग्दर्शन पैदा होजाता है। ४८ मिनटसे कमको अंतर्मुहूर्त कहते हैं। तब पहले गुणस्थानसे इकदम चौथे अविरत सम्यग्दर्शनमें आजाता है। यहां आकर मिथ्यात्व कर्मके तीन विभाग होजाते हैं। मिथ्यात्व, सम्यक्तमिथ्यात्व या मिश्र और सम्यक्त प्रकृति कर्म। अंतर्मुहूर्त पीछे यदि अनंतानुबंधी कषायका उदय आजाता है तो दूसरे गुणस्थानमें गिर पड़ता है। यदि मिश्रका उदय आजाता है तो चौथेसे तीसरेमें आजाता है। यदि तीसरे सम्यक्त कर्मका उदय होजाता है तो उपशमसे क्षयोपशम सम्यक्दर्शन होजाता है। जो कुछ मलीन होता है तब गुणस्थान चौथा ही बना रहता है।

२—सासादन—यह गुणस्थान चौथेसे गिरकरके ही बहुत थोड़े कालके लिये होता है। जैसे वृक्षसे फल भूमिपर गिरे। बीचमें बहुत थोड़ा काल लगता है। जिसको अधिकसे अधिक छः आवली कहते हैं। यहांसे तुर्त नियमसे पहले गुणस्थानमें आजाता है। यहां मिथ्यात्वका उदय नहीं होता है किन्तु अनंतानुबंधी कषायका उदय होता है। इस दर्जेमें कोई ऊपर नहीं चढ़ सकता है।

३—मिश्र—यहां मिश्र दर्शनमोहनीयका उदय होता है, अनंतानुबंधी कषायका उदय नहीं होता है। यहां सच्चे झूठे मिले हुए श्रद्धान होते हैं।

४—अविरत सम्यग्दर्शन—यहां सच्चा तत्वोंका श्रद्धान, सच्चे

देव, शास्त्र, गुरु धर्मका श्रद्धान होता है। यहां आत्माकी सच्ची प्रतीति होती है। इस दरजेमें जीव स्वाधीनताका प्रेमी होजाता है। आत्मीक आनन्दका रोचक होजाता है। संसारका सुख विरस दीखता है। यद्यपि यह अहिंसादि पांच अणुव्रतोंको नहीं स्वीकारता है इससे अविरत है तथापि इसके भावोंमें चार गुण पैदा होजाते हैं। (१) प्रशम--शांतभाव, (२) संवेग -धर्मानुराग व संसारसे वैराग, (३) अनुकम्पा--प्राणी मात्रपर दया. (४) आस्तिक्य--नास्तिकताका अभाव, परलोकमें श्रद्धा। यहांसे मोक्षमार्गका चलनेवाला होजाता है। यहांसे धर्मध्यानका प्रारम्भ होजाता है। यहांसे तत्वज्ञानी, अंतरात्मा या महात्मा कहाने योग्य होजाता है। यह तत्वज्ञानी सुखदुःख पड़नेपर समभाव रखता है। स्वार्थ त्याग करके जगतकी सेवा करता है। यह गृहस्थके योग्य सर्व लौकिक काम कर सक्ता है। राज्यप्रबन्ध, सेनाप्रबन्ध, देशरक्षार्थ युद्ध, व्यापार, शिल्पकार्य आदि। देशपरदेश भ्रमणादि। उपशम सम्यग्दर्शनधारी अंतर्मुहूर्त व क्षयोपशम सम्यग्दर्शनधारी दीर्घकालतक ठहर सक्ता है। यदि कोई दर्शनमोहनीयके तीनों कर्मोंको और चार अनंतानुबंधी कषायोंको सर्वथा क्षय कर डाले तो वह इस दरजेमें क्षायिक सम्यग्दृष्टी होजाता है जो फिर कभी छूटता नहीं, मोक्षावस्थामें भी रहता है।

५--देशविरत--जब श्रावकके एक देश त्यागको रोकनेवाले अप्रत्याख्यानावरण कषायोंका उपशम होजाता है तब पांचवां दर्जा प्रारम्भ होता है। यहां श्रावकका चारित्र शुरू होजाता है। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पांच पापोंको त्यागकर अहिंसादि पांच अणुव्रत धार लेता है और साधुके चारित्रकी योग्यता बढ़ानेके

चारों अघातीय कर्मोंका भी नाश होजाता है तब आत्मा बिलकुल शुद्ध होकर जड़ पुद्गलसे रहित सिद्ध परमात्मा होजाता है। अब कोई शरीर नहीं रहता है। क्या आप समझ गए?

शिष्य–मैं अच्छी तरह समझ गया, वास्तवमें ये गुणस्थान बड़े ही उपयोगी हैं।

शिक्षक--अब मैं आपको चौदह मार्गणाएं बताता हूं। संसारी जीवोंको जहां तलाश किया जावे व जिन अवस्थाओंमें ये पाए जावें उनको मार्गणा (soul quest कहते हैं।

ये मार्गणाएं चौदह हैं--१-गति, २--इन्द्रिय, ३--काय, ४--योग, ५--वेद, ६--कषाय, ७--ज्ञान, ८--संयम, ९--दर्शन, १०--लेश्या, ११--भव्य, १२--सम्यक्त, १३--सैनी, १४--आहारक।*

१--**गति** चार होती हैं–नरक, तिर्यंच (पशु), मनुष्य, देव। सर्व संसारी जीव इन चार गतियोंमेंसे किसी एक गतिमें पाए जाते हैं। वृक्षादि एकेन्द्रियसे चौंद्री तक सब तिर्यंच गतिमें होते हैं। पंचेंद्रिय चारों ही गतियोंमें होते हैं।

२--**इंद्रियें** पांच होती हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण। सर्व संसारी जीव कोई एकेन्द्रियवाले, कोई दो इन्द्रियवाले, कोई तीन इन्द्रियवाले, कोई चार इन्द्रियवाले, कोई पांच इन्द्रियवाले मिलेंगे।

३--**काय** छः होती हैं। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक। सर्व एकेंद्रिय

---

*–गत्यक्षकाययोगेषु वेदक्रोधादिवित्तिषु,
वृत्तदर्शनलेश्यासु भव्यसम्यक्त्वसंज्ञिषु।
आहारके च जीवानां मार्गणाः स्युश्चतुर्दश: ॥३७॥ त. सार॥

जीव पांच स्थावर पृथ्वी आदिमें तथा द्वेन्द्रियसे पंचेंद्रिय तक सब त्रसकायमें मिलेंगे।

४--योग तीन होते हैं मन, वचन, काय। एकेंद्रियोंके काय योग होता है, द्वेन्द्रियोंसे लेकर असैनी पंचेंद्रिय तकके वचन और काय दो योग होते हैं, पंचेंद्रिय सैनीके तीनों योग होते हैं।

५--वेद- (कामभाव,--स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद। चार इन्द्रिय तक सबके नपुंसक वेद होता है, पंचेंद्रियोंके सबके तीनों वेद होते हैं। परन्तु नारकियोंके मात्र नपुंसक वेद होता है। देवोंके स्त्री व पुरुष दो ही वेद होते हैं।

६--कषाय--चार--क्रोध, मान, माया, लोभ। ये चारों कषाय सर्व संसारी जीवोंके नौमे गुणस्थानतक पाई जाती हैं। लोभ दसवें गुणस्थानतक रहता है।

७--ज्ञान--आठ--मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि। सर्व मिथ्यादृष्टि जीवोंके कुमति व कुश्रुतज्ञान दो ज्ञान होते हैं परन्तु नारकी और देवोंके कुअवधिज्ञान भी मिथ्यादृष्टि अवस्थामें होता है। सम्यक्दृष्टि सर्व जीवोंके मति व श्रुत दो ज्ञान होते हैं। ऐसे मनुष्य व तिर्यंचोंके किन्हीं२के अवधिज्ञान भी होता है। देव नारकी सम्यग्दृष्टियोंको भी अवधिज्ञान होता है। साधुओंके मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्ययज्ञानतक होते हैं। अर्हंतोंके एक केवलज्ञान ही होता है।

८--संयम--सात प्रकार--असंयम, देशसंयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यातचारित्र। पहले चार गुणस्थानोंतक असंयम होता है व्रत नहीं होते हैं। पांचवें गुण-

स्थानमें देशसंयम होता है। छठे सातवेमें साधुओंके सामायिक, छेदोपस्थाना, परिहार वि० तीन संयम होते हैं। आठवे नौमें गुणस्थानोंमें सामायिक व छेदोपस्थापना दो संयम होते हैं । सूक्ष्मसांपराय दसवें गुणस्थानमें । फिर ग्यारहसे चौदह गु० तक यथाख्यात चारित्र होता है।

९--**दर्शन**--चार । चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल । अचक्षुदर्शन (आंखके सिवाय और इन्द्रियोंसे सामान्य जानना) यह पांचों इन्द्रियवालोंके होता है। चक्षुदर्शन चौइंद्री और पंचेंद्रियोंके होता है। अवधिदर्शन अवधि ज्ञानियोंके व केवलदर्शन केवलज्ञानियोंके होता है।

१०--**लेश्या**--छः--कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल । संसारी जीवोंकी जो मन वचन कायकी प्रवृत्ति कषाय सहित होती है उसको लेश्या (thouglt point) कहते हैं। पहली तीन अशुभ हैं। कृष्ण अशुभतम (worst), नील अशुभतर (worse) कापोत अशुभ (bad); तीन शुभ हैं पीत-शुभ (good) पद्म-शुभतर (bettr), शुक्ल शुभतम (best) इन भावोंके अनुसार पाप पुण्य बंधता है। चौइन्द्री तकके जीवोंके सर्व नारकियोंके तीन अशुभ लेश्याएं होती हैं। पंचेंद्री असैनीके पीततक चार लेश्याएं होती हैं। पंचेंद्रियोंके चौथे गुणस्थान तक छहों लेश्याऐं होती हैं। पांचवेंसे सातवें गुणस्थान तक तीन शुभ लेश्याएं होती हैं। आठवेंसे तेरहवें तक शुक्ललेश्या होती है। यद्यपि ११, १२, १३ में गुणस्थानमें कषायें नहीं होती हैं तथापि मन, वचन, काय योग हैं इससे शुक्ललेश्या होती है।

११--भव्य--दो प्रकार--भव्य, अभव्य। जिनमें आत्मज्ञान प्राप्तिकी योग्यता है वे भव्य जीव हैं। जिनमें सम्यक्‌दर्शन या आत्मप्रतीति होनेकी योग्यता नहीं है वे अभव्य हैं।

१२--**सम्यक्‌दर्शन**--इस मार्गणाके छः भेद हैं--उपशम सम्यक्त, क्षायिक सम्यक्त, क्षयोपशम सम्यक्त, मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र। यहां तीन पहले गुणस्थानोंको भी इसलिये लिया गया है कि श्रद्धानकी ये तीन अशुद्ध जातियां हैं। इन छहोंमेंसे संसारी जीवके कोई न कोई एक वक्त पाया जायगा।

१३--**सैनी**--दो। सैनी तथा असैनी। मनसहित सैनी हैं, मनरहित असैनी होते हैं।

१४--आहारक--दो प्रकार--आहारक, अनाहारक। स्थूल शरीर बनने योग्य पुद्गल। जो ग्रहण करें वे आहारक हैं, जो न ग्रहण करें वे अनाहारक हैं। जब जीव एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरके लिये जाता है तब यह टेढ़ा विदिशाओंमें नहीं जाता है किन्तु सीधा पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊपर, नीचे इन छः दिशाओंके द्वारा जाता है। एक दफे मुड़नेमें एक समय, दो दफे मुड़नेमें दो, तीन दफे मुड़नेमें तीन समय लगते हैं। समय इतना सूक्ष्म है कि पलक मारनेमें बहुतसे समय बीत जाते हैं। कोई जीव कहीं भी जावे उसको तीन समयसे अधिक समय बीचमें न लगेगा। बीचकी अवस्थाको विग्रहगति कहते हैं। जितने समय बीचमें लगते हैं उतने समयतक अनाहारक कहलाता है फिर आहारक होजाता है। यदि कोई किसी स्थानमें विना मोड़ा लिये सीधा जाता है तो वह अनाहारक नहीं होगा क्योंकि बीचमें कोई समय नहीं लगा। एक कोनेसे दूसरे कोनेमें

जानेमें बीचमें एक मोड़ा होगा। ┌─अ │ अ इस शकलमें अको एक मोड़ा लगेगा। चौदहवें अयोग गुणस्थानमें भी जीव अनाहारक होता है। वहां किसी पुद्गलको नही ग्रहण करता है क्योंकि वहां खींचनेवाला योग नहीं है।

सर्व संसारी जीवोंके इन चौदह मार्गणाओंमेंसे कोई न कोई मार्गणा अवश्य होती है। जबकि चौदह गुणस्थानोंमेंसे एक ही गुणस्थान एक जीवके एक समयमें होता है। जैसे एक मिथ्यादृष्टि कुत्तेके ऊपर विचार करें जो हमारे सामने बैठा हुआ रोटी खारहा है। तो नीचे प्रकार चौदह मार्गणाएं होंगी—

(१) गति–तिर्यंच गति।

(२) इन्द्रिय–पंचेंद्रिय।

(३) काय–त्रस काय।

(४) योग–मन, वचन, काय तीनों योग।

(५) वेद–तीनों संभव है, यद्यपि वह बाहरसे पुल्लिंग है परन्तु उसके भावोंमें तीनों प्रकारके भाव होसक्ते हैं। एक दफे एक प्रकारका कामभाव होगा। नपुंसकवेद दोनोंका मिश्रित कामभाव होता है।

(६) कषाय–क्रोधादि चारों होसक्ती हैं। एक समयमें एक कोई होगी।

(७) ज्ञान–कुमति, कुश्रुत दो ज्ञान हैं। यह अज्ञानी है। एक समयमें एक ज्ञान होगा।

(८) संयम–असंयम है क्योंकि अहिंसादि व्रत नहीं हैं।

(९) दर्शन–अचक्षु, चक्षु दो दर्शन हैं। एक दफे एक होगा।

(१०) लेश्या--छ हो होसक्ती हैं। एक दफे एक होगी।

(११) भव्य--भव्य, अभव्य दोमेंसे एक होसक्ता है।

(१२) सम्यक्त--मिथ्यात्व एक प्रकारका श्रद्धान है। यदि कभी सम्यक्त होजावे तो क्षायिकके सिवाय पांचों मार्गणाओंमें एक समयमें एक होगी, तब ज्ञान मति, श्रुत, अवधि, कुअवधि चार भी संभव है।

(१३) सनी–सैनी मनसहित हैं।

(१४ आहारक-आहारक हैं क्योंकि पुद्गलको समय२ ग्रहण करता है।

शिष्य–आपने बहुत उपयोगी बात बताई। अच्छा बताईये कुत्तेके गुणस्थान कितने हैं?

शिक्षक–कुत्ता पशुगतिमें है। पशुओंमें पहले पांच गुणस्थान होसक्ते हैं। गुणस्थान एक समयमें एक ही होगा। इस कुत्तेके तो पहला गुणस्थान है। अच्छा, अब आप वृक्षकी चौदह मार्गणाएं कह जावें।

शिष्य–वृक्षकी चौदह मार्गणाएं नीचे प्रकार होंगी---

(१) गति–तिर्यंच गति।

(२) इन्द्रिय–एकेन्द्रि।

(३) काय–वनस्पति काय।

(४) योग–काययोग एक।

(५) वेद–नपुंसक वेद।

(६) कषाय–चारों कषाय।

(७) ज्ञान–कुमति, कुश्रुत।

(८) संयम–असंयम ।

(९) दर्शन–अचक्षुदर्शन क्योंकि यह स्पर्शन इन्द्रियसे ही सामान्यपने जानता है ।

(१०) लेश्या–तीन होसक्ती है–कृष्ण, नील, कापोत ।

(११) भव्य–भव्य, अभव्य दोमेंसे एक होसक्ता है ।

(१२) सम्यक्त–मिथ्यात्व है ।

(१३) सनी–असैनी है ।

(१४) आहारक–आहारक है, स्थूल पुद्गलोंको लेरहा है।

शिष्य–बहुत ठीक बताया। अच्छा, एक व्रती श्रावकके जो देशविरत गुणस्थानमें है चौदह मार्गणाएं कह जावें ।

शिक्षक–मैं कहता हूं—

(१) गति–मनुष्य गति ।

(२) इंद्रिय–पंचेंद्रिय ।

(३ काय–त्रसकाय ।

(४) योग–तीनों ।

(५) वेद–तीनों भावोंकी अपेक्षा ।

(६) कषाय–चारो कषाय ।

(७) ज्ञान–मति, श्रुत, अवधि तीनों संभव हैं ।

(८) संयम–देश संयम एक ।

(९) दर्शन–चक्षु, अचक्षु अवधि तीनों संभव हैं ।

(१०) लेश्या–तीन शुभ होंगी ।

(११) भव्य–भव्य जीव है, अभव्य देशव्रती नहीं होसक्ता है।

(१२) सम्यक्त-उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक × तीनोंमेंसे एक

(१३) सैनी-सैनी ।

(१४) आहारक-आहारक ।

यह तो मैं समझ गया । कुछ और समझाइये ?

शिक्षक-आपको हम यह बता चुके हैं कि यह जीव अपने शरीरके आकार रहता है, यद्यपि इसका मूल आकार लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है अर्थात् लोकाकाशमें व्यापक होसकता है परन्तु इसमें नाम कर्मके उदयसे संकोच विस्तार होता है । इसलिये जैसा शरीर पाता है, उसी प्रमाण रहता है । यदि शरीर फैलता है तो जीवका आकार भी फैलता है । शरीरके प्रमाण आकार रखते हुए भी समुद्घातके समय यह जीव अपने मूल शरीरसे फैलकर कुछ दूर बाहर जाता है फिर शरीर प्रमाण होजाता है ।

मुल शरीरको न छोडकर तैजस कार्मणरूप दो सूक्ष्म शरीरोंके साथ जीवके प्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलना उसको समुद्घात कहते हैं । वे समुद्घात सात हैं-

वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक, तैजस, आहारक, केवली ।+

शिष्य-क्या इनका स्वरूप समझावेंगे ?

× केवली, श्रुतकेवलीके निकट क्षायिक सम्यक्त पैदा होता है । इसलिये इस कालमें नहीं होता है । दो होसक्ते हैं ।

+ मूल शरीरम छंडिय, उत्तर देहस्य जीव पिंडस्स ।
णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घाद णामेन ॥ ६६७ ॥
वेयणा कसाय वे गुव्वि योग मरणंति यो समुग्घ दो ।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु ॥ ६६६ ॥ गो. जी.

शिक्षक—अवश्य, ये बड़े कामकी बातें हैं।

(१) वेदना या शरीरमें कष्ट होनेपर आत्माके प्रदेशोंका कुछ दूर बाहर निकलना, वेदना समुद्घात है।

(२) क्रोधादि कषायोंकी तीव्रतासे आत्माका कुछ दूर फैलकर निकलना कषाय समुद्घात है।

(३) जिनको शरीर बढ़ानेकी व एक शरीरके अनेक शरीर बनानेकी शक्ति है उनके आत्माके प्रदेश नाना प्रकारके बने हुए शरीरोंमें फैल जाते हैं, इसको वैक्रियिक समुद्घात कहते हैं। जितने देव हैं वे कभी मूल शरीरसे कहीं नहीं जाते हैं, वे दूसरे शरीर एक साथ एक व कई बना सक्ते हैं, उनमें आत्माके प्रदेश फैला सक्ते हैं, उन हीं शरीरोंको भेजकर काम लेसक्ते हैं। देव अनेक तरहके पशु पक्षी आदिका शरीर भी बनासक्ते हैं। उनके शरीरके पुद्गल ऐसे होते हैं जिनमें नाना रूपमें बदलनेकी शक्ति होती है। नारकी भी अपने शरीरको भिन्न २ रूपोंमें बदल सक्ते हैं। वे अनेक शरीर नहीं बना सक्ते हैं। साधुओंको भी योगाभ्यासमें अपने शरीरको बढ़ाने घटाने व बदलनेकी शक्ति होती है।

(४) कोई कोई जीव मरनेके अंतर्मुहूर्त पहले जहां उनको मर कर जन्म लेना है उस योनिस्थानको फैलकर स्पर्श कर आते हैं फिर मरते हैं इसे मारणांतिक समुद्घात कहते हैं।

(५) योगाभ्याससे जिनको ऋद्धियें सिद्ध होजाती हैं वे साधु शुभ या अशुभ तैजस समुद्घात करते हैं। किसी साधुको रोग व दुर्भिक्ष आदिका प्रचार देखकर दया आजाती है। तब उसके दाहने कंधेसे तैजस शरीर (electric body) के साथ आत्माके प्रदेश

फैलते हैं और संकटके कारणको मेट देते हैं। यह शुभ तैजस समुद्घात है।

किसी साधुको किसीके द्वारा दुर्वचन सुननेपर व प्रहारादि कष्ट दिये जानेपर क्रोध आजाता है और वह वशमें नहीं रहसक्ता है तब साधुके बाएं कन्धेसे अशुभ तैजस शरीरके साथ आत्माके प्रदेश फैलकर निकलते हैं जिससे क्रोधका लक्ष्य फैलकर भस्म कर दिया जाता है और साधु भी उससे भस्म होकर दुर्गति पाते हैं।

(६) आहारक समुद्घात किसी ऋद्धिधारी साधुके मस्तकसे पुरुषाकार एक सूक्ष्म पुतला आत्माके प्रदेशोंके साथ केवली या श्रुत केवलीके निकट जाकर उनके दर्शन करके तुर्त लौट आता है। जिससे कभी साधुको कोई शंका होती है वह दूर होजाती है।

(७) केवली समुद्घात–उसको कहते हैं कि जब किसी अर्हतकी आयु कम हो व अन्य कर्मोंकी स्थिति अधिक हो तो उसके आत्माके प्रदेश तीन लोकमें फैल जाते हैं और फिर शरीराकार होजाते हैं जिससे सर्व कर्मोंकी स्थिति आयु कर्मके बराबर होजाती है।

शिक्षक--क्या इनमेंसे किसी बातकी परीक्षा की गई है?

शिष्य--इस समय परीक्षा होना बहुत ही दुर्लभ है; क्योंकि महान योगीश्वर नहीं मिलते हैं। परन्तु ये सब बातें संभव प्रतीत होती हैं, क्योंकि आत्मामें अनंत बल है व ध्यानसे बड़ी बड़ी योग्यताएं झलक जाती हैं। यह तो आपको मालूम होगा कि बिज-लीकी शक्ति आजकल बड़ा बड़ा अपूर्व काम करती है। कई हजार मीलपर बजनेवाला बाजा या गाना यहां सुनाई देसक्ता है। बिना तारके सम्बन्धके बिजलीके जोरसे ही फौरन शब्द दूर दूर फैल जाता है।

शिष्य--जीवतत्वके सम्बन्धमें कुछ और जाननेकी जरूरत है।

शिक्षक--जीवोंके भाव पांच तरहके होते हैं--औपशमिक, क्षायिक, क्षयोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक।

शिष्य--क्या इनका स्वरूप समझाऐंगे?

शिक्षक--इनका स्वरूप जानना बहुत जरूरी है। आत्मा और कर्मोंका सम्बन्ध प्रवाहकी अपेक्षा अनादिकालसे चला आरहा है। कर्मोंका असर आत्माके भावोंपर पड़ता है और आत्माके अशुद्ध भावोंसे कर्मोंका बंध होता है। हम आपको बता चुके हैं कि आठ कर्मोंका बंध इस जीवके साथ है उनके कारणसे जैसे जैसे भाव जीवके होते हैं उनको बतानेके लिये पांच भेद जीवोंके भावोंके प्रसिद्ध हैं। इनको समझनेके लिये एक दृष्टांत जान लेना चाहिये। जैसे पानीमें मिट्टी मिली हो तब यदि हम निर्मली फल डाल दें तो मिट्टी पानीके नीचे बैठ जायगी; ऊपर पानी साफ दिखलाई पड़ेगा। परन्तु जरा हिल-नेसे फिर मिट्टी ऊपर आजायगी। इस पानीकी दशाको उपशम पानी कहेंगे अर्थात् ऐसा पानी जिसमें मिट्टी दबी हुई है, दूर नहीं हुई है।

यदि मिट्टीको जो नीचे बैठ गई है उससे पानीको अलग कर दूसरे बर्तनमें लेलें तो वह पानी बिलकुल साफ दीखेगा, उसमें मिट्टीका सम्बन्ध बिलकुल नहीं रहा, इससे यह पानी हिलानेसे भी मैला नहीं होगा। इसे क्षायिक पानी कहेंगे। यह ऐसा पानी है जिसमेंसे मिट्टी बिलकुल दूर होगई है। यदि मिट्टी मिले पानीमेंसे नीचे बैठी हुई कुछ मिट्टीको निकाल फेंक दें, कुछ मिट्टीको नीचे बैठे रहने दे व हिलानेसे कुछ मिट्टी पानीमें घुलीगई भी हो ऐसे कुछ मलीन पानीको क्षयोपशम पानी कहेंगे।

जिस पानीमें मिट्टी बिलकुल मिली हुई है उस पानीको औदयिक पानी कहेंगे क्योंकि मिट्टीके असरसे पानी मैला होरहा है। इसीतरह पहले चार भावोंको आप समझ लीजिये।

(१) कर्मोंके उपशम या दबनेसे जो भाव प्रगट हों उनको औपशमिक भाव कहते हैं।

(२) कर्मोंके नाशसे जो भाव प्रगट हों उनको क्षायिक भाव कहते हैं।

(३) कर्मोंके कुछ क्षय कुछ उपशम कुछ उदय या असरसे जो भाव हों उनको क्षयोपशियक भाव कहते हैं।

(४) कर्मोंके उदयसे या असरसे जो मलीन भाव हो उसको औदयिक भाव कहते हैं। इन चारोंके चार दृष्टांत समझलीजिये— (१) **उपशम सम्यग्दर्शन**—यह आत्मप्रतीति भाव मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषायके उपशमसे प्रगट होता है। (२) **क्षायिकसम्यग्दर्शन**—यह शुद्ध आत्म प्रतीति रूप भावदर्शन मोहकी तीन प्रकृति और चार अनंतानुबन्धी कषायके क्षयसे होता है। (३) **मतिज्ञान**— यह क्षयोपशम भाव है। मतिज्ञानावरण कर्मोंके क्षय या उपशमसे तथा उसीके कुछ उदयसे मतिज्ञान पैदा होता है। (४) **क्रोधभाव**—यह क्रोधके उदयसे होता है। (५) पांचवा पारिणामिक भाव किसी खास कर्मकी अपेक्षासे नहीं है, इसको स्वाभाविक भाव भी कहते हैं।

दैव व पुरुषार्थ—हम इस सम्बन्धमें पहिले बता भी चुके हैं। यहां यह समझलेना चाहिये कि जितना आत्माका गुण, कर्मोंके उपशम, क्षय या क्षयोपशमसे प्रगट होता है उसको पुरुषार्थ कहते हैं। कर्मोंके उदयको दैव कहते हैं।

आठ कर्मोंमेंसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अंतरायका सदा ही क्षयोपशम रहता है, कभी इनमें बिलकुल उपशम नहीं होता है न कभी इनका सर्वथा उदय होता है। इनका क्षय होकर केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंत बल प्रगट होता है। क्षयोपशम होते हुए जितना उदय है वह उदय भी होता है। अर्थात् क्षय, उपशमके साथ उदय होता है, अकेला उदय नहीं होता है। इसलिये इन तीन कर्मोंके सम्बन्धसे क्षयोपशयिक और क्षायिक दो ही प्रकारके जीवके भाव होते हैं। उदयकी अपेक्षा औदयिक भी लेसक्ते हैं परन्तु औपशमिक भाव इनमें न होगा।

मोहनीय कर्ममें उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक व औदयिक चारों भाव होंगे।

आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय इन चार अघातीय कर्मोंमें दो ही भाव होंगे—औदयिक और क्षायिक। इनमें औपशमिक और क्षयोपशिक भाव नहीं होते हैं। ये कर्म उदय होकर फल देते हैं या नाश कर दिये जाते हैं।

चार अघातीय कर्मोंके उदयको दैव कहते हैं। इसी तरह चार घातीय कर्मोंका जितना उदय है उसको भी दैव कहते हैं। जितना घातीय कर्मोंके उपशम, क्षय या क्षयोपशमसे आत्माका गुण प्रगट होगा उसको पुरुषार्थ कहते हैं। यह पुरुषार्थ प्राणीमात्रमें कम या अधिक पाया जाता है। इसीके सहारेसे सर्व प्राणी अपने कामके लिये उद्यम किया करते हैं। वृक्ष भी इसी पुरुषार्थसे पानी व मिट्टी खींचता है। प्राणियोंकी उन्नति व अवनतिके जिम्मेदार प्राणी होते हैं। उनको अपने ज्ञान दर्शन व आत्मबलसे विचार करके हरएक

लौकिक या पारलौकिक काम करना चाहिये। कर्मोंका उदय कैसा होनेवाला है, उसे हम नहीं जान सक्ते हैं अतएव हमें अपने पुरुषार्थसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंका साधन करना चाहिये। विघ्न होनेपर अपने दैवको दोष देना चाहिये। दैवके मेटनेका भी पुरुषार्थ हमें धर्म सेवन द्वारा करना चाहिये। इससे हम भविष्यमें उदय आनेवाले पापोंको घटा सक्ते हैं व पुण्यको बढ़ा सक्ते हैं। शांतिमय व ज्ञानमय भावोंसे आत्मबल लगाकर यदि हम धर्मको पालें–आत्मध्यानादि करें तो पापको घटा करके पुण्यको बढ़ा सक्ते हैं।

इन आठ कर्मोंमेंसे सबसे प्रबल कर्म मोहनीय है जिसकी अट्ठाईस प्रकृतियोंको हम बता चुके हैं। हमें उचित है कि हम अपने ज्ञान व आत्मबलके पुरुषार्थसे इस कर्मको जीतनेका सदा उद्यम करें। इसको जितना जितना जीतेंगे उतना उतना हमारा भाव निर्मल होता जायगा व हमारा गुणस्थान (दर्जा) बढ़ता चला जायगा। सारे कर्मोंको बांधनेवाला मोह है, मोहके क्षय होते ही सर्व कर्म क्षय हो जाते हैं।

शिष्य--यह तो मैं समझ गया, कुछ और भी जरूरी बात जाननेकी है।

शिक्षक--अब मैं यह आपको बताता हूं कि संसारी प्राणियोंके मूल शरीर कितने प्रकारके होते हैं।

शरीर पांच तरहके होते हैं--(१) औदारिक, (२) वैक्रियक, (३) आहारक, (४) तैजस, (५) कार्मण। इनमेंसे तैजस शरीर सर्व संसारी जीवोंके सदा पाए जाते हैं। जब कोई मरता है तब ये दो शरीर साथ२ जाते हैं ये बहुत ही सूक्ष्म हैं, इन्द्रियोंसे जाननेमें नहीं आते। कार्मण शरीर तो आठ कर्मरूप है। यह शरीर कार्मण वर्गणाओंसे

बनता है यह बात हम बता चुके हैं। तैजस शरीर एक प्रकारकी बिजलीका शरीर है। जो तैजस वर्गणाओं (electric molecules) से बनता है। शेष तीन शरीर प्राप्त होते हैं तथा छूटते हैं। औदारिक शरीर वह स्थूल शरीर है जो मनुष्य गति व तिर्यंच गतिवालोंके होता है। एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यंत सर्व जीवोंके यह स्थूल शरीर होता है। इसीके मिलनेको जन्म व इसके छूटनेको मरण कहते हैं। वैक्रियिक शरीर ऐसे पुद्गलोंसे बनता है जिसमें रूप बदलनेकी शक्ति होती है। यह स्थूल शरीर देवों और नारकियोंको होता है। आहारक शरीर एक विशेष शरीर है जो आहारक समुद्‌घातके समय किसी विशेष मुनिके पुरुषाकार मस्तकसे निकलता है। हमारे पास इस समय तीन शरीर हैं—औदारिक, तैजस, कार्मण। वृक्षोंके भी ये ही तीन शरीर हैं। कीटोंके व पशु पक्षियोंके भी ये ही तीन शरीर हैं। पुद्गलोंके अनेक भेद होते हैं इसलिये इन शरीरोंकी रचनामें अनेक भेद हैं।

जीव तत्वके सम्बन्धमें यह बात खास ध्यानमें रखनेकी है कि निश्चय नयसे या मूल द्रव्य स्वरूपकी अपेक्षा यह जीव बिलकुल शुद्ध है। सिद्ध भगवानके समान है। इसमें कोई भी सांसारिक अवस्थाएं नहीं होती हैं। हमें उचित है कि हम अपने आत्माको आत्मारूप देखा करें। व्यवहारनयसे या अवस्थाकी दृष्टिसे कर्मोंके सम्बन्धके कारण जीवोंमें चौदह गुणस्थान व चौदह मार्गणाएं, चौदह जीव समास, पांच प्रकारके शरीर, रागादिक अशुभ भाव ये सब बातें पाई जाती हैं। बहिरात्मा अज्ञानी इन कर्मोंके सम्बन्धसे होनेवाली अवस्थाओंको ही आत्माका मूल स्वभाव मान लेता है। जब कि अंतरात्मा ज्ञानी या

सम्यक्दृष्टि जीव मूल आत्माके स्वभावको शुद्ध जानता है और कर्मोंके संयोगसे होनेवाली अवस्थाओंको वैसा ही जानता है। परमात्मा बिलकुल शुद्ध कर्म रहित आत्माको कहते हैं। हमको योग्य है कि हम बहिरात्मापना छोड़कर अंतरात्मा होजावें तथा परमात्मा होनेका पुरुषार्थ करें।

छट्ठा अध्याय।

अजीव तत्व।

शिक्षक--हम आपको वता चुके हैं कि अजीव तत्वमें पांच गर्भित हैं--पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल।

पुद्गलका कुछ स्वरूप और जानना जरूरी है।

हम पुद्गलके विशेष गुण वता चुके हैं कि उनमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण चार गुण होते हैं। इनके वीस भेद जानने चाहिये।

८ प्रकार स्पर्श- नरम, कठोर, भारी, हलका, शीत, उष्ण, चिकना, रूखा।

५ प्रकार रस--कडुआ, खट्टा, तीखा, मीठा, कषायला।

२ प्रकार गंध--सुगंध, दुर्गंध।

५ प्रकार वर्ण--काला, नीला, पीला, लाल, सफेद।

२० गुण—

पुद्गलोंके दो भेद हैं--परमाणु और स्कंध। जिसका दूसरा भाग न हो उसको परमाणु कहते हैं। परमाणुओंसे बने हुए पिंडको स्कंध कहते हैं। परमाणुमें एक साथ ऊपर कहे हुए वीस गुणोंमेंसे पांच गुण पाए जांयगे, आठ स्पर्शमेंसे दो स्पर्श, उष्ण, शीतमेंसे एक कोई तथा चीकने रूखेमेंसे एक कोई।

एक कोई रस, एक कोई गंध व एक कोई वर्ण होगा, इस तरह पांच गुण होंगे। जब कि स्कंधमें एक साथ सात गुण पाएं जांयगे। आठ स्पर्शमेंसे चार स्पर्श। उष्ण शीतमेंसे एक, चीकने रूखेमेंसे एक, नर्म कठोरमेंसे एक, हलके भारीमेंसे एक।

एक कोई रस, एक कोई गंध व एक कोई वर्ण इस तरह सात गुण होंगे। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सब परमाणुओंके बने स्कंध हैं। ये आपसमें बदल भी जाते हैं जैसे--सीपके भीतर जल मोती पृथ्वी रूप बन जाता है, दो प्रकारकी वायु मिलकर जल होजाता है।

शिष्य–पुद्गलके पिंड या स्कंध कितने प्रकारके होते हैं?

शिक्षक–इनके भेद अनेक तरहसे हैं। अति प्रसिद्ध छः भेद हैं उन्हें अब ध्यानमें ले लीजिये उनमें सब तरहके, स्कंध या पिंड गर्भित हैं–वे छः भेद हैं—

१–**स्थूल स्थूल** (solid things) कठोर वस्तुएं जिनके दो टुकड़े किये जानेपर वे आप अपनेसे न मिलें जैसे--कागज, लकड़ी, पत्थर, आदि।

(२) **स्थूल** (lipuid things) बहनेवाली चीजें जैसे–पानी, दूध, शरबत आदि। ये अपनेसे मिलजाती हैं।

(३) **स्थूल सूक्ष्म** (solid fine things) जो देखनेसे मोटी मालूम हो परन्तु हाथोंसे पकड़ी न जासकें जैसे--प्रकाश, धूप, छाया।

(४) **सूक्ष्म स्थूल** (fine solid things) जो देखनेमें न आवें ऐसी सूक्ष्म हों परन्तु भारी काम कर सकें जैसे हवा, शब्द, आदि।

(५) **सूक्ष्म** (fine matter) जो पुद्गल पिंड इतने सूक्ष्म हों कि वे किसी भी इन्द्रियसे न ग्रहण होसकें जैसे कार्मणवर्गणाएं।

(६) **सूक्ष्म सूक्ष्म** (very fine matter) दो परमाणुओंका स्कंध या एक परमाणु।

सूक्ष्म स्कंधोंके बहुतसे भेद हैं। उनमें पांच सूक्ष्म स्कंध संसारी जीवोंके लिये बहुत उपयोगी हैं।

(१) **आहार वर्गणा** (assimilative molecules) इनसे औदारिक, वैक्रियिक, तथा आहारक तीन शरीर बनते हैं।

(२) **तैजस वर्गणा** (eletric molecules) बिजलीके पिंड इनसे तैजस शरीर बनता है जो सब संसारी जीवोंके सदा पाया जाता है।

(३) **भाषा वर्गणा** (vocal molecules) इनसे शब्द बनते हैं।

(४) **मनो वर्गणा** (mind molecules) इनसे हृदयस्थानमें आठ पत्तोंका कमलाकार मन बनता है।

(५) **कार्मण वर्गणा** (karmic molecules) इनसे सूक्ष्म कार्मण शरीर बनता है, जो सब संसारी जीवोंके सदा पाया जाता है।

आहारक वर्गणाके भीतर जितने परमाणु हैं उनके बहुत अधिक तैजस वर्गणामें, तैजससे बहुत अधिक भाषा वर्गणामें, भाषासे बहुत अधिक मनो वर्गणामें, मनसे बहुत अधिक कार्मण वर्गणामें हैं इसीसे हरएककी शक्ति अपने पहलेसे बहुत अधिक है। सर्वसे अधिक बलिष्ट कार्मण वर्गणा है।

ये पांचों ही प्रकारकी वर्गणाएं सर्वत्र फैली हुई हैं। कोई जगह इनसे खाली नहीं है। ये वर्गणाएं परमाणुओंके बिछुडनेसे बिगड़ती हैं व उनके मिलनेसे बनती रहती हैं।

शिष्य—क्या परमाणुओंके मिलनेका कोई नियम बताया गया है?

शिक्षक—परमाणुओंके बन्ध होनेके साधक चिकना व रूखापना है। चिकनेपनेके व रूखेपनेके अंश अनेक होते हैं। जैसे बकरीके दूधसे अधिक चिकनई, गौके दूधमें, गौके दूधसे अधिक चिकनई भैंसके दूधमें होती है, भैंसके दूधसे अधिक चिकनई ऊंटनीके दूधमें व दूधसे

घीमें अधिक चिकनई होती है वैसे परमाणुओंके भीतर चिकनईके अनेक भेद होते हैं, कोई कम चिकना कोई अधिक चिकना होता है। इसी तरह जैसे धूल, वालू व कंकडमें रूखापना अधिकर है, वैसे परमाणुओंमें रूखापना किसीमें कम व किसीमें अधिक होता है। नियम यह है--रूखा परमाणु रूखेसे व चिकना चिकनेसे तथा रूखा चिकनेसे वन्ध सक्ता है, यदि परस्पर दो अंशका अंतर हो। इससे कम व अधिक अंतर होनेपर बन्ध न होगा इसी तरह जिस परमाणुमें सबसे कम चीकनापना या रूखापना होगा वह परमाणु किसीसे ही बंधेगा परन्तु वाहरी निमित्तोंसे यदि उसीमें अंश बढ़ जायेंगे तो वह बन्ध हो सकेगा। जैसे एक परमाणुमें ५० अंश चिकनाई है तो वह ५२ अंशवाले चिकने, या रूखे परमाणुसे ही बंधेगा। ५३ अंशवाले या ५२ अंशवालेसे नहीं बंधेगा। एक परमाणुमेंसे रूखा-पना ५५ अंश है तो वह ५७ अंशवाले चिकने या रूखे परमाणुसे बन्ध जायगा। ५४ या ५८ अंशवालेसे नहीं बन्धेंगे। जब परमाणु परस्पर बन्धकर एक पिंड या स्कंध बन जाते हैं तब जिस परमाणुमें अधिक अंश होंगे वह कम अंशवालेको अपने रूप कर लेगा। जैसे १५ अंशवाला परमाणु चिकना है तथा १७ अंशवाला परमाणु रूखा है तब दोनोंका बना हुआ पिंड रूखा होजायगा। इनमें ऐसी शक्ति है कि अधिक अंशवाला अपने रूप दूसरे परमाणुको कर लेता है।

शिष्य—क्या इसका प्रयोग करके आजकल किसीने देखा है?

शिक्षक—यह जिन शास्त्रकी लिखित बात है। जहांतक हमें मालूम है अभीतक किसीने प्रयोग करके नहीं देखा है। जो जैन शास्त्र विज्ञानके ऊंचे ज्ञाता हों उनको इसका प्रयोग करके जांचना चाहिये।

शिष्य–यदि स्कंध स्कंधसे मिलकर एक पिंड बने तौभी क्या यही नियम होगा ?

शिक्षक–मैं समझता हूं कि ऐसा ही नियम स्कंधके लिये भी होना चाहिये। यदि किसी स्कंधमें ५०० अंश चिकनई होगी व दूसरे स्कंधमें ५०२ अंश चिकनई या रूखापन होगा तो वे दो स्कंध भी मिलकर एक पिंड हो जायंगे यद्यपि इस बातका अधिक विस्तार मुझे जैन शास्त्रमें देखनेको नहीं मिला। कठिनता तो यह है कि चिकने व रूखेपनके अंशोंकी जांच कैसे की जावे। इसहीके लिये आजकलके वैज्ञानिकोंको खूब विचारना चाहिये।

शिष्य–बात बहुत जरूरी है। मैंने ध्यानमें लेली है, किन्हीं वैज्ञानिक प्रोफेसरोंसे बात करूंगा। पुद्गलके सम्बन्धमें और कोई बात जाननेकी है ?

शिक्षक–जो जरूरी २ बातें था वे आपको बता दी हैं। इस सर्व जगतकी रचना पुद्गलोंके द्वारा होती रहती है व बिगड़ती रहती है। आजकल (science) सायंस (विज्ञान) जो कुछ भी खोज कर रहा है वह सब पुद्गलकी अपूर्व शक्तिके कारणसे है। तथा जहांतक मेरा अनुमान है मैं कहसक्ता हूं कि यदि वह सायंसकी खोज सत्य होगी तो उसका मिलान जैन सिद्धांतसे होजायगा।

शिष्य–आपने कहा था कि आकाशके दो भेद हैं- लोकाकाश तथा अलोकाकाश इनका कुछ विशेष बताईये।

शिक्षक–आकाश एक अखण्ड अनंत द्रव्य है। इसकी सीमा नहीं है। इसीके मध्यमें जितने आकाशके भागमें जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा काल पाए जाते हैं उसको

लोकाकाश कहते हैं। लोकाकाश एक मर्यादाके भीतर है इस मर्यादा कारण धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय हैं। ये दोनों द्रव्य लोकाकाश व्यापी हैं। जहांतक धर्म द्रव्य है वहांतक ही जीव तथा पुद्गलोंका गमन हो सकता है व वहींतक पदार्थ ठहर सक्ते हैं। इस जगतमें कोई भी स्थान नहीं हैं जहां पांचों द्रव्य न पाए जावें। पुद्गल परमाणु तथा स्कन्ध रूपसे सर्वत्र भरे हैं, सूक्ष्म जातिके एकेन्द्रिय जीव भी सर्वत्र भरे हैं, बादर जीव कहीं कहीं हैं। धर्म और अधर्म द्रव्य व्यापक है ही, कालाणु भी सर्व तरफ रत्नोंके ढेरके समान फैले हैं। उनकी गणना असंख्यात है क्योंकि लोकाकाशके प्रदेश भी असंख्यात है। हरएक प्रदेशपर एक एक कालाणु व्यापक है।

शिष्य—प्रदेशका मतलब बताइये तथा असंख्यातसे क्या मतलब है?

शिक्षक-जितने आकाशके सूक्ष्म भागको वह परमाणु जिसका भाग नहीं होसकता है रोकता है उसको प्रदेश (point) या (spatial unit) कहते हैं। जैनसिद्धांतमें तीन प्रकारकी गणना बताई गई है--संख्यात, असंख्यात और अनंत।

हम मानवोंकी समझमें जहांतक गिनति आसके वह संख्यात हैं। उससे अधिक असंख्यात है। उससे भी बहुत अधिक अनंत है। प्रदेश एक तरहका गज है जिससे द्रव्योंके आकारको नापा जाता है। यदि लोकाकाशको इस प्रदेश रूपी गजसे नापा जावे तो इसके असंख्यात प्रदेश होंगे। इतने ही प्रदेश धर्मास्तिकायके व इतने ही अधर्मास्तिकायके होंगे। व इतने ही प्रदेश एक जीवके

भीतर भी असलमें होते हैं क्योंकि एकजीव लोकाकाश भरमें फैल सक्ता है । कालाणु भिन्न २ एक एक प्रदेशपर हैं इसलिये कालाणुओंकी गणना असंख्यात है । आकाश अनन्त है इससे उसके अनन्त प्रदेश कहलाएंगे । पुद्गल यद्यपि तीन लोकमें परमाणु व स्कंधके रूपमें फैले हैं तथापि परमाणुओंके मिलनेसे जो स्कंध बनते हैं वे तीन प्रकारके होते हैं--किन्हीं स्कंधोंकी रचना संख्यात परमाणुओंसे होती हैं, किन्हींकी असंख्यात परमाणुओंसे तथा किन्हींकी उनसे भी अनंत परमाणुओंसे होती हैं । इसलिये पुद्गलके स्कंधोंके प्रदेश संख्यात, असंख्यात तथा अनंत ऐसे तीन तरहके कहलाते हैं। यहां प्रदेशसे मतलब परमाणुका लेना चाहिये ।

कालाणु असंख्यात हैं वे कभी एक दूसरेसे मिलते नहीं हैं, वे अलग २ एक एक ही प्रदेशको घेरते हैं । शेष पांच द्रव्य एक प्रदेशसे अधिक स्थान घेरते हैं । इसलिये जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा आकाशको अस्ति काय या पंचास्तिकाय कहते हैं।

शिष्य—परन्तु पुद्गलका एक परमाणु तो एक ही प्रदेश घेरता है उसको काय तो नहीं कहना चाहिये ।

शिक्षक—यद्यपि परमाणु एक ही प्रदेश घेरता है परन्तु उसमें परस्पर मिलनेकी शक्ति है जब कि कालाणुमें परस्पर मिलनेकी शक्ति नहीं है इसलिये परमाणुको शक्तिकी अपेक्षा काय कहते हैं ।

एक बात और जानना चाहिये कि छहों द्रव्यमें दो प्रकारके गुण होते हैं--सामान्य (general) विशेष (special)—विशेष गुण तो हम बता चुके हैं, सामान्य गुणोंको समझ लीजिये ।

शिष्य--कृपा करके छहों द्रव्योंके विशेष गुण फिर बता दिजिये।

शिक्षक--जीव द्रव्यके विशेष गुण ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त, चारित्र आदि हैं, पुद्गलके विशेष गुण स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हैं, धर्मास्तिकायका विशेष गुण जीव व पुद्गलको गमनमें सहाय करना है, अधर्मास्तिकायका विशेष गुण जीव व पुद्गलको ठहरनेमें सहाय करना है, आकाशका विशेष गुण सर्वको जगह देना है. कालका विशेष गुण सर्वकी अवस्थाओंको पलटनेमें सहायता देना है।

सामान्य गुण छहों द्रव्योंमें पाए जाते हैं। जबकि विशेष गुण खास अपने अपनेमें पाए जाते हैं। सामान्य गुण छः बहुत ही आवश्यक हैं।

(१) **अस्तित्व गुण**--जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो, द्रव्य सदा बना रहे।

(२) **वस्तुत्व गुण**--जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य कुछ काम करे व्यर्थ न रहे।

(३) **द्रव्यत्व गुण**--जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें एकसी व भिन्न प्रकारकी अवस्थाएं बदला करें।

(४) **अगुरुलघुत्व**--जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य अपनी मर्यादामें रहे कभी कम या अधिक न हो न वह बदल कर दूसरा द्रव्य होसके न इसका कोई गुण अन्य गुणरूप बदल सके। जिस द्रव्यमें जितने गुण हों वे उसमें बने रहें। कोई नया गुण उसमें आकर न [illegible]।

(५) **प्रदेशत्व गुण**--जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका [illegible] न कुछ आकार अवश्य हो।

(६) प्रमेयत्व गुण—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसीके ज्ञानका विषय हो ।

अजीव तत्वके सम्बन्धमें जो जरूरी जानने योग्य बातें थीं उनका कथन मैंने कर दिया है । आप इनपर विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चार द्रव्य सदा स्वभावमें रहते हैं । इनमें हलन चलन क्रिया नहीं होती है । संसारी जीव और पुद्गल हलन चलन क्रिया करते हैं । इन्हीकी रचना यह दृश्य रूप जगत है । इनकी अवस्थाएं नाना प्रकार बनती बिगड़ती दिखलाई पड़ती हैं । यह लोक छः मूल द्रव्योंका समुदाय है । ये सदासे हैं व सदा बने रहेंगे इसलिये यह लोक नित्य है । अवस्थाओंके बदलनेकी अपेक्षा यह जगत अनित्य है । यह लोक कभी नया बना नहीं न कभी बिलकुल लोप होगा । अवस्थासे अवस्थांतर हुआ करेगा ।

ज्ञानीको उचित है कि वह क्षणिक जगतकी अवस्थाओंमें मोह न करे, मूल द्रव्यपर दृष्टि रखे । छःहों द्रव्योंमें एक निज आत्म द्रव्य ही सार है । उसपर दृष्टि रखके व उसीका ध्यान करके हमें आत्मानन्द प्राप्त करना चाहिये ।

सातवां अध्याय।

आस्रव और बंध तत्व।

शिक्षक–हम आपको सात तत्वोंमें आस्रव व बन्ध तत्वोंका कुछ स्वरूप बता चुके हैं, आज कुछ विशेष बातें बताएंगे—

आस्रव और बंध कर्मोंका एक साथ होता है। आना और बंधना दो भिन्न २ क्रियाके कारणसे इनके दो नाम हुए हैं। असलमें अशुद्धताकी दृष्टिसे दोनों बातें एक हैं। इन दोनोंके कारण भाव आस्रव और भाव बंध एक ही हैं। जिन भावोंसे कर्म वर्गणाएं आती हैं उनही भावोंसे उनका बंध भी होता है। दोनोंका समय या आस्रव व बंध क्षण भी एक ही है।

यह हम आपको बता चुके हैं कि कर्मोंके आठ मूल प्रकृति भेद हैं इनमेंसे सात मूल कर्मोंका सदा ही बंध नौमें गुणस्थान तक हुआ करता है। आयु कर्मका बंध सदा नहीं होता है। जैनसिद्धांतमें यह कायदा बताया है कि एक जीवनमें आठ दफे आयुके आठ त्रिभागोंमें बंधका अवसर आता है। यदि आठ त्रिभागोंमें आयुका बंध नहीं हुआ तो मरणके अंतर्मुहूर्त पहले परलोकके लिये आयु कर्मका बंध अवश्य होगा। जैसे किसीकी आयु ८१ वर्षकी है तब पहला त्रिभाग ५४ वर्ष बीतनेपर अंतर्मुहूर्तके लिये आयगा। दूसरा त्रिभाग २७मेंसे १८ वर्ष बीतनेपर ९ वर्षकी शेष आयुमें अंतर्मुहूर्तके लिये आयगा। इसी तरह तीसरा त्रिभाग ३ वर्ष आयुके शेष रहनेपर आयगा। चौथा एक वर्ष बाकी रहनेपर आयगा। पांचवा त्रिभाग ०

मास बाकी रहनेपर छटा त्रिभाग ४० दिन बाकी रहनेपर, सातवां त्रिभाग १३ दिन ८ घंटे बाकी रहनेपर, आठवा त्रिभाग ४ दिन १० घंटे ४० मिनट बाकी रहनेपर आयगा। इनमेंसे किसी त्रिभागमें आयु बंध जायगी। जब एक दफे बंध जायगी तब आगेके त्रिभागोंमें भावोंके अनुसार उनकी स्थितिमें कम व अधिकपना होसक्ता है। आयुका बंध सातवें गुणस्थान तक ही होता है इसलिये सातवें गुणस्थान तकके जीवोंके आयु बंधके समय आठों कर्मोंका बंध होगा। जब आयुकर्म नहीं बंधेगा तब सात कर्मोंका बंध होगा। दसवें गुणस्थानमें मोहनीय कर्मको छोड़कर छः कर्मोंका ही बंध होगा। ११, १२ व १३में गुणस्थानमें केवल एक साता वेदनीय कर्मका ही बंध होगा।

शिष्य—आपने बताया कि शुभ उपयोगसे पुण्य बंध होता है, अशुभ उपयोगसे पाप बंध होता है, ज्ञानावरणादि चार घातीय कर्म पाप है यह भी आप बता चुके हैं तब शुभ उपयोगसे पापकर्म कैसे बंधेगा?

शिक्षक--यह बात ध्यानमें लेलीजिये कि चार घातीयकर्मोंका बन्ध शुभ या अशुभ दोनों उपयोगोंमें होता है। अघातीय कर्मोंमेंसे जब शुभ उपयोग होता है, सातावेदनीय, शुभ नाम, उच्चगोत्र तथा शुभ आयुका बन्ध होता है और जब अशुभ उपयोग होता है तब असाता वेदनीय, अशुभ नाम, नीच गोत्र, अशुभ आयुका बन्ध होता है। क्योंकि शुभ या अशुभ दोनों ही उपयोग अशुद्ध हैं, कषाय सहित हैं, आत्माके स्वाभाविक ज्ञानदर्शन आत्मबल व शांतभावके बाधक हैं इसलिये चारों घातीयकर्मोंका बन्ध अवश्य होगा। शुभ भावोंमें भी कषाय है जो आत्मगुणोंका घात करता है। यह हम बता चुके हैं कि बन्ध चार प्रकारका होता है, उनमेंसे स्थिति व अनु-

भागबंध कषायोंके द्वारा कम या अधिक होता है। इसमें विशेष बात जाननेकी यह है कि जब कषाय तीव्र होती है तब आयुको छोड़कर सर्व कर्मोंमें स्थिति अधिक पड़ती है और जब कषाय मंद होती है तब सातों कर्मोंमें स्थिति कम पड़ती है। आयु कर्मका हिसाब यह है कि जब कषाय तीव्र होती है तब नरकायुकी स्थिति अधिक व तीर्यंच, मनुष्य व देवायुकी स्थिति कम पड़ती है और जब कषाय मंद होता है तब नरकायुमें स्थिति थोड़ी व तीर्यंच मनुष्य व देव आयुमें स्थिति अधिक पड़ती है।

अनुभाग बन्धका नियम यह है कि तीव्र कषायोंसे सर्व पाप कर्मोंमें अनुभाग अधिक व पुण्य कर्मोंमें कम पड़ेगा तथा मंद कषायोंसे पुण्यकर्ममें अनुभाग अधिक व पाप कर्मोंमें अनुभाग कम पड़ेगा। आयुकर्ममें मात्र नरक आयु ही अशुभ या पापरूप कहलाती है इस कथनसे आप समझ गए होंगे कि जब किसीके मंद कषायरूप शुभ उपयोग होगा तब घातीय कर्मोंमें स्थिति भी कम पड़ेगी व अनुभाग भी कम पड़ेगा तथा अघातीय पुण्य प्रकृतियोंमें भी स्थिति कम पड़ेगी परन्तु अनुभाग ज्यादा पड़ेगा। जिसका फल यह होगा कि जब उन घातीय कर्मोंका उदय होगा तब फल मंद होगा परन्तु यदि पुण्यरूप अघातीय कर्मोंका उदय होगा तो फल तीव्र होगा। सुखकी सामग्री अच्छी प्राप्त होगी।

कर्मोंके आने व बंधनेमें कारणरूप भाव सामान्यसे पांच हैं— (१) मिथ्यादर्शन, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय, (५) योग।*

* —मिथ्यादर्शनाविरति प्रमादकषाययोगा बंधहेतवः ॥१।८ त. सू.॥

शिष्य--कृपा करके इनका कुछ विशेष बताइये ?

शिक्षक—सात तत्वोंके श्रृद्धान न करनेको या सच्चे देव, शास्त्र, गुरुके श्रृद्धान न करनेको या अपने आत्माको यथार्थ रूपसे श्रृद्धान न करनेको व आत्मीक अतीन्द्रिय आनंदका श्रृद्धान न करनेको मिथ्यादर्शनभाव कहते हैं। इस मिथ्यादर्शनके पांच भेद हैं—

(१) **एकांत मिथ्यादर्शन**—वस्तुमें अनेक स्वभाव होते हुए उनको न मानकर एक ही या कुछ ही स्वभावोंके रहनेका हठ करना एकांत मिथ्यादर्शन है। जैसे कोई पुरुष अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र है, पुत्रकी अपेक्षा पिता है, भाईकी अपेक्षा भाई है, भानजेकी अपेक्षा मामा है, ये सब सम्बन्ध उस पुरुषमें एक ही साथ हैं। यदि कोई उस पुरुषको पुत्र ही माने, पिता न माने तो वह एकांतको माननेवाला मिथ्या दृष्टि होगा।

हरएक वस्तु अपने मूल स्वभावकी अपेक्षा नित्य है। अवस्थाके बदलनेकी अपेक्षा अनित्य है। दोनों स्वभावोंको एक साथ मानना यथार्थ है सत्य है। यदि इनमेंसे एक ही स्वभावको माना जावे कि वस्तु नित्य ही है या अनित्य ही है तो यह मानना एकांत मिथ्यादर्शन होगा इससे वस्तुके स्वरूपका सच्चा ज्ञान न होगा।

(२) **विपरीत मिथ्यादर्शन**—जो धर्म नहीं होसकता है उसको धर्म मानलेना, जो देव नहीं होसक्ता है उसको देव मानलेना, जो गुरु नहीं होसकता है उसको गुरु मानलेना विपरीत मिथ्यादर्शन है। जैसे पशुओंकी बलि करनेसे धर्म मानना, रागी, द्वेषी देवोंको देव मानना, परिग्रहधारी संसारासक्त गुरुको गुरु मानना।

(३) **संशय मिथ्यादर्शन**–धर्मके निर्णयमें एक मत न होकर संशय रखना जैसे–आत्मा है या नहीं, परलोक है या नहीं, मोक्ष है या नहीं, कर्मबन्ध है या नहीं।

(४) **वैनयिक मिथ्या दर्शन**–भोलेपनसे सर्व प्रकारके एकांत व अनेकांत धर्मोंको धर्म मान लेना, सरागी वीतरागी सर्व देवोंको देव मान लेना, सग्रंथ निर्ग्रंथ सर्व प्रकारके साधुओंको साधु मान लेना। यह भाव रखना कि हम तो संसारी हैं लोग कुछ समझ कर ही देव धर्म गुरुको मानते हैं, सर्वकी भक्ति करनेसे किसीसे कुछ किसीसे कुछ लाभ होजायगा। ऐसा मिथ्यात्वी विवेक रहित सत्य व असत्य सर्वको धर्म मानके श्रद्धान करता है।

(५) **अज्ञान मिथ्या दर्शन**–अपने हित व अहितकी परीक्षा किये विना व परीक्षा करनेकी शक्तिके विना पर्याय बुद्धि बने रहना, शरीरको ही आत्मा मान लेना, इंद्रियोंके सुखको ही सुख मान लेना, धर्मके जाननेकी कुछ इच्छा न करना, जैसी रीति चली आई है उसीको सत्य धर्म मानकर बैठे रहना, निर्णय करनेका प्रयत्न नहीं करना।

इनमेंसे किसी भी मिथ्यादर्शनमें फंसा हुआ प्राणी निर्मल सम्यक्दर्शनको नहीं प्राप्त कर सक्ता है। सत्यधर्मकी श्रद्धा नहीं कर पाता है, मानवजन्मको वृथा ही खो बैठता है, मिथ्यादर्शनके कारण प्राणी इन्द्रियोंके विषयोंका मोही होता हुआ रातदिन विषयवासनाकी तृप्तिके लिये तृष्णामें फंसा रहता है। इसीके कारण सर्व तरहका अन्याय करता है व अभक्ष्य भोजन करता है। हिंसादि पापोंके करनेसे लाभ नहीं कर पाता है।

अविरति भाव १२ प्रकारका भी है, ५ प्रकारका भी है।

पांच इन्द्रिय तथा मनको वश न रखना तथा पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक प्राणियोंकी दया न पालना। जो चाहे सो विचारे विना इन्द्रिय भोग करना व जैसे चाहे वैसे वर्ताव करना, प्राणियोंकी दयाकी तरफसे बेखबर रहना, यह बारह प्रकार अविरति है।

हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील. व परिग्रह इन पांच पापोंकी ममतामें फंसे रहना भी अविरति है।

प्रमाद—आत्माके ध्यान व शुद्ध भावोंकी प्राप्तिमें अनादर व असावधानी रखना। देखकर चलनेमें, शुद्ध वचन बोलनेमें, शुद्ध भोजन करनेमें, देखकर रखने उठानेमें, मल मूत्र करनेमें प्रमाद सहित असावधानीसे वर्तना प्रमाद है। मन वचन कायको धर्ममार्गमें चलानेमें आलस्य रखना; उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य इन दश प्रकार धर्मोंके पालनमें प्रमाद रखना। स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा, राजा कथामें समय वृथा गमाना।

कषाय--क्रोध, मान, माया, लोभ १६ प्रकार व नौ कषाय ऐसे २५ प्रकार कषाय हैं। जिनके नाम हम पहले मोहनीय कर्मके भेदोंमें बता चुके हैं।

योग—मन, वचन, कायका हलन चलन तीन प्रकार है इसीके पन्द्रह भेद हैं—

चार मनयोग—सत्य, असत्य, उभय, अनुभय।

चार वचन योग—सत्य, असत्य, उभय, अनुभय।

सत्य, असत्य मिले हुए विचार व वचनको उभय मन व वचन

कहते हैं। जिसको सत्य व असत्य कुछ भी कहा जासके ऐसे विचार व वचनको अनुभव मन या वचन कहते हैं।

सात काययोग—कायकी क्रियाके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका हलन चलन काय योग है। सात प्रकारकी कायकी क्रिया होती है ये सात काय हैं—

(१) औदारिक काय योग (२) औदारिक मिश्र काय योग, (३) वैक्रियिक काय योग, (४) वैक्रियिक मिश्र काययोग, (५) आहारक काय योग, (६) आहारक मिश्रकाय योग, (७) कार्मण काय योग।

मनुष्य तथा तीर्यंचोंके पर्याप्त अवस्थामें औदारिक काययोग होता है। अपर्याप्त अवस्थामें औदारिक मिश्रकाय योग होता है। औदारिक कायका कार्मण कायसे मिश्रण होता है। देव तथा नारकियोंके पर्याप्त अवस्थामें वैक्रियिक काययोग होता है। अपर्याप्त अवस्थामें वैक्रियिक मिश्र काययोग होता है। वैक्रियिक काय और कार्मणकायका मिश्रण होता है।

आहारक समुद्घातके समय आहारक शरीर बनता है, उसके बनते हुए आहारक मिश्र काययोग होता है, बन जानेपर आहारक काययोग होता है।

विग्रह गतिमें कार्मण काययोग होता है। जब एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जीव जाता है, तब बीचमें तैजस कार्मण दो सूक्ष्म शरीर सहित जीव जाता है। उनमेंसे कार्मणकायके निमित्तसे आत्माका हलन-चलन होता है, इससे वहां कार्मण काययोग होता है। कर्मोंके आस्रव और बन्धके कारण पांचों भाव पहले गुणस्थानसे लेकर तेरहवें गुण-

स्थानतक यथासंभव पाए जाते हैं। चौदहवें अयोग गुणस्थानमें योग भी नहीं रहते हैं, इससे वहां कर्मोंका आस्रव व बंध बिलकुल नहीं होता है।

पहले गुणस्थान मिथ्यादर्शनमें मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग पांचों ही कर्मोंके आस्रव और बंधके कारण मौजूद हैं। दूसरे तीसरे चौथे गुणस्थानोंमें मिथ्यात्व छूट गया। तीसरे चौथेमें अनंतानुबंधी कषाय भी छूट गया। पांचवें देश संयत गुणस्थानमें एक देश अविरति भाव टल गया। अप्रत्याख्यानावरण कषाय भी नहीं रही।

छठे प्रमत्त विरतमें प्रमाद, कषाय व योग तीन कारण हैं। यहां प्रत्याख्यानावरण कषाय भी नहीं रही।

अप्रमत्त सातवें गुणस्थानमें प्रमाद भी छूट गया, मात्र कषाय और योग है। नौमें गुणस्थान तक सर्व कषाय चली गई मात्र सूक्ष्म लोभ रह गया। दसवें तक कषाय व योग है फिर ११से १३ तक मात्र योग ही रह गया।

जैसे २ गुणस्थान बढ़ता जाता है वैसे २ आस्रव बंधके कारण भी घटते जाते हैं।

शिष्य—आपने बहुत ही उपयोगी बात बताई। आस्रव बंधके संबंधमें कुछ और विशेष जानना जरूरी है।

शिक्षक—आपको यह जान लेना जरूरी है कि संसारी जीव कोई भी अच्छा या बुरा काम करते हैं उनमें जीवके भाव भी लगते हैं तथा शरीर व बाहरी अजीव पदार्थोंका भी सम्बन्ध होता है—जैसे हमने किसी पशुको लाठी मारी इसमें जीवका क्रोधभाव कारण है।

तथा शरीर, लाठी अजीव पुद्गलका सम्बन्ध भी है। इसलिये आस्रव व बंधके दो अधिकरण बताए गए हैं--एक जीवाधिकरण दूसरा अजीवाधिकरण। जीवाधिकरण या जीवरूपी आधारके एकसो आठ भेद हैं---

शिष्य--क्या आप १०८ भेद बताएंगे?

शिक्षक--हरएक कामके करनेका इरादा किया जाता है। इसको संरम्भ कहते हैं, फिर उस कामके करनेका प्रबंध किया जाता है इसको समारम्भ कहते हैं। फिर उस कामको शुरू किया जाता है इसको आरम्भ कहते हैं। जैसे दान देनेका भाव या इरादा करना संरम्भ है। दानके लिये चीजका लाना समारम्भ है। दान पात्रको देना सो आरम्भ है। इस हरएकके लिये मन, वचन, काय तीनोंका प्रयोग जीव द्वारा होसक्ता है। जैसे-मनसे इरादा करना, वचनसे उसे कहना, कायके अंगसे उसको प्रकाश करना, तब संरम्भ समारम्भ, आरम्भको मन, वचन, कायसे गुणनेसे नौ भेद होंगे।

कोई काम स्वयं किया जाता है, कोई कराया जाता है, किसी कामकी अनुमोदना कीजाती है। जैसे--स्वयं करनेका विचार करना आदि, किसीसे करानेका विचार करना आदि, किसीने कोई काम कियाहै उसपर प्रसन्नताका भाव मनमें करना, वचनसे कहना, कायसे बताना तथा प्रसन्नताका इरादा करना, प्रसन्नता बतानेका प्रबंध करना, प्रसन्नता बता देना। इस तरह नौको कृतकारित व अनुमोदनासे गुणा करनेसे सत्ताईस २७ भेद होते हैं। अच्छे या बुरे किसी भी काम करनेके लिये कषायकी प्रेरणा होती है; कोई काम, क्रोधवश, कोई मानवश, कोई मायाचारीसे व कोई लोभवश किया जाता है। इस तरह २७को ४से गुणा करनेपर १०८ भाव जीवके होसके हैं

जिनसे पाप या पुण्य किया जाता है। जैसे समरम्भादि ३×मन, वचन, काय ३×कृत आदि ३×कषाय ४=१०८ जीवाधिकरणके भेद हैं।

अजीवकरणके ११ ग्यारह भेद हैं—

१–**मूल गुण निर्वर्तना**–शरीर, वचन, मन, श्वासोछ्वासका बनना।

२–**उत्तर गुण निर्वर्तना**--काठकी चौकी, मिट्टीके वर्तन, चित्रकर्म आदि काम शरीरके अंगोंसे बनाना।

३--**अप्रवेक्षित निक्षेप**--विना देखे हुए पदार्थको रखना।

४- **दुष्टप्रमृष्ट निक्षेप**--दुष्टतासे क्रोधमें आकर रखना।

५–**सहसा निक्षेप**–जल्दीसे यकायक जहांतहां पटक देना।

६--**अनाभोग निक्षेप**--जहांसे वस्तुको उठाना वहां न रखकर कहीं और रख देना।

७–**भक्तपान संयोग** रागवश भोजनमें पीनेकी वस्तु मिलाना।

८--**उपकरण संयोग**–ठंडे वर्तनमें गर्म वस्तु, गर्म वर्तनमें ठंडी वस्तु रखना आदि।

९ **काय निसर्ग**–कायका हिलाना।

१० **वचन निसर्ग**--वचनोंका कहना।

११ **मनोनिर्सग**–मनका हिलाना।

नोट—यहां मनसे मतलब द्रव्य मनसे है जो हृदयस्थानमें आठ पत्तेके कमलके आकार है। यह हम पहले बता चुके हैं कि साधारण रीतिसे एक साथ सातों कर्म व कभी आठों कर्म बंधते हैं। तौ भी जिस कर्मके कारण भाव विशेष तरहके होते हैं उस कर्मका विशेष अनुभाग बन्धता है।

शिष्य--क्या हरएक कर्मके बन्धके लिये विशेष भाव भी होते हैं ? कृपाकर उनको बता दीजिए।

शिक्षक--इनका जानना भी जरूरी है।

(१)--ज्ञानावरण दर्शनावरणके बन्धके विशेष भाव-

१--**प्रदोष**--किसीने सच्चे तत्वोंका उपदेश किया हो तो भी मनमें प्रसन्न होकर दुष्टभाव या ईर्षाभाव रखना।

२--**निन्हव**--अपनेको किसी बातका ज्ञान होनेपर भी आलस्य आदि कारणसे दूसरेके पूछनेपर कहना कि हम नहीं जानते हैं। अपने ज्ञानको छिपाना तथा अपने ज्ञानदाता गुरुका नाम छिपाना।

३--**मात्सर्य**--ईर्षाभावसे दूसरेको नहीं बताना। यह भाव रखना कि यदि यह जान जायगा, तो हमारी प्रतिष्ठा घट जायगी।

४--**अन्तराय**--ज्ञानकी उन्नतिके कारणोंमें विघ्न करना।

५--**आसादन**--ज्ञानको प्रकाश करनेसे किसीको मना करना।

६--**उपघात**--सच्चे ज्ञानको भी खोटी युक्तिसे खंडन करना।

शिष्य--ज्ञानावरण व दर्शनावरणके कारण एक क्यों हैं ?

शिक्षक--दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है। इसलिये दोनोंके बंधक कारण एकसे ही कहे गए हैं।

(२) असाता वेदनीय कर्मके विशेष बंधके भाव।

(१) **दुःख**-पीड़ा रूपी परिणाम. (२) **शोक**--इष्ट वस्तुके वियोगपर मलीन चित्त होना. (३) **ताप**--निंदा आदिके निमित्तसे तीव्र पछतावेके दुःखित परिणाम या किसी वस्तुके न मिलनेपर पछतावा (४) **आक्रंदन**--आंसु निकालते हुए दुःख भावसे रोनाके रूदन करना. (५) **वध**-आयु इन्द्रिय बल श्वासोछ्वास प्राणोंका

वियोग करना, प्राण लेलेना, (६) **परिदेवन**--संक्लेश भावसे ऐसा रुदन करना जिससे दूसरोंके दिलमें दया पैदा होजावे।

इन छः बातोंको स्वयं करनेसे व दूसरोंके भीतर पैदा करदेनेसे व आप व दूसरोंमें दोनोंके भीतर पैदा करा देनेसे असाता वेदनीयका विशेष बन्ध होता है।

शिष्य--यदि कोई वैराग्यवान होकर घर छोड़ कर साधु होजावे और इस कारणसे उसके घरवाले कष्ट पावें तो घर छोड़नेवालेको असाता वेदनीयका बन्ध होगा या नहीं ?

शिक्षक--क्योंकि घर छोड़नेवालोंके परिणाम घरवालोंको कष्ट देनेके नहीं हैं किंतु आत्म कल्याण करनेके हैं। घरवाले अपने स्वार्थवश मोहसे दुःखी होते हैं। इस लिये उसे असाता वेदनीयका बन्ध न होगा। जहां भीतरसे परिणाम दुःखित करनेके होंगे व अपना ऐसा स्वार्थ साधन करनेके होंगे जिससे दूसरोंको कष्ट पहुंच जावे तो असाता वेदनीयके बंधका वह भागी होगा।

(२) साता वेदनीय कर्मके विशेष बंधके भाव।

(१) **भूतानुकम्पा**--सर्व प्राणी मात्रपर करुणाभाव (२) **व्रत्यनुकम्पा**--व्रती श्रावक व मुनियोंके लिये विशेष दयाभाव कि वे किसी तरह कष्ट न पावें (३) **दान**--उपकार विचार कर आहार, औषधि, अभय व विद्यादानका देना, धर्मके पात्रोंको भक्तिपूर्वक देना, दुःखित प्राणियोंको दयाभावसे देना। (४) **सराग संयम**--धर्मके अनुराग सहित मुनिका चारित्र पालना (५) **संयमासंयम**--श्रावकका चारित्र धर्मप्रेमसे पालना (६) **अकाम निर्जरा**--समताभावसे कर्मोंके फलको भोग लेना (७) **बाल तप**--आत्मज्ञान रहित मंद कषा-

यसे तप करना (८) योग--समाधि या ध्यानमें प्रेमी होना (९) शान्ति--क्रोधको जीतकर क्षमाभाव रखना। (१०) शौच--लोभको मन्द करके संतोष रखना।

इत्यादि परहितकारी कार्योंसे साता वेदनीय कर्मका विशेष बन्ध होता है।

(४) दर्शन मोहनीय कर्मके बन्धके विशेष भाव:--

(१) केवलि अवर्णवाद--केवली अरहन्त भगवानकी निंदा करके मिथ्या दोष लगाना, (२) श्रुतअवर्णवाद--अर्हत भगवान प्रणीत आगमकी कुभक्तिसे निन्दा करना, (३) संघ अवर्णवाद--मुनि संघको मिथ्या दोष लगाना, (४) धर्म अवर्णवाद--रत्नत्रयमई मोक्षमार्ग रूप सच्चे धर्मकी मिथ्या निंदा करना, (५) देव अवर्णवाद--देवगतिके जीवोंको मिथ्या दोष लगाना जैसे कहना कि देव शराब पीते हैं या मांस खाते हैं।

(५) चरित्र मोहनीयके बन्धके विशेष भाव--कषायोंके उदयसे जो तीव्र कषायरूप भाव होते हैं उनसे चारित्रमोहनीयका बन्ध होता है। जैसे--अपने भीतर व दूसरोंके भीतर कषाय पैदा करना, तपस्वी जनोंके चारित्रमें झूठा दोष लगाना, दुःखी होकर साधु होजाना व व्रत धारना। नौ नो कषायोंके बन्धके विशेष भाव नीचे प्रकार हैं--(१) दीनोंकी व सत्य धर्मकी हँसी उड़ाना, बहुत बकवाद सहित हँसी करनेका स्वभाव रखना, हास्यके बन्धका कारण है, (२) बहुत खेल कूदमें रति करना व शील व व्रतोंमें अरति करना, रतिके बन्धका कारण है, (३) दूसरोंको अरति पैदा कर देना, पापोंमें

रति करना, कुसंगति करना, अरतिके बंधका कारण है, (४) अपने आप शोक करना व दूसरोंको शोकित देखकर प्रसन्न होना शोकके बंधका कारण है। (५) स्वयं भयभीत रहना व दूसरोंमें भय पैदा करदेना भयके बंधका कारण है। (६) शुभ कामोंसे घृणा करना जुगुप्साके बंधका कारण है। (७) असत्य भाषण, दूसरोंको ठगना, दूसरोंके छिद्र देखना, कामभावकी वृद्धि रखना स्त्रीवेदके बंधका कारण है। (८) अल्प क्रोध रखना, घमंड न करना, स्व स्त्रीमें संतोष रखना पुरुष वेदके बंधका कारण है। (९) तीव्र राग रखना, गुप्त इंद्रियको छेदना, परस्त्रीसे आलिंगन आदि नपुंसक वेदके बंधका कारण है।

(६) नरकायुके बंधके विशेष भाव—

(१) वहु आरंभ—न्यायको छोडकर अन्यायसे प्राणियोंको पीड़ाकारी व्यापार व अन्य आरंभ करना। (२) वहु परिग्रह—न्यायको छोड़कर अन्यायसे भी परिग्रहको एकत्र करनेका तीव्र राग रखना। इन दोनों हेतुओंसे हिंसादि दुष्ट कार्योंमें शीघ्र प्रवर्तना, परधन हर लेना, पांचों इंद्रियोंके भोगोंकी अति गृद्धता रखना, कृष्ण लेश्या सम्बन्धी हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी, परिग्रहानंदी रौद्रध्यान करना तथा रौद्रध्यानसे मरना।

(७) तिर्यंच आयुके बंधके विशेष भाव—

मायाचार करना, मिथ्यात्व सहित धर्मका उपदेश देना, शील व्रत न पालना, दूसरोंके ठगनेमें राग भाव, नील कपोत लेश्या सम्बन्धी आर्तध्यान करना व आर्तध्यानसे मरना।

(८) मनुष्य आयुके बंधके विशेष भाव—

(१) अल्पारंभ—न्याय सहित व संतोष सहित व्यापारादि

आरम्भ करना। (२) अल्प परिग्रह–न्यायसे परिग्रहको एकत्र करनेमें संतोष रखना। (३) विनयरूप स्वभाव रखना। (४) स्वभावसे भद्र होना। (५) सरलतासे व्यवहार करना। (६) मंदकषायसे संक्लेश भाव रहित मरण करना।

(९) देव आयु बंधके विशेष भाव—

(१) सराग संयम–मुनिका चारित्र पालना, (२) संयमासंयम–श्रावकके बारह व्रत पालना। (३) अकाम निर्जरा–समताभावसे बन्धनका, भूख प्यासका, रोगादिका दुःख सहन करना। (४) बालतप–मिथ्या दर्शन सहित आत्मानुभव रहित कायक्लेश करते हुए बहुत तप करना। (५) सम्यक् दर्शन–आत्मतत्व आदि सात तत्वोंमें दृढ़ श्रद्धान रखना। नोट–व्रत रहित भी सम्यग्दृष्टी स्वर्गमें जाने लायक देवायुका बन्ध करता है। जो सम्यक्दर्शनसे रहित हो और बाहरी व्रत संयम पाले तो वह भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवोंमें भी पैदा होसक्ता है व ऊपर नौग्रैवेयिक तक भी जासक्ता है।

(१०) अशुभ नाम कर्मके बंधके विशेष भाव–(१) योगवक्रता–मन वचन कायको वक्र या कुटिल रखना, मायाचार सहित वर्तना, दूसरोंको चिढ़ाना, नकल करना, (२) विसम्वाद–जो कोई शुभ कामोंको करता हो उसको झगड़ा करते हुए मना करना व परस्पर बकवाद व गाली देते हुए लड़ना. (३) मिथ्यादर्शन. (४) पैशून्य चुगली करना, (५) अस्थिर चित्तता–मनकी चंचलता. (६) कूट मान तुला करना–झूठे बांट माप रखना (७) परनिंदा. (८) आत्म प्रशंसा।

(११) शुभ नाम कर्मके बन्धके विशेषभाव–(१) योग

सरलता--मन, वचन, कायको सरलतासे कपट रहित वर्तना, (२) अविसम्वाद--धर्म कार्यसे न रोकना, परस्पर झगड़ा न करना, (३) धार्मिक प्रेम, (४) संसारसे भय, (५) प्रमाद न करना।

(१२) तीर्थंकर नाम कर्मके बन्धके विशेष भाव-षोड़श कारण भावनाओंका वारवार विचारना । वे सोला भाव नीचे प्रकार हैं:—

(१) दर्शनविशुद्धि--मोक्षमार्गकी श्रद्धाको विशेष पालना ।

(२) विनयसंपन्नता- धर्म तथा धर्मात्माओंका विनय करना।

(३) शीलव्रतेष्वनतिचार--अहिंसादि व्रतोंके पालनमें व क्रोधादि रहित स्वभावमें दोष न लगाना ।

(४) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग--शास्त्रके विचारमें व तत्वज्ञानमें नित्य चित्त जोड़ना ।

(५) संवेग -संसारके दुःखोंसे वैराग्य करना, धर्ममें प्रेम रखना।

(६) शक्तितस्त्याग--शक्तिको न छिपाकर आहार, औषधि, अभय व विद्यादान देना ।

(७) शक्तितस्तप--शक्तिको न छिपाकर शास्त्रानुसार तप करना।

(८) साधु समाधि--साधुओंपर उपसर्ग या कष्ट पडनेपर उसे दूर करना ।

(९) वैय्यावृत्य--धर्मात्मा व गुणवानोंका दुःख या कष्टके समयमें निर्दोष उपायसे सेवा करके मेट देना ।

(१०) अर्हत्भक्ति--श्री अरहंत भगवानकी पूजा, भक्ति, स्तुति करना ।

(११) आचार्य भक्ति--आचार्य गुरुकी शुद्ध भावसे भक्ति करना।

(१२) वहुश्रुत भक्ति--उपाध्याय व वहुव्रती साधुकी भक्ति करना।

(१३) प्रवचन भक्ति—जिनशास्त्रोंके पठन पाठनका विशेष अनुराग रखना।

(१४) आवश्यकापरिहाणि—नित्यके छः कर्मोंको न छोड़ना—रोज पालना। साधुके छः कर्म हैं—सामायिक, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण (पिछला दोष हटाना), प्रत्याख्यान (आगामी दोष न करनेकी प्रतिज्ञा), कायोत्सर्ग (ध्यान)। गृहस्थके छः कर्म हैं:—देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप (सामायिक) तथा दान।

(१५) मार्ग प्रभावना--ज्ञानप्रचार, विशेष तप, जिनपूजा, आदिके द्वारा धर्मका प्रकाश करके प्रभाव जमाना।

(१६) प्रवचन वत्सलत्व—धर्मात्माओंके प्रति गोवत्सके समान प्रेम रखना।

(१३) नीच गोत्रके बन्धके विशेष भाव:—

(१) परनिंदा—परके दोष कहनेकी इच्छा करना, (२) आत्म प्रशंसा—अपने गुणोंकी प्रशंसा करना, (३) परसद्गुणोच्छादन—दूसरोंमें पाए जानेवाले गुणोंको छिपाना, (४) आत्मअसद्गुणोद्भावन--अपनेमें न होते हुए गुणोंका प्रकाश करना-शेखी मारना।

(१४) ऊंच गोत्रके बंधके विशेष भाव—(१) आत्मनिन्दा, (२) पर प्रशंसा, (३) आत्म सद्गुणोच्छादन--अपने गुणोंका ढकना, (४) पर सद्गुणोद्भावन—दूसरेके गुणोंको प्रगट करना, (५) नीचैर्वृत्ति—विनयसे वर्ताव करना, (६) अनुत्सेक—विद्या, धन आदिमें महान होनेपर भी अहंकार न करना।

(१५) अन्तराय कर्मके बंधके विशेष भाव—

(१) किसीको दान देते हुए विघ्न करना दानांतरायके बंधका कारण है ।

(२) किसीके लाभ होनेमें विघ्न करना, लाभांतरायके बंधका कारण है ।

(३) किसीके भोगोंमें विघ्न करना, भोगांतरायके बन्धका कारण है ।

(४) किसीके उपभोगोंमें विघ्न करना, उपभोगांतरायके बंधका कारण है ।

(५) किसीके उत्साहको भंग कर देना, वीर्यांतरायके बंधका कारण है ।

शिष्य–कर्मोंके आठ भेद आपने बताएं हैं, इन आठ प्रकृतियोंके भेद भी हैं ?

शिक्षक–कर्म प्रकृतियोंके एकसौ अडतालीस भेद हैं, आपको मैं बताता हूं आप ध्यानमें लेलें ।

(१) ज्ञानावरण कर्मके पांच भेद—

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय तथा केवल। इन पांचों ज्ञानोंको आवरण करनेवाले पांच कर्म हैं ।

(१) मतिज्ञानावरण, (२) श्रुतज्ञानावरण, (३) अवधि ज्ञानावरण, (४) मनःपर्ययज्ञानावरण, (५) केवलज्ञानावरण ।

(२) दर्शनावरण कर्मके नौ भेद—

(६) चक्षु दर्शनावरण–चक्षु दर्शनको रोकनेवाला ।

(७) अचक्षु दर्शनावरण–अचक्षु दर्शन, (आंखके सिवाय और इन्द्रिय तथा मनसे होनेवाले दर्शन)को रोकनेवाला ।

(८) अवधि दर्शनावरण—अवधिज्ञानके पहले होनेवाले अवधि दर्शनको रोकनेवाला।

केवल दर्शनावरण -केवल दर्शन (अनंत दर्शन)को रोकनेवाला।

(१०) निंद्रा—जिसके उदयसे नींद आवे, (११) निद्रानिद्रा—जिसके उदयसे गाढ़ निद्रा आवे, (१२) प्रचला--जिससे ऊंघ आवे (१३) प्रचलाप्रचला-जिससे वारवार ऊंघ आवे। (१४) स्त्यान-गृद्धि—ऐसी नींद जिसमें स्वप्नमें कुछ काम करले फिर सो जावे।

(३) वेदनी कर्मके दो भेद—

(१५) सातावेदनीय--जिससे सुखका लाभ होसके।

(१६) असातावेदनीय--जिसके फलसे अनेक प्रकार दुःख हों।

(४) मोहनीयके अट्टाइस भेद--हम पहले गिना चुके हैं। तीन दर्शनमोहके, (१७) मिथ्यात्व, (१८) सम्यक्त्व, (१९) सम्यक्प्रकृति।

पचीस चारित्रमोहके (२०)से (२४) अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ। (२५)से (२८) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। (२९) से (३२) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। (३३) से (३६) संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। (३७) से (४५) हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद।

(५) आयु कर्मके चार भेद—

(४६) नारक आयु, (४७) तिर्यंच आयु, (४८) मानुष आयु, (४९) देव आयु।

(६) नाम कर्मके ९३ भेद-जिनके फलसे शरीर बने।

चार गति (४९) नरक गति, (५०) तिर्यंचगति, (५१) देवगति, (५२) मनुष्य गति। **पांच जाति** (५३) एकेंद्रिय, (५४) द्वेंद्रिय, (५५) तेंद्रिय, (५६) चौंद्रिय, (५७) पंचेंद्रिय। **पांच शरीर** (५८) औदारिक, (५९) वैक्रियिक, (६०) आहारक, (६१) तैजस (६२) कार्मण। **तीन अंगोपांग** तीन शरीर हीमें अंग व उपंग बनते हैं। (६३) औदारिक, (६४) वैक्रियिक, (६५) आहारक, (६६) **निर्माण**–जिससे अंग उपंगका स्थान व प्रमाण बने। **बंधन पांच प्रकार** (६७) औदारिक बं०, (६८) वैक्रियिक बं०, (६९) आहारक बं०, (७०) तैजस बं०, (७१) कार्मण बंधन। **संघात पांच प्रकार**–एकमेक होकर पुद्गलका मिल जाना। (७२) औदारिक सं०, (७३) वैक्रियिक सं०, (७४) आहारक सं०, (७५) तैजस सं०, (७६) कार्मण सं०। **छः संस्थान** (शरीरोंके आकार) (७७) समचतुरस्र संस्थान–सुडौल शरीर, (७८) न्यग्रोध परिमंडल सं०–वटवृक्षके समान ऊपर बड़ा नीचे छोटा, (७९) स्वाति सं० ऊपर छोटा नीचे बड़ा, (८०) कुब्जक सं०–कूबड़ा, (८१) वामन सं०--बौना, (८२) हुंडक सं०--बेडौल। **छः संहनन** (८३) वज्रवृषभ नाराच संहनन--वज्रके समान मजबूत नसोंके जाल कीले व हड्डी (८४) वज्र नाराच सं०--वज्रके समान कीले व हड्डी, (८५) नाराच सं०--दोनों तरफ कीलेदार हड्डी, (८६) अर्धनाराच सं०--एक तरफ कीलेदार हड्डी, (८७) कीलक सं०--हड्डी हड्डीसे कीलित हो, (८८) असम्प्राप्तासृपाटिका सं०–हड्डी मांससे मिली हो। **आठ स्पर्श**--(८९) कर्कश, (९०) नम्र, (९१) गुरु--भारी, (९२) लघु--हलका, (९३) स्निग्ध–चिकना, (९४) रूक्ष--रूखा, (९५) उष्ण, (९६) शीत।

पांच रस--(९७) तिक्त--तीखा, (९८) कटुक--कडवा, (९९) कषाय-कषायला, (१००) आम्ल--खट्टा, (१०१) मधुर। दो गंध, (१०२) सुगंध (१०३) दुर्गंध, वर्ण पांच, (१०४) शुक्ल, (१०५) कृष्ण, (१०६) नील, (१०७) रक्त, (१०८) पीत। आनुपूर्वी चार--जिससे विग्रह गतिमें पूर्व शरीरके आकार आत्मा रहे, जबतक दूसरे शरीरमें न पहुंचे। (१०९) नरकगत्यानुपूर्वी--नरक गति जाते हुए पूर्वका आकार, (११०) तिर्यंगत्यानुपूर्वी, (१११) मनुष्यगत्यानुपूर्वी, (११२) देवगत्यानुपूर्वी, (११३) अगुरुलघु--न बहुत भारी न हल्का, (११४) उपघात--जिससे अपनेसे अपना घात करे (११५) परघात--जिससे परका घात हो, (११६) आतप--धूप जो परको ताप करे, (११७) उद्योत--प्रकाश, (११८) उच्छ्वास, (११९) प्रशस्त विहायोगति--शुभ चाल, (१२०) अप्रशस्तविहायोगति-अशुभ चाल, (१२१) प्रत्येक शरीर--एक शरीरका एक स्वामी, (१२२) साधारण शरीर- एक शरीरके अनेक स्वामी, (१२३) त्रस- द्वेन्द्रियादि, (१२४) स्थावर--एकेन्द्रिय, (१२५) सुभग--परको प्रीतिकारी. (१२६) दुर्भग--परको अप्रीतिकारी, (१२७) सुस्वर (१२८) दुस्वर. (१२९) शुभ- सुन्दर, (१३०) अशुभ--असुन्दर. (१३१) सूक्ष्म--अबाधाकारी. (१३२) बादर--बाधाकारी. (१३३) पर्याप्ति--आहारादि पर्याप्ति पूर्ण हो. (१३४) अपर्याप्ति. (१३५) स्थिर. (१३६) अस्थिर. (१३७) आदेय--प्रभावान शरीर. (१३८) अनादेय--प्रभारहित शरीर. (१३९) यशःकीर्ति, (१४०) अयशःकीर्ति. (१४१) तीर्थंकर।

(७) गोत्रकर्म दो प्रकार--(१४२) उच्चगोत्र--जिससे लोक

पूजित कुलमें जन्म हो, (१४३) नीचैर्गोत्र--जिससे निंदित कुलमें जन्म हो।

(८) अंतराय कर्म पांच प्रकार--(१४५) दानांतराय--दानमें विघ्न करे, (१४५) लाभांतराय, (१४६) भोगांतराय, (१४७) उपभोगांतराय, (१४८) वीर्यांतराय--आत्मबल घाते।

यह हम आपको बता चुके हैं कि बंध होते समय कर्मोंमें स्थिति पड़ती है। यदि कषाय अधिक होती है, तो अधिक कषाय, कषाय कम होती है तो कम। आयु कर्मका विशेष भी बता चुके हैं। आठों कर्मोंकी उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति हम बताते हैं, मध्यमके अनगिनती भेद हैं।

स्थिति भेद।

कर्मनाम	उत्कृष्ट	जघन्य
(१) ज्ञानावरण--	तीस कोड़ाकोड़ी सागर	--अन्तर्मुहूर्त
(२) दर्शनावरण--	,,	-- ,,
(३) वेदनीय--	,,	--बारह मुहूर्त
(४) मोहनीय--	सत्तर ,,	--अंतरर्मुहूर्त
(५) आयु--	तेतीस सागर	-- ,,
(६) नाम--	वीस कोड़ाकोड़ी सागर	--आठ मुहूर्त
(७) गोत्र--	,,	-- ,,
(८) अन्तराय--	तीस ,,	-- अंतर्मुहूर्त

नोट--एक सागर अनगिनती वर्षोंका होता है। कोड़को कोड़से गुणा करनेसे कोडाकोड़ी होता है। ४८ मिनटका एक मुहूर्त होता है। उससे कम अन्तर्मुहूर्त होता है।

अनुभाग बंधका कुछ विशेष हाल यह है कि घातीय कर्मोंमें कषायोंकी तीव्रता या मंदतासे चार प्रकारका रस या फल दान बल पड़ता है। लता (वेल) के समान कोमल, २ दारु (काठ) के समान कठोर, ३ अस्थि (हड्डी) के समान कठोर, ४ पाषाण (पत्थर) के समान अति कठोर।

अघातीय कर्मोंकी पुण्य प्रकृतियोंमें चार प्रकारका रस या फल दान बल पड़ता है। १-गुड़के समान कम मीठा, २-खांड़के समान अधिक मीठा, ३-शर्करा (मिश्री) के समान बहुत मीठा, ४-अमृतके समान बहुत मीठा।

अघातीय कर्मोंकी पाप प्रकृतियोंमें चार प्रकारका रस या फल दान बल पड़ता है। १-नीमके समान कडुवा, २-कांजीरके समान कडुवा, ३-विषके समान बुरा, ४-हालाहल विषके समान बहुत बुरा।

प्रदेश बंधमें इतना जानना चाहिये कि हरसमय योगोंके अनुसार कर्मवर्गणाएं खिचकर आती हैं। और वे उस समय बंधनेवाले कर्मोंमें यथासंभव बंट जाती हैं। यदि योगशक्ति तेज चलती है तो अधिक कर्म पुद्गल आते हैं। यदि मंद चलती है तो कम कर्म पुद्गल आते हैं।

शिष्य-कर्मके फल देनेकी कोई विशेष विधि है?

शिक्षक-कर्म कैसे फल देते हैं, इसका कुछ हाल आपको बता देना जरूरी है। जब कर्म बन्धते हैं तब उनके लिये कुछ

काल पकनेको लगता है । इस बीचके कालको आवाधा काल कहते हैं। इसका दृष्टांत ऐसा ही समझ लिया जावे जैसे--खेतमें बोए हुए आमको कुछ काल पकनेमें लगता है । इस आवाधा कालका हिसाब यह है कि यदि एक कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति पड़े तो आवाधा-काल १०० वर्षका होता है । सत्तर कोड़ा कोड़ी सागरकी स्थिति हो तो ७००० वर्ष आवाधा काल होगा । इसीका औसत हिसाब निकाला जाय तो एक करोड़ सागरकी स्थितिके लिये आवाधा काल मात्र एक अन्तर्मुहूर्तके लिये ही होगा। इसके आप यह बात जान सक्ते हैं कि जितने कम स्थितिके कर्म बन्धेंगे वे जल्दी फल देनेको तैयार होजांयगे । इससे यह बात आप समझ लेवें कि कर्म इस जन्मके बांधे हुए भी इस जन्ममें उदय आने लगते हैं ।

दूसरी बात यह जाननी चाहिये कि आवाधा कालको निकाल कर जितने कर्मोंकी जितनी स्थिति बाकी रहती है, उसमें कर्मपुद्गल प्रति समयके हिसाबसे बंट जाते हैं। पहले२ अधिक कर्म झड़ते हैं फिर कम कम होते हुए अंतिम समयमें सबसे कम झड़ते हैं ।

इस अधिक व कम कर्मोंके झड़नेका एक दृष्टान्त आपको देते हैं जिससे आप समझ लेंगे ।

जैसे किसी जीवने ६३०० कर्म ४९ समयकी स्थितिवाले बांधे और १ समय उसका आवाधाकाल रक्खा जावे तो ४८ समयमें वे किस तरह झड़ेंगे उसका हिसाब नीचेके नकशेसे समझमें आयगा । इसका विशेष खुलासा श्री गोमटसार कर्मकांडसे जानना योग्य है—

	१	२	३	४	५	६
अष्टम	२८८	१४४	७२	३६	१८	९
सप्तम	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
षष्ठम	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
पंचम	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
चतुर्थ	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
तृतीय	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
द्वितीय	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
प्रथम	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
जोड़....	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

इस नकशेसे विदित होगा कि ४८ समयोंके आठ आठ समयोंके छः विभाग किये गये हैं। पहले भागमें पहले समयमें ५१२ कर्म झड़ेंगे, फिर ३२, ३२ कम होते हैं। आठवेंमें २८ झड़ेंगे, दूसरे भागके पहले समयमें २५६, आठवेंमें १४४ इस तरह छठे भागके आठवें समयमें केवल ९ ही झड़ेंगे। इस भागको गुणहानि कहते हैं। उसके कालको गुणहानि आयाम कहते हैं। यह हिसाब आयु कर्मके बिना सात कर्मोंके लिये है। आयु कर्मकी आबाधा बन्धनेके पीछे जहांतक मरे नहीं वहां तक है. फिर उस आयु कर्मका बटवारा उस आयुके समयोंमें होजाता है और कर्म समयर झड़ते हैं।

कर्म बन्धनेके पीछे आबाधा काल पीछे झड़ने लगते हैं। झड़ते समय यदि निमित्त अनुकूल होता है तो फल दिखाकर झड़ते हैं नहीं तो बिना फल दिखाए झड़ते हैं। जैसे चारों कषायोंका बन्ध एक साथ किया था व उनकी स्थिति भी बराबर पड़ी थी तब

चारों कषायोंके कर्म अवाधा कालके पीछे झडना शुरू होंगे उनमेंसे एक कोई कषायके कर्म तो फल देके झडेंगे वाकीके तीन कषायके कर्म विना फल दिये झड़ेंगे; क्योंकि एक समय एक ही कषाय भावोंमें होती है। क्रोध, मान, माया, लोभ चारोंका एक साथ झलकाव नहीं होता है। अथवा जैसे कोई मानव एकांतमें वैठकर शास्त्रका पाठ बड़े प्रेमसे आध घंटातक कर रहा है उस समय उसके धर्मका लोभ है इससे लोभ कषाय कर्म तो फल देकर झड़ रहे हैं, शेष तीन कषायके कर्म विना फल दिये झड़ रहे हैं। कर्मका फल होनेमें वाहरी निमित्त बहुत आवश्यक है। जैसे किसी मानवके कामभाव जागृत करनेवाला वेद नोकषाय कर्म हरसमय झड़ रहा है परन्तु वह मानव एक पवित्र साधुके आश्रममें रातदिन स्वाध्याय व ध्यान करता हुआ व धर्मचर्चा करता हुआ रहता है, वहां कोई स्त्रीका सम्बन्ध नहीं है न वहां कोई काम भावकी चर्चा है तव जवतक ऐसा सम्बन्ध वना रहेगा उसके भावमें काम भाव जागृत न होगा। यदि कदाचित् उसको कहीं सुंदर स्त्रीका दर्शन होजाय तो निमित्त होनेसे उसके वेदका उदय फलदाई हो जायगा। इसलिये यह उचित है कि हम लोग अपने आत्मवलसे हरएक काम विचारपूर्वक करें, खोटे निमित्तोंको वचावें तो हम वहुतसे अशुभ कर्मके उदयके फलसे वच सक्ते हैं। इसी तरह यदि हम धन कमानेका कोई निमित्त न वनावें तो धनागमका सहकारी पुण्य भी विना फल दिये झड़ जायगा--निमित्त होनेसे फलदायी होजायगा। कभी कोई पाप या पुण्य कर्म अति तीव्र होता है तो उसका फल अवश्य होजाता है वैसा निमित्त मिलजाता है। जैसे कोई सम्हाल कर

किसी अच्छी गाडीपर जारहा है। मार्गमें गाड़ी उलटनेसे चोट लग जाती है, यहां तीव्र असाताका उदय समझना चाहिये। या कोई मानव किसी गरीब कुटुम्बमें पैदा हुआ और वह कुछ उम्र बीतनेपर किसी धनवानके घर गोद चला जाता है और धनवान होजाता है। उस समय उसके तीव्र पुण्यका उदय समझना चाहिये।

शिष्य--मैं इस बातको समझ गया कि किस तरह कर्म अपना फल देते हैं। जैसा कोई कर्म बांधता है वैसा ही उसका फल होता है या उसमें कुछ तबदीली या परिवर्तन होसकता है।

शिक्षक--कर्म बन्धनेके पीछे नीचे लिखी हालतें होसक्ती हैं। जीवोंके परिणामोंके निमित्तसे परिवर्तन होजाता है :

(१) **उत्कर्षण**–जीवोंके भावोंके निमित्तसे पहले बांधे हुए कर्मोंकी स्थिति या उनके अनुभागका बढ़जाना।

(२) **अपकर्षण**–जीवोंके भावोंके निमित्तसे पहले बांधे हुए कर्मोंकी स्थिति व अनुभागका घट जाना।

(३) **संक्रमण**–जीवोंके भावोंके निमित्तसे पापका पुण्यमें या पुण्यका पापमें बदल जाना।

(४) **उदीरणा**–किन्हीं कर्मोंका किसी निमित्तके वश अपनी ठीक स्थितिके पहले ही उदयमें लाकर झाड़ देना। जैसे हम किसी भोजन या औषधिको खाचुके हैं, फिर कोई और औषधि या भोजन खालें तो उस पहले भोजन या औषधिकी शक्तिको बढ़ा सके हैं या बुरे भोजनका असर अच्छा कर सके हैं। यही बात कर्मोंके बंधके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। कभी कोई औषधि खाकर भोजनको

जल्दी पका सक्ते हैं। जैसे स्थूल शरीरमें भिन्न २ क्रियाएं होती हैं वैसे कर्मोंके बने हुए सूक्ष्म शरीरमें जानना चाहिये।

कर्मोंके आस्रव और बन्धके संबंधमें जो जो जरूरी बातें जाननेलायक थीं सो आपको बता दीगई हैं।

आठवां अध्याय।

संवर, निर्जरा और मोक्ष।

शिक्षक—अब हम आपको संवरके सम्बन्धमें कुछ विशेष बताना चाहते हैं।

आस्रवका विरोधी संवर है। जिन भावोंसे कर्म आते हैं इनको रोक देना संवर है। क्या आप बताएंगे कि आस्रव भाव क्या क्या हैं?

शिष्य—पहले आप बता चुके हैं कि कर्मोंके आनेके भाव अर्थात् भावास्रव मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय, योग हैं।

शिक्षक—इन हीके विरोधी सम्यक्दर्शन, व्रत, अप्रमाद, निष्कषाय तथा योगरहितपना है।

मिथ्यात्वके दूर करनेके लिये हमें सम्यक्दर्शन प्राप्त करना चाहिये। निश्चय सम्यक्दर्शन अपने आत्माके असली स्वरूपका विश्वास है कि यह आत्मा पूर्ण ज्ञातादृष्टा आनन्दमई वीतराग व अमूर्तीक है। यह भावकर्म रागद्वेषादि, द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादिसे भिन्न है। इस निश्चय सम्यक्दर्शनके लिये व्यव-

वहार सम्यक्‌दर्शनकी जरूरत है। सच्चे देव, शास्त्र, गुरुमें विश्वास करना तथा सात तत्वोंमें विश्वास करना व्यवहार सम्यक्‌दर्शन है।

हम दूसरे अध्यायमें णमोकार मंत्रका अर्थ समझाते हुए बता चुके हैं कि अरहंत व सिद्ध देव हैं। आचार्य, उपाध्याय साधु गुरु हैं। उनके रचित ग्रन्थ शास्त्र हैं।

सात तत्वोंका संक्षेप स्वरूप भी हम बता चुके हैं। जब कोई श्री जिनेन्द्रदेवकी भक्ति करता रहेगा, शास्त्रोंका अभ्यास करता रहेगा, धर्मज्ञाता गुरुसे समझता रहेगा व एकांतमें नित्य बैठकर मनन करेगा कि आत्माका स्वभाव भिन्न है व कर्मादि भिन्न हैं तब अभ्यास करते करते कभी ऐसा अवसर आसक्ता है जब सम्यक्‌दर्शनके रोकनेवाले कर्म दर्शनमोह तथा अनन्तानुबंधी कषाय उपशम होजाते हैं और उपशम सम्यक्‌दर्शन पैदा होजाता है। तब मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोंके कारण जो कर्म आते थे उनका आना बन्द होजाता है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रह त्याग इन पांच व्रतोंको पूर्ण पालनेसे अविरत भाव बिलकुल छूट जाता है व इनोंको थोड़ा पाल लेनेसे जैसा गृहस्थोंके संभव है कुछ अविरत भाव दूर होता है। प्रमादके दूर करनेके लिये अप्रमाद भाव [illegible] करना चाहिये। धर्म कार्योंमें कभी आलस्य न करना चाहिये। [illegible] दूर करनेके लिये [illegible] भाव रखना चाहिये। [illegible] चाहिये। [illegible] आवश्यक पड़े तो उसको त्याग देना चाहिये। [illegible]

खेलनेकी आदत हो उसे जूआ त्याग देना चाहिये। तब जूएके भावसे जो कर्म आते थे वे रुक जाते हैं। भावोंको निर्मल रखनेके लिये व कर्मोंके आगमनको रोकनेके लिये संवरके उपाय इस प्रकार जैन शास्त्रोंमें बताए हैं—

(१) गुप्ति, (२) समिति, (३) धर्म, (४) अनुप्रेक्षा, (५) परीषह जय, (६) चारित्र, (७) तप* तपसे कर्मोंकी निर्जरा भी होती है। तपसे बहुतसे कर्म विना फल दिये हुए झड़ जाते हैं। इसको अविपाक निर्जरा कहते हैं। जो कर्म फल देकर झड़ते हैं उसको सविपाक निर्जरा कहते हैं।

शिष्य—इनका कुछ स्वरूप बतादीजिये।

शिक्षक—हमें बहुत संक्षेपसे बताना है। क्योंकि आप बुद्धिमान हैं जल्द समझ जावेंगे।

(१) गुप्ति—मन, वचन, कायके हलन चलनको रोककर ध्यानमग्न रहनेसे व आत्माका अनुभव करनेसे बहुत कर्मोंका आना रुकता है। यह गुप्ति संवरका सबसे प्रबल उपाय है। जो कोई तीनोंको रोककर हर समय ध्यान न कर सके उसके लिये पांच समिति बताई हैं कि वह सम्हाल कर वर्ते जिससे पापोंका आना न हो।

(२) समिति—भले प्रकार वर्तनेको समिति कहते हैं। ये पांच हैं। (१) ईर्या—चार हाथ भूमि देखकर दिनमें जंतु रहित हुए मार्ग पर चलना। (२) भाषा—शुद्ध सरल मीठी वाणी कहना। (३) एषणा—गृहस्थका दिया हुआ शुद्ध भोजन लेना। (४) आदान-

* स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥२॥
तपसा निर्जरा च ॥ ३०,९॥ त० सू०

निक्षेपण--किसी वस्तुको देखकर रखना उठाना। (५) उत्सर्ग या प्रतिष्ठापन--मल मूत्र जंतु रहित भूमिमें करना।

पांच प्रकार समितिको पालते हुए प्रमाद व कषायको जीतनेके लिये दश विध धर्मका भाव रखना चाहिये।

(३) दश धर्म-(१) उत्तम क्षमा-कष्ट पाने व हानि किये जानेपर भी क्रोध न करके क्षमा रखना। परिणामोंको मलीन न करना उत्तम क्षमा है।

(२) उत्तम मार्दव-अधिक तपस्वी व विद्वान होनेपर भी व अपमान पानेपर भी कभी मानभाव न लाकर कोमल भाव व विनीत भाव रखना उत्तम मार्दव है।

(३) उत्तम आर्जव--अनेक कष्ट होनेपर भी मायाचार करके स्वार्थको सिद्ध करनेकी भावना न करनी। सरलतासे मन, वचन, कायको धर्म लाभार्थ माया रहित वर्ताना उत्तम आर्जव है।

(४) उत्तम शौच--लोभसे परिणाम मैला न करके, पूर्ण संतोष पालना। लाभ, अलाभमें समभाव रखना उत्तम शौच है।

(५) उत्तम सत्य--धर्म वृद्धिके हेतु शास्त्रोक्त वचन कहना। कभी भी परमागमके विरुद्ध नहीं कहना उत्तम सत्य है।

(६) उत्तम संयम--पांच इन्द्रिय मनको अपने आधीन रखना तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, व त्रस कायिक प्राणियोंकी रक्षा करना उत्तम संयम है। (७) उत्तम तप--कर्मोंके नाशके लिये आत्माको ध्यानमें तपाकर शुद्ध करना उत्तम तप है। (८) उत्तम त्याग--परोपकारके लिये ज्ञान दान व अभय दान आदि देना उत्तम त्याग है। (९) उत्तम आकिंचन्य--सर्व पर पदार्थोंसे ममता त्यागकर

निर्ममत्व भाव रखना उत्तम आकिंचन्य है।

(१०) **उत्तम ब्रह्मचर्य**–काम भावको त्यागकर ब्रह्मचर्य पालकर ब्रह्म स्वरूप आत्माका मनन करना उत्तम ब्रह्मचर्य है।

इन दश धर्मोंके पालनेसे पाप कर्मोका बहुत अधिक संवर होता है।

(४) **बारह अनुप्रेक्षा या भावना**--ऊपर कहे हुए दश धर्मोंके पालनेके लिये बारह भावनाओंका चिंतवन बार बार करना जरूरी है। ये भावनाएं वैराग्यकी वृद्धिके लिये बहुत आवश्यक हैं–

(१) **अनित्य भावना**–शरीर, भोग सामग्री, कुटुम्ब संयोग, जीवन सब जलके बुलेके समान या बिजलीके समान नाशवंत हैं। इनको नाशवन्त मानकर मोह करना मूर्खता है।

(२) **अशरण भावना**--जीवोंको मरणसे व तीव्र कर्मोंके उदयसे कोई बचा नहीं सक्ता ऐसा विचार कर निरन्तर निज आत्मा या अरहंत आदि पांच परमेष्टीकी शरण लेना अशरण भावना है।

(३) **संसार भावना**--संसारी जीव कर्मोंके उदयसे चारों गतियोंमें भ्रमण करते हुए तृष्णाकी दाहको शमन नहीं कर पाते हैं। इस लिये संसारासक्त अज्ञानीको कहीं भी सुख नहीं है। शारीरिक व मानसिक दुःखोंसे संसारी जीव सदा पीड़ित रहते हैं। सुखशांति आत्माके ज्ञानसे ही होसक्ती है।

(४) **एकत्व भावना**--इस जीवको अकेले ही जन्मना, मरना व अपने बांधे हुए पाप पुण्य कर्मोका फल भोगना पड़ता है। यह आत्मा वास्तवमें सर्व कर्मोसे व रागादि भावोंसे रहित है। इस अपने एक स्वभावका मनन करना, अपनेको अपनी उन्नति व अवनतिका जिम्मेदार समझना एकत्व भावना है।

(५) अन्यत्व भावना—यह शरीर पुद्गलमय जड़ है, आत्मा मेरा चेतन है, उससे जब यह जुदा है तब शरीरके सम्बन्धी स्त्री पुत्रादिक धन राज्यादि मेरे कैसे होसक्ते हैं? यह रागादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म भी अन्य हैं। इनका सदा ही परिवर्तन होता रहता है—मैं अन्य हूं।

(६) अशुचि भावना—यह मेरा मानव देह वीर्य व रुधिरसे उत्पन्न मल, मूत्र, कीट रुधिर, अस्थि मांसादिका पिंड महान अपवित्र है। गंधमाला वस्त्रादि सर्व पदार्थोंको मलीन करनेवाला है, आयु कर्मके आधीन क्षणमात्रमें छूट जानेवाला है। इसको नौकरके समान रखकर धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पुरुषार्थ साध लेना चाहिये। इसके मोहमें अंध हो पवित्रात्माको अपवित्र व कैदमें न रखना चाहिये।

(७) आस्रव भावना—मन वचन काय, विषय कषायोंके आधीन होकर जो क्रिया करते हैं उनसे कर्म आकर बंधते हैं, उन कर्मोंके उदयसे जीव भव भवमें भटकता फिरता है। ये कर्मास्रव मिटाने लायक हैं।

(८) संवर भावना—जिन २ कारणोंसे कर्म आकर बंधते हैं उनको हमें रोक देना चाहिये। इसी उपायसे आत्मा अपनेको शुद्ध कर सक्ता है।

(९) निर्जरा भावना—सविपाक निर्जरा सर्व जीवोंके सदा हुआ करती है। उससे आत्मा शुद्ध नहीं होसक्ता। क्योंकि नवीन कर्म फिर बन्ध जाते हैं। संवर पूर्वक अविपाक निर्जरा करनेका उपाय वीतरागता सहित इच्छाको रोक कर तप साधन करना है सो मुझे करना चाहिये।

(१०) **लोक भावना**--यह लोक अनन्त आकाशके मध्य जीवादि छह द्रव्योंसे सर्वत्र भरा है। ये द्रव्य नित्य हैं, आकृतिम हैं। इससे यह लोक भी अकृतिम है। द्रव्योंमें पर्याय होती रहती हैं इससे द्रव्य अनित्य भी हैं, इससे लोक भी अनित्य है। इसका कोई कर्ता हर्ता नहीं है। हमें लोकमें राग न करके आत्म शुद्धि करनी चाहिये।

(११) **वोधिदुर्लभ भावना**--रत्नत्रय धर्मका लाभ बड़ी कठिनतासे होता है। मानव जन्म, दीर्घायु, उत्तम संयोग, सुबुद्धि मिलना ही दुर्लभ है। तिसपर भी सच्चा उपदेश मिलना, तत्वज्ञान मिलना व रत्नत्रयको समझना अतिशय कठिन है। अव मुझे जो इस रत्नत्रय धर्मका लाभ हो गया है, तो इसको भले प्रकार पालकर आत्मोद्धार करना चाहिये।

(१२) **धर्म भावना**--सत्य धर्म आत्माका स्वभाव है, अहिंसामय है। उत्तम क्षमादि दश धर्म रूप है, मुनि व श्रावकके भेदसे दो प्रकार है। धर्म ही प्राणीका सच्चा मित्र है, यही उत्तम सुखको सदा देनेवाला है तथा आत्माको पवित्र करनेवाला है। इसलिये मुझे धर्मका साधन वड़े प्रेमसे करना चाहिये।

(५) २२ परीषह जय--कर्मोंके उदयसे नीचे लिखी २२ परीषहोंमेंसे एक व अनेक कष्ट आन पड़े तो उनको समताभावसे सहना। ध्यानसे व सामायिक भावसे न हटना परीषह जय है।

(१) क्षुधा (२) प्यास (३) शरदी (४) गरमी (५) डांस मच्छर (६) नग्नपना (नग्न रहते हुए लज्जाभाव न आने देना) (७) अरति (८) स्त्री द्वारा मनन डिगाना (९) चलनेकी (१०) वैठनेकी (११)

सोनेकी (१२) गाली सुननेकी (१३) वध या मारे जानेकी (१४) याचना (भोजनका अलाभ होनेपर भी मांगनेका भाव न करना) (१५) अलाभ (में खेद न करना) (१६) रोग (१७) तृण स्पर्श (झाड़ियोंका कठिन स्पर्श) (१८) मल शरीरको मैला देखकर ग्लानि न लाना) (१९) आदर निरादर (२०) ज्ञानका मद (२१) अज्ञान (पर खेद न करना) (२२) अदर्शन (विशेष लाभ तपादिसे न होनेपर श्रद्धान न बिगाड़ना)

(६) चारित्र पांच प्रकार है–(१) सामायिक--समताभावमें लीन रहना (२) छेदोपस्थापना--सामायिकके भावसे चलित होनेपर फिर अपनेको सामायिकमें स्थापित करना (३) परिहारविशुद्धि–जहां प्राणियोंकी हिंसा विशेषरूपसे बचाई जावे। (४) सूक्ष्मसांपराय–दसवें गुणस्थानमें होनेवाला चारित्र (५) यथाख्यात–आदर्श वीतरागता जो ११वें गुणस्थानसे सिद्धों तक पाई जाती है। इस चारित्रसे विशेष कर्मोंका संवर होता है।

(७) बारह प्रकार तप–छः बाहरी तप हैं जो दूसरोंको प्रगट हों। (१) अनशन–रागको दूर करनेके लिये खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चार प्रकार आहार त्यागकर उपवास करना। (२) अवमौदर्य–प्रमादके विजयके लिये भूखसे कम खाना। (३) वृत्तिपरिसंख्यान–भिक्षाको जाते हुए एक दो चार गृह जानेकी व अन्य प्रतिज्ञा देश कालके अनुसार लेना जिससे गृहस्थोंको विशेष आरम्भ न करना पड़े, प्रतिज्ञा पूर्ण होनेपर आहार लेना। (४) रसपरित्याग--घी, दूध, दही, तेल, मीठा, निमक इन छः रसोंमेंसे सबका या कुछका त्याग करना। (५) विविक्त शय्यासन--एकांतमें शयनासन करना।

(६) कायक्लेश--शरीरके सुखियापन मेटनेको कठिन २ स्थानोंपर तप करना।

छः अंतरंग तप हैं (१) प्रायश्चित्त--प्रमादसे लगे हुए दोषोंका दंड गुरुसे लेकर शुद्धि करना। यह दंड नौ प्रकारसे होता है-- (१) आलोचना--गुरुसे अपने दोषको कह देना। (२) प्रतिक्रमण--मेरे दोष मिथ्या हों ऐसी भावना करनी। (३) तदुभय--पहली दोनों बातोंको करना। (४) विवेक--किसी अनुपान रस आदिका त्याग देना। (५) कायोत्सर्ग--नौ णमोकार मंत्रको सत्ताईस श्वासमें पढ़ना ऐसे कायोत्सर्गोंका दंड। (६) तप--उपवासादि। (७) छेद--दीक्षाके दिन कम करके दर्जा घटा देना। (८) परिहार--कुछ कालके लिये संघसे दूर रखना। (९) उपस्थापन--फिरसे दीक्षा देना।

(२) विनय--चार प्रकार--(१) ज्ञानकी विनय, (२) सम्यक्-दर्शनकी विनय, (३) चारित्रकी विनय, (४) उपचार या व्यवहार विनय--दंडवत् प्रणाम आदि, (३) वैय्यावृत्य--दश प्रकारके साधुओंकी सेवा करना, (१) आचार्य, (२) उपाध्याय, (३) तपस्वी, (४) शैक्ष--नए दीक्षित साधु, (५) ग्लान--रोगी, (६) गण--एक परिपाटीके (७) कुल एक दीक्षादाता आचार्यके शिष्य, (८) संघ--मुनि समूह, (९) साधु--दीर्घकालका दीक्षित, (१०) मनोज्ञ--लोकप्रसिद्ध। (४) स्वाध्याय--इसके पांच भेद हैं--(१) वाचना, (२) प्रच्छना--पूछना, (३) अनुप्रेक्षा--बारबार चिन्तवन करना, (४) आम्नाय--शुद्ध पाठ व अर्थ कंठस्थ करना, (५) धर्मोपदेश। (५) व्युत्सर्ग--दो प्रकार--(१) बाह्य उपधि व्युत्सर्ग--बाहरी धन धान्यादि परिग्रहका त्याग। (२) अभ्यंतर उपधि व्युत्सर्ग--अंतरंगके क्रोधादि परिग्रहका त्याग। (६)

ध्यान–एक तरफ उपयोगका या चित्तका रोक देना। यह चार प्रकारका है। (१) आर्त्तध्यान, (२) रौद्रध्यान, (३) धर्मध्यान, (४) शुक्लध्यान। दो पहले ध्यान संसारके बढ़ानेवाले हैं, दो पिछले ध्यान मोक्षके कारण हैं। आर्तध्यान चार प्रकार–दुःखित भावोंको रखना आर्तध्यान है। यह चार कारणोंसे होता है। (१) अनिष्ट वस्तुके संयोग होनेपर, उससे छूटनेकी चिन्तासे। (२) इष्ट वस्तुके वियोग होनेपर, उससे मिलनेकी चिंतासे, (३) रोगादि होनेसे, (४) आगामी भोगाभिलाप करनेसे। रौद्रध्यान दुष्ट भावोंको कहते हैं। दुष्ट भाव चार प्रकारसे होता है। (१) हिंसामें आनन्द माननेसे, (२) असत्यमें आनन्द माननेसे, (३) चोरीमें आनंद माननेसे, (४) परिग्रहमें आनंद माननेसे।

धर्म ध्यान चार प्रकारका है। (१) आज्ञा विचय–जिनागमके अनुसार तत्वोंका विचार करना, (२) अपाय विचय–अपने व दूसरोंके राग, द्वेष, मोहके नाशका उपाय विचारना, (३) विपाक विचय–अपने व दूसरोंके दुःख सुख देखकर कर्मोंकी प्रकृतिको विचारना जिनके उदयसे सुख या दुःख होरहा है, (४) संस्थान विचय–लोकका स्वरूप विचारना कि यह छः द्रव्योंका समुदाय है। मुख्यतासे आत्माका स्वरूप विचारना। इस ध्यानके चार भेद और हैं–पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत।

(१) पिंडस्थ ध्यान–शरीरमें स्थित आत्माके स्वरूपका विचार करना। इसके अभ्यासके लिये पांच धारणाओंके जमानेका अभ्यास करना चाहिये। (१) पृथ्वी धारणा–एक बड़ा भारी निर्मल समुद्र मध्यलोकके समान विचारा जावे, उसके

मध्यमें जंबूद्वीपके समान एक लाख योजनका चौड़ा एक कमल ताए हुए सोनेके समान रंगका व एक हजार पत्र सहित विचारा जावे । कमलके वीचमें कर्णिकाके स्थानमें सुवर्ण रंगका पीला मेरु पर्वत एक लाख योजन ऊंचा विचारा जावे । उस मेरु पर्वतके ऊपर पांडुक वनमें एक पांडुक शिला विचारी जावे । उसपर एक स्फटिकमणिका सिंहासन विचारा जावे । उस सिंहासनपर मैं आत्माको शुद्ध करनेके लिये पद्मासन बैठा हूं ऐसा सोचा जावे । इतना ध्यान वारवार करना पृथ्वी धारणा है ।

(२) अग्नि धारणा—अपनेको वहीं बैठा हुआ विचारा जावे । फिर यह सोचा जावे कि मेरे नाभिकमलके स्थानपर भीतर ऊपरको उठा हुआ सोलह पत्रोंका एक सफेद रंगका कमल है । उसपर पीत रंगके सोलह स्वर लिखे हैं—अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ ॡ, ए ऐ, ओ औ, अं अः वीचमें र्हं अक्षर लिखा है । दूसरा कमल हृदय स्थानपर नाभि कमलके ऊपर आठ पत्रोंका औंधा विचारा जावे । इस कमलको ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका कमल माना जावे । फिर सोचें कि र्हंके रेफसे धूंआ निकला, फिर अग्निकी लौ निकली वह ऊपर उठकर आठ कर्मके कमलको जलाने लगी । कमलके वीचसे अग्निकी लौ फूटकर ऊपर मस्तकपर आगई, फिर उसकी एक लकीर शरीरके एक तरफ दूसरी लकीर शरीरकी दूसरी तरफ आगई नीचे दोनों कोने मिल गए । अग्निमय त्रिकोण शरीरको सब तरफ वेढ़ कर वन गया । इस त्रिकोणमें र र र र र र अक्षरोंको अग्निमय फैले हुए विचारे अर्थात् तीनों कोने अग्निमय र र अक्षरोंसे वने हैं । इस त्रिकोणके वाहरी तीनों कोनोंपर अग्निमय साथिया विचारे व भीतर

तीनों कोनोंपर अग्निमय ॐ र्रं लिखा विचारे । फिर सोचे कि भीतरी अग्निकी ज्वाला कर्मोंको व बाहरी अग्निकी ज्वाला शरीरको जला रही है । जलतेर राख बन रही है । जब सब राख होगई तब अग्नि बुझ गई या पहलेके रेफमें समा गई, जहांसे वह आग उठी थी । इतना अभ्यास करना अग्नि धारणा है ।

(३) वायु धारणा—फिर वहीं बैठा हुआ सोचे कि मेरे चारों तरफ बड़ी प्रचंड पवन चल रही है । पवनका एक गोल मंडल बन गया है । उस मंडलमें कई जगह स्वाय स्वाय लिखा है । यह पवन मंडल कर्मोंकी व शरीरकी रजको उड़ारहा है, आत्मा स्वच्छ होरहा है, ऐसा सोचे।

(४) जलधारणा--फिर वहीं बैठा हुआ यह सोचे कि मेघोंकी घटाएं आगईं, बिजली कडकने लगी, बहुत जोरसे पानी बरसने लगा, पानीका अपने ऊपर एक अर्ध चंद्राकार मंडल बन गया जिसपर प प प प कई जगह लिखा है । यह पानीकी धाराएं आत्माके ऊपर लगी हुई रजको धोकर आत्माको साफ कर रही हैं ऐसा सोचे ।

(५) तत्वरूपवती धारणा--फिर वही सोचे कि मेरा आत्मा सिद्ध सम शुद्ध है, अब इसमें न तो कर्म हैं न शरीर है। ऐसा अपनेको पुरुषाकार शुद्ध विचारके उसीमें जम जाना पिंडस्थ ध्यान है।

इस ध्यानका अभ्यास साधकके लिये बहुत ही आवश्यक है।

(२) पदस्थ ध्यान--मंत्रपदोंके द्वारा अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुका तथा आत्माका स्वरूप विचारना पदस्थ ध्यान है । इसके बहुतसे भेद हैं । ॐ या ह्रीं मंत्रको नासिकाके अग्र भागमें या दोनों भौंहोंके मध्यमें या हृदयकमलके ऊपर चमकता हुआ विचार कर ध्यान करे । कभी कभी पांच परमेष्ठीके गुण विचारे । कभी कभी

अपने आत्माको पांच परमेष्ठीरूप विचारे। हृदयस्थानपर आठ पत्तोंका कमल विचारे। पांच पत्तोंपर क्रमसे णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं लिखा विचारे, शेष तीन पत्तोंपर सम्यक्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः लिखा विचारे। फिर एक एक पत्तेपर लिखे हुए मंत्रका ध्यान करे व उसके अर्थका मनन करे।

(३) **रूपस्थ ध्यान**--अरहंत भगवानका स्वरूप विचारे कि वे समवशरणमें बारह सभाओंके मध्यमें ध्यानस्थ विराजमान हैं। वे अनंतचतुष्टय सहित हैं, परमवीतराग हैं। अथवा किसी जिनेन्द्रकी ध्यानमय मूर्तिको विचार कर उसका ध्यान करे, फिर उसके द्वारा शुद्धात्मापर मनको लेजावे।

(४) **रूपातीत ध्यान**--एदकमसे पुरुषाकार अमूर्तीक सिद्ध शुद्ध शुद्धात्माका ध्यान करना रूपातीत ध्यान है। धर्म ध्यान चौथे गुणस्थानसे लेकर सातवें तक होता है। आठवेंसे शुक्लध्यान शुरू होता है। इसके भी चार भेद हैं। पहला शुक्लध्यान ग्यारहवें तक व बारहवेंके प्रारम्भमें, दूसरा शुक्लध्यान बारहवेमें, तीसरा तेरहवेके अंतमें, चौथा शुक्लध्यान चौदहवें गुणस्थानमें होता है।

(१) **पृथक्त्व वितर्क वीचार**--पहला शुक्लध्यान है। यहां अबुद्धिपूर्वक तीन प्रकारका परिवर्तन होता है। (१) मन वचन काय-मेंसे किसी योगका (२) एक शब्दसे दूसरे शब्दका (३) एक ध्येय पदार्थसे दूसरे ध्येय पदार्थका। जैसे आत्म द्रव्यसे आत्माके किसी गुण या पर्यायका।

(२) **एकत्ववितर्क अवीचार**--किसी एक योगके द्वारा किसी

एक शब्दके द्वारा किसी एक ध्येय पदार्थपर उपयोगका रुक जाना।

(३) सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति—जब काययोग बहुत सूक्ष्मतासे चलता है। जब यह तीसरा शुक्लध्यान होता है।

(४) व्युपरत क्रियानिवर्ति--इस चौथे शुक्लध्यानमें योगोंका हलनचलन बन्द है। इसका काल इतना कम है जितनी देरमें अ, इ, उ, ऋ, ऌ इन पांच लघु अक्षरोंका उच्चारण किया जासके। बस इस शुक्लध्यानके प्रतापसे यह जीव सर्व कर्मोंसे व शरीरसे छूटकर मुक्त व सिद्ध होजाता है।

मोक्षतत्व--जब आस्रवके कारणभाव मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय तथा योग धीरे धीरे मिट जाते हैं तब सयोगकेवली गुणस्थान तक कर्मोंका आना होता है। अयोग गुणस्थानमें कर्म नहीं आते हैं। उधर शुक्लध्यानके प्रतापसे कर्मोंकी निर्जरा होती जाती है, बस यह आत्मा परम शुद्ध होकर मुक्त होजाता है तब इसको सिद्ध कहते हैं।

सिद्ध भगवानके आत्माका आकार अंतिम शरीरके प्रमाण ध्यानाकार रहता है। नख, केशोंमें आत्माके प्रदेश नहीं हैं, इसलिये ही आकार सिद्ध अवस्थामें कम होजाता है। जैसे अग्निकी लौ ऊपरको जाती है वैसे सिद्धका आत्मा ऊपरको लोकके अंततक चला जाता है। आगे धर्मास्तिकाय न होनेसे नहीं जाता है। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

नवमा अध्याय ।

श्रावकोंका आचार ।

शिक्षक—श्रावकोंका आचार यदि आप सुनना चाहते हैं तो ध्यानपूर्वक सुनें। जैन सिद्धान्तमें पांच व्रत मुख्य हैं, इन्हींको पूर्णपने जैन साधु पालते हैं व इन्हींको अपनी शक्ति अनुसार थोड़ेरूपसे श्रावक पालते हैं।

वे पांच व्रत हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। इन व्रतोंकी पांच पांच भावनाएं हैं उनको विचारते हुए व्रतोंका पालन होता है। साधु इन भावनाओंपर पूर्ण ध्यान रखते हैं तब श्रावक यथाशक्ति अपना ध्यान जमाते हैं।

अहिंसाव्रतकी पांच भावनाएं—१ वचनगुप्ति--वचनोंको सम्हालकर कहना जिससे हिंसा न हो। २ मनोगुप्ति--मनमें किसीका बुरा न विचारना। ३ इर्यासमिति--भूमि देखकर चलना। ४ आदाननिक्षेपण समिति--वस्तुको देखकर उठाना रखना। ५ आलोकित पान भोजन--देखकर भोजन करना व पानी पीना व भोजनपानका प्रबन्ध करना। क्योंकि हिंसाके कारण मन वचन काय हैं, इसलिये इनकी सम्हाल रखना जरूरी है।

सत्य व्रतकी पांच भावनाएं—१ क्रोध त्याग—क्रोधके न करनेकी सम्हाल, २ लोभ त्याग--लोभ न करनेका विचार, ३ भीरुत्व त्याग—भय न करनेका साहस, ४ हास्य त्याग—हंसी मस्करीका त्याग, ५ अनुवीचि भाषण--जिन आगमके अनुकूल वचन

कहना। क्योंकि क्रोध, लोभ, भय व हास्यके वशीभूत होकर झूठ बोला जाता है, इससे इनके वेगसे बचना और यह ध्यानमें रखना उचित है कि कोई वचन जैन सिद्धांतके प्रतिकूल न बोला जावे।

अचौर्य व्रतकी ५ भावनाएं-१ शून्यागार-पर्वत, गुफा वनादि शून्य स्थानमें रहना, २ विमोचितावास-दूसरोंसे छोड़े हुए ऊजड़ मकानमें रहना, ३ परोपरोधाकरण-दूसरोंको आते हुए मना न करना, या जहां दूसरे मना करें वहां न रहना, ४ भैक्षशुद्धि-शास्त्रोंके अनुसार भिक्षा या भोजन करना, अतिचार लगाकर भोजन न करना, ५ सद्धर्माविसंवाद--अपने साधर्मी जीवोंके साथ मेरा तेरा करके झगड़ा न करना। धार्मिक पदार्थको अपना न मान बैठना, किसी तरह दूसरेके द्वारा चोरीका दोष न लगे इस बातकी सम्हाल इन भावनाओंसे अच्छी तरह होजाती है।

ब्रह्मचर्य व्रतकी पांच भावनाएं--१--स्त्री रागकथा श्रवण त्याग-स्त्रियोंसे राग बढ़ानेवाली कथा वार्ता करनेका व सुननेका त्याग। २--तन्मनोहरांग निरीक्षण त्याग--उन स्त्रियोंके मनोहर अंगोंके देखनेका त्याग। ३-पूर्वरतानुस्मरण त्याग--पहले भोगोंको याद करनेका त्याग। ४--वृष्येष्टरस त्याग--कामोद्दीपक पुष्ट रस खानेका त्याग। ५--स्वशरीर संस्कार त्याग--अपने शरीरको शृंगारित करनेका त्याग। जो स्त्री व पुरुष पूर्ण ब्रह्मचर्य पालें उनको इन बातोंकी सम्हाल बहुत जरूरी है। जबतक निमित्तोंसे बचाया न जावगा ब्रह्मचर्यका पालना दुर्लभ है। श्रावकोंको स्वस्त्रीके सिवाय परस्त्रियोंके सम्बन्धमें इन भावनाओंको विचारना चाहिये। भोजनपान सादा शुद्ध संयममें रखनेवाला पौष्टिक करना चाहिये तथा रस [illegible] मर्यादित व

शीलभाव वर्द्धक रखना चाहिये। भेष व वस्त्र व शरीरकी चेष्टाका बड़ा भारी असर पड़ता है।

अपरिग्रहव्रतकी पांच भावनाएं--स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा कर्णके ग्रहणमें आनेवाले विषय यदि मनोज्ञ हों तो राग नहीं करना व अमनोज्ञ हों तो द्वेष नहीं करना चाहिये। संतोषके साथ जो आवश्यक योग्य वस्तु मिले उसको भोग लेना चाहिये। आकुलित न होना चाहिये।

शिष्य--इन भावनाओंको हमने समझ लिया, बहुत जरूरी हैं। कृपाकर अब इन व्रतोंका स्वरूप बता दीजिये।

शिक्षक--इनका स्वरूप संक्षेपमें इस भांति है:—

कषाय सहित होकर अपने या दूसरोंके भाव व द्रव्य प्राणोंका घात करना व उनको कष्ट देना हिंसा है। हिंसाका न होना अहिंसा है। आत्माका स्वभाव ज्ञान, शांतभाव, क्षमा आदि भाव प्राण हैं। जबकि द्रव्यप्राण दस हैं—एकेन्द्रियके चार, द्वेन्द्रियके छः, तेंद्रियके सात, चौंद्रियके आठ, असैनी पंचेंद्रियके नौ, सैनी पंचेंद्रियके दश। इनका वर्णन जीवतत्वके अध्यायमें कर चुके हैं।

जब कभी क्रोधादि कषाय होता है तब पहले उसीका ही बिगाड़ होता है, उसकी आत्माके ज्ञान शांति आदि भावोंका नाश होता है तथा उसके द्रव्य प्राणोंको भी निर्बलता प्राप्त होती है। फिर जब वह दूसरोंपर दुर्वचन फेंके व प्रहार करे तो दूसरोंके भी भाव व द्रव्यप्राणका घात होसक्ता है। यदि वह शिष्य प्राणी धर्मात्मा है व गाली आदिका ख्याल नहीं करता है तो इसका भाव कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। यदि वह मारा पीटा जायगा तो द्रव्य प्राण बिग-

देंगे। तथापि जिसने दूसरोंको कष्ट देनेका विचार किया व यत्न किया वह तो हिंसाका अपराधी होगया चाहे दूसरा कष्ट पावे या न पावे।

जितना अधिक कषायभाव होगा, उतना अधिक वह प्राणी हिंसाका अपराधी होगा। जितना अधिक प्राणधारी जीव होता है, उतना अधिक उसके घात करनेमें व कष्ट देनेमें कषाय करना पड़ता है। साधारण नियम यही है जैसे एक मानवको मारनेके लिये एक बकरेके मारनेकी अपेक्षा अधिक कषाय हो जाता है इसीसे मानव घातका पाप बकरेके घातके पापसे अधिक है। एकेंद्रिय जीवोंके घातमें द्वेंद्रियादिके घातकी अपेक्षा कम कषाय होनेसे कम पाप है। बन्ध कषायकी मात्राके अनुसार अधिक या कम पड़ेगा। जो सर्व रागादि भावोंका त्यागी होगा वह भावमें अहिंसाका पालनेवाला होगा। उससे द्रव्य प्राणोंकी भी हिंसा न होगी। अतएव वही पूर्ण अहिंसक होगा। हिंसासे बचनेके लिये हमें रागादि भावोंको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। भाव हिंसा ही द्रव्यहिंसाकी कारण है। कषाय सहित होकरके प्राणियोंको पीड़ाकारी अशुभ वचनोंको कहना असत्य है। असत्यका त्याग सत्य व्रत है।

कषाय सहित होकरके विना दी हुई वस्तुका लेना चोरी है। चोरीका त्याग अचौर्य व्रत है। कषाय सहित होकरके राग भावसे स्त्री व पुरुषका स्पर्श सो मैथुन है। मैथुनका त्याग ब्रह्मचर्य है। जगतके चेतन व अचेतन पदार्थोंमें मूर्छा या ममत्व भाव रखना परिग्रह है। परिग्रहसे बचनेके लिये परिग्रहके निमित्तभूत बाहरी क्षेत्र मकान स्त्री पुत्रादिका त्याग करना अपरिग्रह व्रत है। इन पांच व्रतोंको साधुगण पूर्णपने पालते हैं।

शिष्य—कृपा करके श्रावकोंको कितना अंश इन व्रतोंको कमसे कम पालना चाहिये सो बताइये।

शिक्षक—मैं श्रावकोंकी अपेक्षा इन पांच अणुव्रतोंको व उनके रक्षक सात शीलोंको बताता हूं, आप समझ लें।

पांच अणुव्रत—एक साधारण श्रावक अहिंसा व्रतकी भावना रखता हुआ प्रथम संकल्पी हिंसाको मन वचन कायसे त्यागता है। आरम्भी हिंसाको त्यागका प्रयत्न अपनी अंतरंग इच्छाके अनुसार करता है जिससे लौकिक व्यवहारमें हानि न आवे उस तरह आरंभादि कार्य गृहस्थी करता है।

संकल्पी हिंसा—वह है जो हिंसाके संकल्प या इरादेसे कीजावे और वह व्यर्थ ही हो। जैसे धर्मके नामसे पशुओंकी बलि चढ़ाना, शिकार खेलके मृगादिको मारना, मांसके लिये पशु घात करना या कराना, मौजशौकके लिये हिंसा कराना।

आरंभी हिंसा—प्रयोजन भूत हिंसा है। उसके तीन भेद हैं—

(१) **उद्यमी हिंसा**—जो गृहस्थ योग्य छः आजीविकाके साधनोंमें की जाती है—(१) असिकर्म—सिपाहीका काम, (२) मसिकर्म—लिखनेका काम, (३) कृषिकर्म—खेती, (४) वाणिज्य—व्यापार, (५) शिल्प—नाना प्रकारके उद्योग, (६) विद्याकर्म—गाना, बजाना, चित्रकला आदि।

(२) **गृहारंभी हिंसा**—जो गृहके कामकाजमें, भोजनपानके प्रबंधमें, मकान बनानेमें, कुआ खुदानेमें, बाग लगाने आदिमें कीजाती है।

(३) **विरोधी हिंसा**—कोई अन्यायी या दुष्ट पुरुष अपना सामना करे, अपनी जान लेना चाहे, अपना माल छीनना चाहे,

अपने कुटुम्बका नाश करना चाहे, देशपर आक्रमण करके साधु पुरुषों व सज्जनोंको कष्ट देना चाहे तो उससे अपनी रक्षार्थ, देश रक्षार्थ, माल जायदादके रक्षार्थ प्रयत्न करना। यदि कोई प्रयत्न न चल सके तो शस्त्र प्रयोगद्वारा उसको हटाना। इसमें जो प्राणियोंका घात होगा वह विरोधी हिंसा है।

एक साधारण श्रावकको संकल्पी हिंसाका त्याग होता है। आरंभी हिंसाका त्याग नहीं होता है। यही अहिंसा अणुव्रत है।

राज्य या पंच दंड योग्य असत्य नहीं कहना। कर्कश, कठोर, चुगलीके वचन न कहना, क्रोध, शोक, वैर, कलह करानेवाले वचन न कहना, जो वस्तु हो उसको नहीं है ऐसा न कहना, जो वस्तु नहीं है उसको है ऐसा न कहना। वस्तु कुछ है कहना कुछ है ऐसा नहीं कहना। ऐसा वचन भी न कहना जिससे दूसरोंके प्राण चले जावें जैसे–किसी शिकारीने जानवरोंका हाल पूछा कि अमुक जंगलमें मृगादि हैं या नहीं? आप जानते हैं तो भी नहीं बताना क्योंकि ऐसा सत्य वृथा ही प्राणोंका घातक होगा। जिससे अपना व दूसरोंका हित हो ऐसा वचन बहुत समझाकर कहना सत्य अणुव्रत है। कभी भी शास्त्रके विरुद्ध वचन न कहना, जिससे अपना विश्वास जगतमें बढ़े ऐसा वचन कहना। हितमित प्रिय वचन कहना। थोड़े शब्दोंमें बहुत मतलब प्रगट करनेवाला हितकारी मीठा वचन कहना सत्य अणुव्रत है।

राज्य या पंच दंड योग्य चोरी न करना। दूसरोंकी वस्तु भूली, पड़ी हुई, गिरी हुई नहीं उठाना। विश्वासघात करके किसीका धन न छीनना। न्यायसे द्रव्य कमाना। अन्यायसे द्रव्य

कमानेका त्याग करना अचौर्य अणुव्रत है। जो वस्तुएं सबके काममें आसकती हैं व जिसके लिये राज्यकी व अन्य किसीकी मनाई नहीं है उसको विना दिये यह श्रावक लेसक्ता है। जैसे नदी, कूपका पानी, मिट्टी, जंगलकी लकड़ी, वनके फलादि। यदि मनाई हो तो विना आज्ञाके न लेनी चाहिये। यह श्रावक न्यायके ऊपर चल करके परिणामोंको चोरीके भावसे बचाएगा।

अपनी विवाहिता स्त्रीमें संतोष रखके परस्त्री या वेश्या आदिका त्याग करना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। अपनी स्त्रीमें भी नियमित काम भोग करना जिससे शरीर निर्बल न हो, तथा धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थके साधनमें विघ्न न पड़े। बलवान योग्य सन्तानके भावसे स्त्री प्रसंग करना। मित्रवत् स्त्रीके साथ रहकर दोनों मिलकर धर्म साधन व परोपकार करना, एक दूसरेकी उन्नति चाहना व परस्पर सहाई होना।

आजन्मके लिये तृष्णाके घटानेके लिये अपनी भावनाके अनुसार सम्पत्तिका नियम कर लेना कि इतनी संपत्ति होजानेपर हम अधिक नहीं कमावेंगे—उसीके भीतर भीतर ही रखेंगे। जैसे—कोई दस हजार, पचास हजार, एक लाख, दस लाख, एक करोड़, दस करोड़ या अधिकका प्रमाण करले। फिर इस संपत्तिको तफसीलवार नीचे लिखे १० प्रकार परिग्रहका प्रमाण करके बांट लेवें।

१ क्षेत्र—खेत कितना, २ वास्तु—मकान कितने, ३ हिरण्य—चांदी कितनी या कितना रुपया, ४ सुवर्ण—सोना जवाहरात, ५ धन—गाय, भैंस, घोड़े आदि, ६ धान्य—अनाज इतने मनसे अधिक नहीं या एक महीनेके खर्चेके लायक, ७ दासी—इतनीसे अधिक

नौकर न रक्खूंगा, ८. दास-इतने दाससे अधिक न रक्खूंगा, ९. कुप्य-कपड़े इतने जोड़से अधिक न रक्खूंगा, १० भांड-वर्तन इतने वजनके व इतने जोड़से अधिक न रक्खूंगा। जितनेसे काम चल सके उतना रखले, शेषका त्याग करदे। परिग्रह प्रमाण संतोष भावको बढ़ानेवाला है व अधिक हिंसादि पापोंसे बचानेवाला है।

चक्रवर्ती, राजा, धनिक, सेठ अपनी२ योग्यतानुसार परिग्रहका प्रमाण कर सक्ते हैं।

तीन गुणव्रत-जिनसे अणुव्रतोंका मूल्य बढ़ जावे उनको गुणव्रत कहते हैं। जैसे ५ को ५ से गुणनेपर २५ होजाते हैं।

(१) **दिग्विरति**-पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर चार दिशाओंमें चार विदिशाओं या कोनोंमें या ऊपर व नीचे दश दिशाओंमें जहांतक जानेका प्रयोजन मालूम होता हो वहांतकके लिये जन्मभरके लिये प्रमाण करले कि इतनी दूरसे अधिक लौकिक कामके लिये जाऊंगा नहीं व इससे बाहरसे माल मंगाऊंगा नहीं व बाहर भेजना नहीं। इसप्रकार हजारों कोसका भी प्रमाण कर सक्ता है। यदि संतोष हो तो बहुत थोड़ा क्षेत्र रख सक्ता है। किसी नदी, पर्वत, समुद्रकी हदमें प्रमाण कर सक्ता है। इस व्रतसे पांच व्रतोंका मूल्य इसलिये बढ़ जाता है कि वह मर्यादाके भीतर ही प्रयोजन भूत आरम्भ करेगा, मर्यादाके बाहर बिलकुल आरम्भ किया न करेगा।

(२) **देशविरति**-एक दिन, सप्ताह, पक्ष, मास आदिकी मर्यादाके लिये जन्मपर्यंत किये हुए क्षेत्रके प्रमाणमेंसे घटाकर प्रयोजनभूत क्षेत्र आरम्भके लिये रख लेना, शेष क्षेत्रको इतने कालके लिये त्याग देना देशविरति है। इससे वह और भी व्रतोंका मूल्य बढ़ा लेता है। कभी इस श्रावकको अपने ग्रामसे बाहर कुछ काम

नहीं रहता है तब वह किसी दिन ग्रामकी हद्भरको ही रख लेता है, बाकीका त्याग कर लेता है। कभी एक मुहल्ले व एक बाजारका ही नियम कर लेता है। कभी एक घरमें ही विश्राम करनेका नियम कर लेता है। इच्छाओंके रोकनेका यह बढ़िया साधन है।

(३) अनर्थदण्ड विरति–मर्यादाके भीतर भी प्रयोजनभूत आरम्भ करना बे मतलब आरम्भका त्याग देना अनर्थदण्ड विरति है। इससे व्रतोंका मूल्य और बढ़ जाता है। वह बेमतलब पापोंसे बच जाता है। अनर्थदण्डके पांच भेद हैं—

(१) अपध्यान–दूसरोंकी हार जीत, वध, बन्धन, अंगछेद, धन हरण आदि विचारना, (२) पापोपदेश–जिससे पशुओंको दुःख हो ऐसे व्यापारका व हिंसाकारी आरम्भका दूसरेको उपदेश देना कि जिससे वह पापमें लग जावे। (३) प्रमादचर्य्या–प्रयोजन विना आलस्यसे वृक्ष छेदना, पत्ते तोड़ना, फल फूल नोचना, जमीन खोदना, पानी फेंकना, आग जलाना, हवा करना, व अन्य कोई काम करना। (४) हिंसा दान–हिंसाकारी विष, खड्ग, रस्सी, लकड़ी, अग्नि आदि मांगे देना, (५) दुःश्रुति–हिंसामें प्रवर्तानेवाली, रागभाव बढ़ानेवाली कथाओंको सुनना पढ़ना बनाना। इन पांचोंसे कुछ अपना मतलब नहीं होता है किन्तु वृथा ही संकल्प किये हुए भावोंसे व वचन व कायकी प्रवृत्तिसे पाप कर्मोंका बन्ध होजाना है। एक श्रावक इन वृथाके पापोंको त्याग देता है क्योंकि वह ऐसा धर्म व्यापारी है जिससे अपनी वृथा हानि न उठाकर वह पुण्य कर्मोंका संचय किया करता है।

(३) चार शिक्षाव्रत–इन व्रतोंके पालनेसे मुनि धर्मकी शिक्षा

मिलती है। साधु अवस्थामें जिन कार्योंको विशेष करना होता है उनका अभ्यास करके शिक्षा लेना शिक्षाव्रत है।

(१)-**सामायिक**-समय आत्माको कहते हैं। आत्मा सम्बंधी वीतराग विज्ञानमय शुद्ध भावोंकी या समता भावोंकी प्राप्ति करना सामायिक है। सामायिक ध्यानका साधन है, बहुत ही उपयोगी है, मनकी शुद्धिका उपाय है, पापोंको क्षय करनेवाला है।

सामायिककी विधि-प्रातःकाल, मध्यान्ह काल, सायंकाल तीन समय छः छः घड़ी काल सामायिकका है। मध्यम चार घड़ी जघन्य दो घड़ी है। एक घड़ी २४ मिनटकी होती है। जितनी देर सामायिक करनी हो उसकी आधी देर पहले व आधी देर पीछे लेवे। जैसे-४८ मिनिट सामायिक करनी हो तो सूर्योदयसे २४ मिनट पहलेसे २४ मिनट सूर्योदय तक करे। यदि कार्यवश न बन सके तो ७२ मिनट पहलेसे लेकर ७२ मिनट पीछेतक १४४ मिनटके बीचमें कभी भी दो घड़ी या ४८ मिनट सामायिक करले। एकांत स्थानमें बैठे, जहां मनको डिगानेवाले शब्द व काम न हों। चटाई, पाटा, पत्थरकी शिलापर करे। मनको उतनी देरके लिये सर्व कामोंसे रोकले। शरीरपर जितने कम वस्त्र हों उतना ठीक है।

पूर्व या उत्तरकी तरफ मुंह करके कायोत्सर्ग खड़ा होकर हाथ लटकाके नौदफे णमोकार मंत्र पढ़कर दंडवत करे। तब प्रतिज्ञा करले कि जबतक सामायिक करता हूं जो कुछ मेरे पास है व चारों तरफ थोड़ी जगहके और सब कुछ त्याग है। फिर उसी दिशाकी तरफ खड़ा हो नौदफे या तीन दफे णमोकार मंत्र पढ़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करे। जोड़े हुए हाथोंको बाएंसे दाहने घुमानेको आवर्त कहते हैं व जोड़े हुए हाथोंपर

मस्तक झुकाकर लगानेको शिरोनति कहते हैं। फिर खड़े २ दाहने हाथकी तरफ मुड़ जावे। इधर भी नौदफे णमोकार मंत्र पढ़कर तीन आवर्त व एक शिरोनति करे। ऐसा ही दूसरी दो दिशाओंमें करके पूर्व या उत्तरको मुख करके पद्मासन या अर्द्धपद्मासन बैठ जावे। पहले कोई सामायिक पाठ पढ़े* फिर जप करे, फिर कुछ ध्यान करे। अंतमें फिर खड़ा होकर नौदफे णमोकार मंत्र पढ़कर दंडवत करके सामायिक पूर्ण करे। चारों तरफ घूमकर तीन आवर्त व एक शिरोनति करनेका प्रयोजन यह है कि हरएक दिशामें जो तीर्थ स्थान मंदिर मुनि आदि हों उनको नमन किया जावे। अभ्यास करनेवाला एक या दो या तीन दफे व जितने समयके लिये कर सके सामायिक करे। उस समय सर्व प्राणी मात्रपर समता भाव रक्खे, अपने दोषका पछतावा करे व क्षमाभाव रखे। इस गाथाका भाव विचारे—

> "खम्मामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
> मित्ती मे सव्व भूदेसु वैरं मज्झं न केणवि॥"

मैं सर्व जीवोंपर क्षमा करता हूं, सर्व जीव मुझपर क्षमा करें। मेरी मैत्री सर्व प्राणियोंमें हो। मेरा वैर किसीसे भी न रहे।

(२) **प्रोषधोपवास**—प्रोषध पर्वको कहते हैं। महीनेमें चार पर्व दिन प्रसिद्ध हैं—दो अष्टमी व दो चौदस। इन चार दिनोंमें चार प्रकार आहार छोड़कर उपवास करना चाहिये। अपना समय धर्मध्यानमें बिताना चाहिये। धर्मस्थानमें बैठकर समय सामायिक,

---

*सामायिक पाठ श्री अमितगति आचार्य कृत भाषा छन्द व भाषा टीका सहित ~)॥ में दि० जैन पुस्तकालय—सूरतसे मिलता है।

स्वाध्याय, धर्मचर्चा, पूजनादिमें विताना चाहिये। उपवास करनेसे शरीर शुद्ध होता है, रोगोंके कारण मिटते हैं, वचन व मन शुद्ध होता है, आत्मा पवित्र होता है। उत्कृष्ट प्रोषध सप्तमी व नौमीको एकासन, अष्टमीको उपवास करे, १६ पहर या ४८ घंटे धर्मध्यानमें लगावे। मध्यम प्रोषध सप्तमीकी संध्यासे नौमीके प्रातःकालतक १२ पहर धर्मध्यानमें गमावे। जघन्य प्रोषध अष्टमीके ८ पहर धर्मध्यानमें वितावे। भोजन त्याग तो सप्तमीको भी रहेगा। दूसरी विधि मध्यम या जघन्यकी यह है कि १६ पहर धर्मसाधन करे। आवश्यक्तानुसार जल लेवे यह मध्यम है। जलके सिवाय अष्टमीको एक भुक्त भी करले, परन्तु १६ पहर धर्मध्यान करे। अभ्यास करनेवाला अनुपवास भी कर सक्ता है अर्थात् १२ पहरके उपवासमें बीचमें एक दफे जल भी लेवे अथवा १२ पहरके मध्यमें एकासन कर सक्ता है। शक्तिके अनुसार इस शिक्षाव्रतको पालना चाहिये।

(३) भोगोपभोग परिमाण—भोग और उपभोगके पदार्थोंका आवश्यक्तानुसार रोज सबेरे २४ घंटेके लिये प्रमाण कर लेना। जो एक ही दफे काममें आसके वह भोग है। जैसे भोजन, सुगंध। जो बार २ काममें आसके सो उपभोग है। पांचों इन्द्रियोंकी इच्छाओंको वश करनेके लिये अनावश्यक भोग और उपभोग पदार्थोंका त्याग करना। नीचे प्रकार सत्रह १७ नियम लेनेसे यह शिक्षाव्रत भले प्रकार पल जाता है—

१ भोजन—भोजन कै दफे करूंगा, २ पान—भोजनके सिवाय पानी कै दफे पीऊंगा, ३ षट्‌रस—दूध, दही, घी, तेल, मिष्ट, लवण इनमेंसे अमुक २ रसोंका त्याग करता हूं, ४ कुंकुमादि विलेपन—चंदन तेलादि लगाऊंगा या नहीं, ५ पुष्प—फूल सूंघूंगा या नहीं,

६ ताम्बूल—खाऊंगा या नहीं या कितने खाऊँगा, ७ लौकिक गाना बजाना करूंगा या सूनूंगा या नहीं, या कै दफे। ८ लौकिक नाच नाटक देखूंगा या नहीं। ९. ब्रह्मचर्य पालूंगा या नहीं? १० स्नान कै दफे करूंगा? ११ आभूषण कितने पहनूंगा? १२ वस्त्र कितने जोड़ काममें लूंगा? १४ वाहनपर चढ़ूंगा या नहीं या कौन२पर चढ़ूंगा? १४ कितने प्रकारके आसनोंपर बैठूंगा? १५ कितने प्रकारकी शय्यापर सोऊंगा? १६ हर फल तरकारी इतनी खाऊंगा। १७ कुल खानपानकी इतनी वस्तु लूंगा जैसे दाल, चावल, कढ़ी आदि।

इस शिक्षाव्रतके पालनेवालेको किन्हीं वस्तुओंको यम रूप जन्मभरके लिये त्याग करदेना चाहिये। जैसे—मांस, मदिरा, मधुको व त्रस सहित फलोंको। जैसे—बड फल, पीपल फल, गूलर, पाकर, अंजीर, गोभी, केतकी आदिके फूलोंको व आलू घुईयां आदि कंदमूलोंको। फूलोंमें त्रस जंतु भी बैठे रहते हैं। तथा कंदमूल या फूलोंमें साधारण कायका दोष आता है। एक शरीरके स्वामी अनेक एकेंद्रिय जीव हों, उनको साधारण काय कहते हैं। मक्खनको न खाकर उसको ४८ मिनटके भीतर गर्म करके घी बना लेवे।

(४) **अतिथि संविभाग**—जो संयमको पालते हुए भ्रमण करते हैं उनको अतिथि या साधु कहते हैं। उनको अपने ही लिये बनाए हुये आहारमेंसे विभाग करके देना। साधुको नौ प्रकार भक्ति करके दान देवे।

१—प्रतिग्रह—यहां आहारपान शुद्ध है, ऐसा तीनवार कहकर साधुको भीतर लेजाना। २ उच्चस्थान—विराजमान करना, ३ पाद-प्रक्षालन करना, ४ पूजन करना, ५. तीन प्रदक्षिणा दे नम-

स्कार करना, ६ वचन शुद्धि रखना, ७ काय शुद्धि रखना, ८ मनः शुद्धि रखना, ९ आहार शुद्ध देना।

मुनि उत्तम पात्र है। श्रावक मध्यम पात्र है। व्रत रहित श्रद्धावान जैनी जघन्य पात्र है। उनको भक्तिपूर्वक आहार, औषधि, आश्रय व शास्त्र या विद्या दान देना पात्र दान है। दुःखित भुखित किसी भी मानव या पशुको दयाभावसे आहारादि देना करुणादान है। दान देकर फिर भोजन करना यह चौथा शिक्षाव्रत है।

श्रावकोंको सच्चा श्रद्धान या सम्यक्दर्शन रखते हुए पांच अणुव्रतोंको, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे सात शीलोंके साथ बारह व्रत पालने चाहिये।

सल्लेखना—बारह व्रतोंके सिवाय यह भावना भानी चाहिये कि हमारा मरण शांतिपूर्वक हो। जब मरणकी संभावना हो तब धीरे२ आहारपान छोड़े व ध्यान व तत्वविचारमें शांतभावसे रहकर प्राण छोड़े। प्राणोंको जोखम जब कभी दिखती हो तब समाधि मरणके साथ प्राण त्यागे, धर्मध्यानसे मरे, जिससे भविष्यकी गति अच्छी हो।

एक श्रावक सम्यग्दर्शनके साथ बारहव्रत और सल्लेखना व्रतको पालता है। इन चौदह बातोंमें पांच पांच अतीचार या दोष प्रमाद या कषायके उदयसे लग जाना संभव है। इन दोषोंको जानकर इनसे बचनेका उद्यम करना चाहिये।

(१) **सम्यग्दर्शनके पांच अतीचार**—(१) शंका—किसी तत्वमें कभी शंका होजावे, (२) कांक्षा—भोगोंकी इच्छा होजावे, (३) विचिकित्सा—दुःखी रोगी दलिद्रीको देखकर घृणा पैदा होजावे,

(४) अन्यदृष्टि प्रशंसा—अज्ञानी अश्रद्धालुकी अज्ञानमई धर्मकार्यकी मनसे सराहना करे, (५) अन्यदृष्टि संस्तव—अज्ञानी व अश्रद्धालुकी अज्ञानमई धर्मक्रियाकी वचनसे प्रशंसा करे।

(२) **अहिंसा अणुव्रतके पांच अतीचार**—कषायके वश (१) बंध—किसीको बन्धनमें डालदे, (२) वध—लाठी चाबुकादिसे मारे, (३) छेद—कान नाक अंगोपांग छेद डाले, (४) अतिभारारोपण—न्यायको उल्लंघन करके अधिक भार लाद दे, (५) अन्नपाननिरोध—अपने आधीन मानव व पशुओंको समयपर भोजनपान न दे व कम दे।

दयावानको उचित है कि वह क्रोध, मान, माया, लोभके वशीभूत होकर ऐसा काम प्राण पीड़ाकारी न करे। दण्ड व सुधारके अभिप्रायसे वध बन्धन आदि अतीचार न होगा।

(३) **सत्य अणुव्रतके पांच अतीचार**—(१) मिथ्योपदेश—धर्मसाधन आदिमें मिथ्या उपदेश देना, (२) रहोभ्याख्यान—स्त्री पुरुषकी एकांतमें की हुई क्रियाको प्रकाश कर देना, (३) कूटलेखक्रिया—मायाचारसे झूठा लेख लिखना, (४) न्यासापहार—अनामतका रुपया कोई भूलसे कम मांगे तो उसे कम देदेना, (५) साकार मंत्रभेद—किन्हींकी एकांतकी सलाहको उनके मुख आदिकी चेष्टासे जानकर प्रगट कर देना।

(४) **अचौर्य अणुव्रतके पांच अतीचार**—(१) स्तेनप्रयोग—चोरीका उपाय बताना। (२) तदाहृतादान—चोरीका लाया हुआ माल लेलेना। (३) विरुद्ध राज्यातिक्रम—विरुद्ध राज्य या राज्यमें अप्रबन्ध होनेपर न्यायको उल्लंघन करके लेनदेन करना, अल्प मूल्यकी चीज बहुत दाममें वेचना। (४) हीनाधिक मानोन्मान—तौलने नापनेके

बांट गज़ आदि कमतीसे देना बढ़तीसे लेना। (५) प्रतिरूपक व्यवहार—बनावटी सिक्का चलाना व खरीमें खोटी मिलाकर खरी कहकर बेचना।

(४) ब्रह्मचर्य अणुव्रतके पांच अतीचार—(१) पर विवाह करण-अपने कुटुम्बके सिवाय दूसरोंके पुत्र पुत्रियोंकी सगाई मिलाना। (२) इत्वरिका परिगृहीतागमन—विवाहिता व्यभिचारिणी स्त्रीसे सम्बन्ध रखना। (३) इत्वरिका अपरिगृहीता गमन—व्यभिचारिणी बिना विवाहिता वेश्या आदिसे सम्बन्ध रखना। (४) अनंगक्रीड़ा—कामके नियत अंगोंके सिवाय अन्य अंगोंसे कामचेष्टा करना। (५) काम तीव्राभिनिवेश—अपनी स्त्रीसे बहुत काम सेवना।

(६) परिग्रहप्रमाणव्रतके पांच अतीचार—दस प्रकारके परिग्रहमें दोदोके पांच जोड़े करके हरएक जोड़ेमें एक वस्तुको घटाकर दूसरी वस्तु बढ़ा लेना। जैसे चांदी, सोनेकी मर्यादामें सोनेकी मर्यादा बढ़ाकर चांदीकी कम कर देना।

(७) दिग्विरतिके पांच अतीचार—प्रमाद या मोहसे (१) ऊर्ध्वातिक्रम—ऊपरकी हदसे अधिक चले जाना. (२) अधोऽतिक्रम—नीचेकी हदको उलंघना. (३) तिर्यग्व्यतिक्रम—आठ दिशाओंकी हदको लांघ जाना. (४) क्षेत्रवृद्धि—एक तरफ मर्यादा घटाकर दूसरी तरफ बढ़ा लेना. (५) स्मृत्यन्तराधान—की हुई मर्यादाको भूल जाना।

(८) देशविरतिके पांच अतीचार—(१) आनयन—मर्यादाके बाहरसे मंगाना। (२) प्रेष्य प्रयोग—मर्यादाके बाहर भेजना। (३) शब्दानुपात—मर्यादाके बाहर बात कर लेना। (४) रूपानुपात—मर्यादासे बाहर रूप दिखाकर बता देना। (५) पुद्गलक्षेप—मर्यादाके बाहर कंकड़ व पत्र फेंकर बता देना।

(९) अनर्थ दंड विरतिके पांच अतीचार–(१) कंदर्प–रागकी तीव्रतासे भंड वचन बकना, (२) कौत्कुच्य–भंड वचनोंके साथ कायकी कुचेष्टा भी करनी, (३) मौखर्य--वृथा बहुत बकवाद करना, (४) असमीक्ष्य अधिकरण--प्रयोजन विना काम करना, (५) उपभोग परिभोगानर्थक्य--भोग व उपभोगके पदार्थोंको वृथा एकत्र करना।

(१०) **सामायिकके पांच अतीचार**–(१) कायदुष्प्रणिधान-शरीरकी खोटी चेष्टा करनी, (२) वाग्दुष्प्रणिधान–सांसारिक दुष्ट वचन कहना (३) मनोदुष्प्रणिधान–मनका दुष्ट भावोंमें लेजाना, (४) स्मृत्यनुपस्थान–सामायिक पाठ जप आदि भूल जाना।

(११) **प्रोषधोपवासके पांच अतीचार**–अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित–विना देखे विना झाड़े (१) उत्सर्ग–मलमूत्रादि कर देना, (२) आदान–शास्त्रादिको उठाना, (३) संस्तरोपक्रमण–चटाई आदि विछा देना तथा (४) अनादर–उत्साह न रखना, (५) स्मृत्यनुपस्थान–धर्मक्रियाओंको भूल जाना।

(१२) **भोगोपभोग प्रमाणके पांच अतिचार**–(१) सचित्त--त्यागी हुई सचित्त वस्तुको प्रमादसे खा लेना, (२) सचित्त सम्बन्ध-त्यागी हुई सचित्तमे छूई हुई वस्तुको खाना, (३) सचित्त सन्मिश्र--त्यागी हुई सचित्तमें मिलाकर किसीको खाना, (४) अभिषव--कामोद्दीपक पदार्थ खाना, (५) दुःपक्वाहार--ठीक न पका हुआ, जला या कच्चा भोजन करना, जो ठीक हजम न होसके उसे खाना।

(१३) **अतिथि संविभागके पांच अतिचार**--ये मुनिकी अपेक्षासे हैं। (१) सचित्त निक्षेप-सचित्तपर रखी हुई वस्तु देना

(२) सचित्तापिधान--सचित्तसे ढकी हुई वस्तु देना, (३) परव्यपदेश--दूसरे दातारको दानके लिये कहकर आप चले जाना, (४) मात्सर्य--दूसरे दातारके साथ ईर्षा करके देना, (५) कालातिक्रम--इसके कालको टालके बे समय देना।

(१४) सल्लेखनाके पांच अतीचार--(१) जीविताशंसा--अधिक जीनेकी इच्छा करना, (२) मरणाशंसा--जल्दी मरण चाहना, (३) मित्रानुराग--पूर्वके लौकिक मित्रोंसे प्रेम बताना, (४) सुखानुबन्ध--पिछले इन्द्रिय सुखोंका याद करना, (५) निदान--आगामी भोगोंकी चाहना करनी।

साधारण रीतिसे चौदह बातें श्रावकोंके लिये आवश्यक हैं। इन व्रतोंको क्रम क्रमसे उन्नति करते हुए पालनेकी अपेक्षा ग्यारह प्रतिमाएं या श्रावककी श्रेणियां बताई गई हैं। क्या आप जानना पसन्द करेंगे?

शिष्य--मुझे श्रावकोंका चारित्र जानकर बहुत आनन्द हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि जो गृहस्थ इनपर चलेगा वह नमूनेदार धर्मात्मा गृहस्थ होगा। वह किसी राज्यके अपराधमें कभी नहीं आसक्ता है, वह जगतमें प्रतिष्ठाका पात्र होगा। ग्यारह प्रतिमाएं भी समझा दीजिये।

शिक्षक--ये ग्यारह श्रेणियां इस ढंगसे बताई गई हैं कि आगे २ की प्रतिमावाला नीचेके चारित्रको छोड़ता नहीं है किन्तु उसको पालता हुआ नई उन्नतिका चारित्र पालता है। ये सब पांचमें गुणस्थानमें हैं।

(१) दर्शन प्रतिमा: इसमें सम्यग्दर्शनको [illegible] पालनेका अभ्यास करना चाहिये। [illegible] पच्चीस दोषोंको बचानेकी सम्हाल

रखनी चाहिये। (१) आठ मद-जाति (नाना मामा आदि), कुल (पिता आदि), रूप, बल, धन, अधिकार, विद्या, तप इन आठ बातोंका घमण्ड करना आठ मद दोष हैं। (२) तीन मूढ़ताएं--मूर्खतासे देखादेखी रागीद्वेषी देव पूजना देव मूढ़ता है। परिग्रहधारी गुरु मानना पाखंडी मूढ़ता है। लौकिक क्रियाओंको धर्म मानना लोकमूढ़ता है। (३) छह अनायतन--कुदेव, कुगुरु, कुधर्म और इनके तीन सेवकोंकी ऐसी संगति करनी जिससे श्रद्धानमें कमी आजाय। (४) आठ शंकादि दोष--इनके विरोधी नीचे लिखे आठ गुणोंको या सम्यक्तके अंगोंको पालना।

(१) निःशंकित अंग--तत्वोंमें शंका न रखकर निर्भय होकर धर्म पालना, (२) निःकांक्षित अंग--इन्द्रिय भोगोंमें सुखकी श्रद्धा न रखना, (३) निर्विचिकित्सित अंग-रोगी दुखी दलिद्री आदिसे घृणा न करनी, (४) अमूढ़दृष्टि अंग--मूढ़ताईसे देखादेखी कोई धर्मक्रिया न करनी, (५) उपबृंहन या उपगूहन अंग--अपने आत्मीक गुणोंको बढ़ाना। परके दोषोंका प्रकाश न करके उसके छुड़ानेका उद्यम करना, (६) स्थितिकरण अंग--अपनेको व दूसरेको धर्ममें स्थिर करना, (७) वात्सल्य अंग--सर्व सहधर्मी भाई बहनोंसे गौवत्सके समान प्रेम रखना, (८) प्रभावना अंग--जिस तरह बने अज्ञान अंधकारको मेटकर सच्चे तत्वज्ञानका प्रचार करना। सम्यक्ती इन आठ अंगोंको पालकर इनके विरोधी दोषोंसे बचता है। इस तरह पच्चीस दोषोंको बचाता है। यह सम्यक्ती देवपूजा, गुरुभक्ति, शास्त्रस्वाध्याय, संयम, सामायिक (तप), दान इन छः नित्य कर्मोंका रोज अभ्यास करता है। तथा आठ गुणोंको पालता है। १--मदिराका

त्याग, २--मांसका त्याग, ३--मधुका त्याग। मधुके लिये मक्खियोंका छत्ता तोड़कर उनको काट दिया जाता है व छत्तेसे एकत्रित मधुमें बहुतसी मक्खियां मर जाती हैं, ४--संकल्पी-निरर्थक हिंसाका त्याग, ५--स्थूल असत्यका त्याग, ६-स्थूल चोरीका त्याग, ७-पर-स्त्रीका त्याग, ८--अतितृष्णाका त्याग या परिग्रह प्रमाण।

(२) व्रत प्रतिमा—पहली सब क्रियाओंको पालता हुआ बारह व्रतोंको पालता है। पांच अणुव्रतोंके पच्चीस अतीचारोंको बचाकर पालता है। सात शीलके अतीचारोंके बचानेका उपाय रखता है। सामायिक जितनी देर होसके एक समय भी कर सक्ता है। अष्टमी चौदसको उपवास न होसके तो एकासन भी कर सक्ता है। कभी असमर्थ हो तो सामायिक व प्रोषधोपवास नहीं भी करे।

(३) सामायिक प्रतिमा-पहली सब क्रियाओंको पालता हुआ तीन काल सबेर दोपहर व सांझको ४८ मिनट या दो घड़ी अतीचारोंको टालकर सामायिक करे। कभी ४८ मिनटसे कुछ कम अंत-र्मुहूर्त भी कर सक्ता है।

(४) प्रोषधोपवास प्रतिमा- पिछली सब क्रियाओंको पालता हुआ महीनेमें चार दिन उत्तम, मध्यम, जघन्य प्रोषध शक्तिके अनु-सार करे, पांच अतीचारोंको टाले।

(५) सचित्त त्याग प्रतिमा-पिछली सब क्रियाओंको पालता हुआ एकेन्द्रिय सहित सचित्त पानी न पीवे न पिलावे, सचित्त तर-कारी फलादि न खावे न खिलावे। वह पानीको गर्म या प्रासुक कर सक्ता है व फलादिको प्रासुक कर सक्ता है। छिन्नभिन्न करनेसे, गर्म करनेसे फलादि सचित्तसे अचित्त होजाते हैं। वह समझता है,

बहुत कम वनस्पतिका व्यवहार करता है। इसको सचित्त पानी आदिसे नहाने आदिका त्याग नहीं है। लोंग इलायची आदि कषायला पदार्थ कूटकर डालनेसे पानी प्राशुक होजाता है जिससे रंग बदल जावे।

(६) **रात्रिभोजन त्याग प्रतिमा**–पिछली सब क्रियाओंको पालता हुआ रात्रिको न तो स्वयं किसी प्रकारका भोजनपान करे न दूसरोंको करावे। यह श्रावक बहुत संतोषी होजाता है। रात्रिको गृहके कुटुम्बियोंकी सम्हाल दूसरोंके आधीन कर देता है। आप अधिकतर धर्मध्यानमें रात्रिका समय विताता है, भोजनादिकी चर्चा भी नहीं करता है।

(७) **ब्रह्मचर्य प्रतिमा**–पिछली सब क्रियाओंको पालता हुआ अपनी स्त्रीका भी राग छोड़देवें। घरमें रहे तो एकांतमें सोवे, उदासीन वैराग्ययुक्त वस्त्र पहरे। यदि घर त्यागे तो उदासीन श्रावकके रूपमें भ्रमण करके देशाटन करे–धर्मप्रचार करे। यह रुपया रख सक्ता है, सवारीपर चढ़ सक्ता है, अपने हाथसे भोजनपानका प्रबन्ध कर सक्ता है, निमंत्रण पानेपर भक्तिसहित दान दिये जानेपर ग्रहण करसक्ता है।

(८) **आरंभ त्याग प्रतिमा**–पिछली सब क्रियाओंको पालता हुआ खेती व्यापारादि रसोई, पानी आदिका सब आरम्भ छोड़दे, संतोषसे रहे। घरमें रहे तो घरवाले जब भोजनको बुलावें संतोषसे जीमले। धार्मिक आरम्भ करसक्ता है। ध्यानका अधिक अभ्यास करता है।

(९) **परिग्रह त्याग प्रतिमा**–पिछली सब क्रियाओंको करता हुआ अपनी जायदादको जिसको देना हो देदे या दानमें लगादे, आप रुपया पैसा सब त्यागदे, कुछ वस्त्र व एक दो वर्तन रखले, घर छोड़कर देशाटन करे या एकांतमें बाग या नसियांमें रहे। निमंत्रण पानेपर भोजन करले।

(१०) अनुमति त्याग प्रतिमा—पिछली सब क्रियाओंको पालता हुआ सांसारिक कामोंमें किसीको सम्मति देनेका त्याग करदे। भोजनके समयपर बुलानेसे जावे, पहलेसे निमंत्रण न माने।

(११) उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा—इस श्रेणीमें यह भिक्षावृत्तिसे भोजन करता है। यह उस भोजनको स्वीकार नहीं करता है जो उनके लिये किया गया हो। यह उसी भोजनको स्वीकार करता है जो भोजन गृहस्थने अपने कुटुम्बके लिये तैयार किया हो। इस ग्यारहवीं प्रतिमामें एक क्षुल्लक व दूसरे ऐलक होते हैं। पिछली क्रियाओंको पालते हुए क्षुल्लक एक लंगोट व एक खण्ड वस्त्र चादर ऐसी रखता है जिससे पूरा शरीर न ढके। यह जीवदयाके लिये मोरके पंखकी पींछी रखता है क्योंकि मोरपंख बहुत कोमल होते हैं। उष्ण जलके लिये कमंडल रखता है। क्षुल्लक भोजनके समय जाता है। इसकी भिक्षाकी दो रीतियें हैं—कोई क्षुल्लक एक भिक्षाका पात्र रखते हैं और कई घरोंसे थोड़ा २ भोजन संग्रह करके अंतिम घरमें भोजन करके पात्रको साफकर नगरके बाहर चले जाते हैं। जो एक ही घरमें भोजन करते हैं वे जब भक्ति करके स्वीकार किये जाते हैं तब वे गृहस्थके घर थालीमें बैठकर आहार करते हैं। वे दिनमें एक ही दफे भोजनपान करते हैं। दूसरे ऐलक वे हैं जो केवल एक लंगोट ही रखते हैं। मोर पींछी सिवाय काठका कमण्डल रखते हैं। यह केशोंका लोच करते हैं अर्थात् इनको अपने हाथोंसे उखाड़ डालते हैं। भिक्षा वृत्तिसे एक ही घर बैठकर हाथमें ग्रास लेकर भोजन करते हैं। यह साधुके चारित्रका अभ्यास शुरू कर देते हैं। [illegible] के लिये [illegible] कह दिया है, अधिक जाननेके लिये श्रावकाचारोंको देखना चाहिये।

दशवां अध्याय ।

जैनोंके भेद ।

शिष्य–कृपा करके यह बताइये कि जैनोंमें भेद क्यों हैं ? व इनके सिद्धांतमें क्या अन्तर है ?

शिक्षक–जैनोंमें व्यवहार क्रिया आचरणकी अपेक्षा ही दिगंबर श्वेतांवर आदि भेद हैं। यदि मूल सिद्धांतको लिया जावे तो सबका एक ही मत है। जैन धर्मका तत्व यह है कि आत्माको स्वाधीन किया जाये, शुद्ध किया जावे। इसके साथ जो कर्मोंका बंध है वह दूर कर दिया जावे। आत्माके शुद्ध भावको मोक्ष सब जैनी मानते हैं। तथा मोक्षका निश्चय उपाय आत्माके ध्यानको सब मानते हैं। निश्चयसे आत्माके शुद्ध स्वरूपका ध्यान ही मोक्ष मार्ग है व शुद्ध भाव ही मोक्ष है। सात तत्व, नौ पदार्थ, छः द्रव्य, पांच अस्तिकाय, चौदह गुणस्थान, आदिमें कोई मतभेद नहीं है। अंतरंग स्वरूप सब एकसा मानते हैं। छः द्रव्योंमें कोई २ श्वेतांवर जैनाचार्य निश्चय काल द्रव्यको नहीं मानते हैं, केवल व्यवहार कालको मानते हैं, कोई श्वेतांबराचार्य काल द्रव्यको मानते हैं। यह एक बहुत सूक्ष्म भेद है। कर्मोंके बन्ध, उदय, सत्तामें एकमतपना है। कोई भी जैनी चाहे दिगम्बर हो या श्वेताम्बर हो वीतराग भावको ही धर्म मानेगा। राग, द्वेष मोहको संसार मानेगा। जैसा श्री कुन्दकुंदाचार्यने समयसारमें कहा है। इसमें कोई मतभेद नहीं है।

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसम्पत्तो ।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥ १५० ॥

भावार्थ-रागी जीव कर्मोंको बांधता है परन्तु विरागी जीव कर्मोंसे मुक्त होता है, ऐसा श्री जिनेन्द्र भगवानका उपदेश है। इसलिये शुभ अशुभ कर्मोंमें रंजायमान मत हो।

अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ ।
लहइ अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥ १८९ ॥

भावार्थ-जो कोई एकाग्र मनसे दर्शनज्ञानमई आत्माको ध्याता है वह शीघ्रही कर्मोंसे छूटकर मात्र आत्माको ही पाता है।

एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि ।
एदेण होहि तित्तो तो होहदि उत्तमं सोक्खं ॥ २०६ ॥

भावार्थ-इसी आत्माके स्वरूपमें नित्य रत हो, इसीमें संतोष-मान, इसीमें ही तृप्त रहो तो तुझे उत्तम सुख होगा। जैनियोंका एक मुख्य सिद्धांत आत्मोन्नति है व उसका उपाय आत्माका ध्यान है, इसमें कोई जैनी भिन्न सम्मति नहीं रखता है।

दूसरा जैनोंका तत्व अहिंसा है। इसमें भी सब जैनोंका एक-मत है। अहिंसाका स्वरूप ऐसा ही सब मानते हैं जैसा श्री पुरु-षार्थसिद्ध्युपायमें श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

यत्खलु कषाययोगात् प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम् ।
व्यपरोपणस्यकरणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ॥४३॥

भावार्थ-जो क्रोधादि कषायोंके वश होकर भाव प्राण और द्रव्य प्राणोंका घात करना सो निश्चयसे हिंसा है। भाव प्राण आ-

त्माके गुण, ज्ञान, शांति आदि हैं । द्रव्यप्राण इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोछ्वास हैं, जिनका कथन किया जा चुका है ।

शिष्य–तब सब जैनी एकता क्यों नहीं रखते हैं ? दिगम्बर व श्वेतांबर ऐसे जुदे मालूम पड़ते हैं जैसे--हिंदू और मुसलमान ।

शिक्षक–एकता न होनेका कारण यह है कि जैनोंका ध्यान अधिकतर बाहरी क्रियाकांडपर है, जिसमें कुछ मतभेद है। परन्तु असली मोक्ष मार्गपर नहीं है । यदि असली मोक्ष मार्गपर हो तो कभी परस्पर अनमेल न हो, सब असली मोक्षमार्गको एक ही जानै । व्यवहारके तरीकोंपर मतभेद होनेपर भी उसी तरह प्रेम रक्खें जैसे कपड़ोंके व भोजनपानके भीतर भेद होनेपर एक सभाके सभासद परस्पर एकता व मेलसे रहते हैं ।

शिष्य–तब हरएक आम्नायके उपदेशक इधर जैनोंका लक्ष्य क्यों नहीं दिलाते हैं ।

शिक्षक–जो साधु, पण्डित, उपदेशक आदि हैं उनका भी अधिकतर लक्ष्य व्यवहार क्रियाकांडके ऊपर रहता है, वे भी बहुत कम असली जैनधर्मकी तरफ ध्यान देते हैं। यदि वे सच्चे जैनधर्मका अनुभव करें तो उनके परिणामोंमें साम्यता आजावे तब उनका उपदेश भी ऐसा ही हो ।

शिष्य--इस समय जैनोंमें अपनीर आम्नायके अनुसार बाहरी आचरण पालते हुए एकताकी बड़ी जरूरत है तब क्या इन विरक्तोंको, पण्डितोंको व उपदेशकोंको समझाया नहीं जासक्ता है ?

शिक्षक--यदि दिगंबर तथा श्वेतांबर दोनोंके परोपकारी विद्वान लेखक अध्यात्मिक साहित्य तैयार करें और साम्यभावसे सच्चे धर्मपर

लक्ष्य दिलावें तथा व्यवहार चारित्रमें एक दूसरेपर मध्यस्थ भाव रखनेका संकेत करें और ऐसे साहित्यका प्रचार उपदेशकर्ताओंमें किया जावे तो कुछ कालमें एकता अवश्य स्थापित होसक्ती है।

शिष्य–कृपाकर बताइये मतभेद क्या क्या हैं?

शिक्षक–मैं कुछ थोड़ेसे मतभेद बताता हूं उनको जानकर विचार करना हरएक बुद्धिमान जैनीका कर्तव्य है। दिगम्बर व श्वेताम्बरका मत इन मतभेदोंपर क्या है व हरएक उसकी पुष्टि कैसे करता है यह संक्षेपसे मुझे बता देना है। इसपर आप स्वयं विचार लेंगे कि आपकी बुद्धि क्या स्वीकार करती है।

(१) एक मतभेद तो यह है कि दिगम्बर कहते हैं कि जबतक वस्त्रोंको बिलकुल त्यागकर नग्न बालकके समान न हुआ जायगा, तबतक परिग्रह त्याग महाव्रत नहीं होसक्ता है, जो एक साधुके लिये आवश्यक है। इसलिये साधु वही होसक्ता है जो वस्त्र रहित हो। जहांतक एक लंगोट भी है वहांतक वह श्रावक माना जाना चाहिये। श्वेताम्बरोंका यह मानना है कि जितने वस्त्र रखनेसे शरीरकी रक्षा हो, सर्दी गर्मीकी बाधा न हो, लज्जा सध सके उतने वस्त्र साधुको रख लेना चाहिये। वस्त्र सहित साधु भी उन्नति करके मोक्षका साधन कर सक्ता है। दिगम्बरोंका कहना है कि वस्त्र रखना पीछी कमंडलके समान धर्मोपकरण नहीं है। शरीरके मोहके कारणसे वस्त्र रक्खा जाता है। जबतक मोह न छोड़ा जायगा तबतक छठे गुणस्थान प्रमत्तविरत सम्बंधी वीतरागताके परिणाम न होंगे। जहांतक लंगोट भी होगा वहांतक लज्जा कषायके न जीतनेसे पांचवें गुणस्थान सम्बंधी भाव होंगे। जो लज्जा व शरदी गर्मी आदि परीषहोंको नहीं

जीत सके उसको ग्यारहवीं प्रतिमा व्रत श्रावकके व्रत पालने चाहिये, विना बालक सम प्राकृतिक भेषमें हुए साधुका चारित्र नहीं होसक्ता है। निर्ग्रंथ उसे कहते हैं जो सर्व परिग्रहका त्यागी नग्न साधु हो।

श्वेतांबरोंका कहना है कि जो नग्न रह सक्ता है वह नग्न रहे, उसे जिनकल्पी साधु कहेंगे व जो नग्न नहीं रह सक्ता है वह वस्त्र रक्खें, उसे स्थविरकल्पी साधु कहेंगे। यह भी उनका कहना है कि जैसे शरीर रक्षाके लिये भोजन आवश्यक है वैसे वस्त्र भी आवश्यक हैं तथा जब साधुका ध्यान अधिक चढ़ेगा तब उसका भाव जिस तरह शरीरसे ममता हटा लेता है वैसे वस्त्रसे भी ममता हटा लेगा। इसलिये वस्त्र सहित होते हुए भी परिणामोंकी उन्नति होसक्ती है, छठा सातवां आदि गुणस्थान होसकता है तथा वह अरहंत भी होसकता है।

शिष्य—श्री महावीरस्वामीने किस तरह दीक्षा ली थी?

शिक्षक—श्री महावीरस्वामीने नग्न होकर दीक्षा ली थी ऐसा दिगम्बर श्वेतांबर दोनों मानते हैं। श्वे० इतना कहते हैं कि इन्द्रने एक देवदूष्य वस्त्र कंधेपर डाल दिया था। वह एक वर्ष एक मास तक पड़ा रहा, फिर वह गिरगया। पीछे १३ मास कम बारह वर्ष तक महावीरस्वामीने नग्न ही तप किया।

शिष्य—क्या उनके ग्रंथका कोई वाक्य आप बता सक्ते हैं?

शिक्षक—उनके माननीय श्री आचारांगसूत्रमें नीचे लिखे वाक्य आए हैं—

संवच्छरं साहियमासं, जं न रिक्कासि वत्थगं भगवं।
अचेलओ तओचाई तं वोसिज्ज वत्थ मणगारे॥ ४॥

सं०—तत् इन्द्रोपाईतं वस्त्रं संवत्सरमेकं साधिकं मोचयन्नत्यक्त-वान् भगवान् तत् स्थितकल्प इति कृत्वा तत् ऊर्ध्वं तत्वस्त्रपरि-त्यागी व्युत्सृज्य च तदनगारो भगवान् अचेलोऽभूत। (नौमा अ० पृ० २०१ शीलांकाचार्य विहित विवरण युतं मुद्रित म्हेसाणा लल्लभाई किशोरदास सन् १०,१६)।

शिष्य—क्या वे नग्नत्वको सवस्त्रधारीसे अच्छा समझते हैं ? क्या इसके भी कुछ शास्त्रीय प्रमाण हैं ?

शिक्षक—उसी आचारांगमें सूत्र २१६–२२६ अध्याय ८ पृ० २७७–२८६ में "जं भिक्खु अचेले परिवसिए तस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ चाएमि अहंतण कासं" अर्थात् जो भिक्षु नग्न रहेंगे उनको यह नहीं मालूम होगा कि मेरे तृण स्पर्श होरहे हैं वे तृण स्पर्शकी बाधा सहेंगे।

प्रवचनसारोद्धार भाग ३ (छपी संवत् १९३४) पृ० १३४ "आउरणवज्जियाणं विसुद्ध जिणकप्पियाणंतु" अर्थात् जो वस्त्र रहित हैं वे विशुद्ध जिनकल्पी हैं।

शिष्य—क्या सवस्त्र जैन साधुका चारित्र श्री महावीरस्वामीके समयमें या पहलेसे श्वेताम्बर जैन मानते हैं ?

शिक्षक—श्वेताम्बर जैन कल्पसूत्र आदि अपने ग्रन्थोंसे यह कहते हैं कि श्री पार्श्वनाथके समयसे वस्त्र सहित साधु होते थे, महावीरस्वामीने सुधार किया, नग्नत्वका प्रचार किया।

शिष्य—क्या कोई ऐतिहासिक प्रमाण इस बातकी पुष्टिका है ?

शिक्षक—जहांतक मुझे मालूम है अबतक कोई ऐतिहासिक

प्रमाण इस बातका नहीं मिला है कि श्री महावीरस्वामीके पहले या उनके समयमें जैन साधु सवस्त्र थे।

शिष्य--इस कालमें वस्त्र रहित साधु होना बहुत कठिन मालूम होता है, क्या इसीलिये तो श्वेताम्बरोंने सवस्त्र साधुका मार्ग नहीं चलाया ?

शिक्षक--यदि प्रतिमाओंके द्वारा धीरे२ वस्त्र त्यागका अभ्यास किया जावे तो साधुपद नग्नावस्थामें ठीक पल सक्ता है, विना अभ्यासके तो वास्तवमें कठिन काम है। शरदी, गर्मी आदि सहना व लज्जा जीतना बहुत ही दुष्कर कार्य है, परन्तु अभ्याससे सरल है।

शिष्य-क्या श्वेताम्बर साधुकी क्रियाएं दिगम्बरोंकी किसी प्रतिमासे मिल जाती हैं ?

शिक्षक-यदि हम क्षुल्लकोंका मिलान करें तो बहुत अंशमें मेल बैठ जाता है। दिगम्बर जैन शास्त्रोंमें अनेक घरोंसे भोजन पात्रमें एकत्र करके क्षुल्लकके लिये भोजन करनेका विधान है इसीको श्वेताम्बर साधु पालते हैं।

शिष्य-क्षुल्लक शब्द ग्यारहवीं प्रतिमाधारीको क्यों दिया गया है ?

शिक्षक-क्षुल्लक छोटेको कहते हैं, वास्तवमें वे छोटे साधु ही हैं। वे भी साधुवत् ध्यानादि करते हैं, भिक्षावृत्तिसे भोजन करते हैं, मोरपिच्छिका रखते हैं।

शिष्य-तब फिर दिगम्बर श्वेताम्बरोंको वस्त्र रखने न रखने-पर मन मुटाव न रखना चाहिये। श्वेताम्बर शास्त्रमें उत्तम जिन-कल्पी अचेल वस्त्र रहित कहे गए हैं। दिगम्बर साधुओंको इस दृष्टिसे श्वेताम्बरोंको देखना चाहिये तथा दिगम्बरोंको उचित है कि

वे श्वेताम्बर साधुओंको क्षुल्लकवत् देखकर इस विषयमें मध्यस्थ भाव रक्खें। परस्पर अनैक्य न करें, जिससे जैसा सधे वह बाहरी चारित्र वैसा पाले। अपनीर श्रद्धानुकूल पाले। अंतरङ्ग चारित्रमें तो आपने कहा है कि भेद कुछ नहीं है।

शिक्षक--वास्तवमें अंतरङ्ग चारित्रमें एक ही मत है। दिगंबर जैन शास्त्र भी कहते हैं कि जबतक स्वात्म रमण न होगा तबतक मोक्षमार्ग यथार्थ नहीं है, केवल बाहरी भेष मोक्षमार्ग नहीं है। देखिये श्री कुंदकुंदाचार्य समयसारमें यही कहते हैं:—

गाथा--ण वि एस मोक्खमग्गो पाखण्डीगिहिमयाणि लिंगाणि।
दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति ॥४१०॥

भावार्थ--साधु व गृहीके भेष मात्र मोक्षका मार्ग नहीं है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी एकता जो आत्मानुभव रूप है, वही मोक्ष मार्ग है, ऐसा जिनेन्द्र कहते हैं।

यही बात ऊपर लिखीत श्वे० ग्रन्थ आचारांगमें कही है।

"बंधपमुक्खो अज्झत्थेव इत्थविरए अणगारे दीहरायं तितिक्खए पमत्ते बहिया पास अप्पमत्तो परिव्वए एवं मोणं सम्मं अणुवासिज्जासित्ति बेमि" (सू० १५० लोकसाराध्ययने द्वितीयोद्देश १५।२)

भावार्थ—बन्ध या मोक्ष भीतरी परिणामोंमें है। विरक्त गृह रहित साधुको रातदिन परिषह सहना चाहिये। जो प्रमादी हैं उनको मोक्षमार्गके बाहर जानना चाहिये। अप्रमादी होकर वैराग्यमें रहे, ऐसे मुनिको भलेप्रकार मोक्षमार्ग पालना चाहिये।

और भी वहीं कहा है—

इह आणाकंखी पंडिए अणिहे एग मप्पाणं संपेहाए धुणेहि

अप्पाणं जेरहि अप्पाणं जहा जुन्नाइं कट्ठाइं हव्ववाहो पमत्थइ एवं अत्तसमाहिए अणिहे विगिंच कोहं अविकंपमाणो" सू. १३५ पृ.१९०

भावार्थ--आज्ञाकारी, पंडित, स्नेहरहित अपनेको अकेला एक रूप देख करके अपनेको कृप करे, अपनेको तपसे जीर्ण करे। जैसे पुराने काटको आग जला देती है वैसे स्नेहरहित होकर क्रोधको तज निष्कंप हो आत्माका ध्यान करनेसे कर्म गल जाते हैं।

टीकाकारने वहीं लिखा है कि ऐसी भावना करे--

सदैकोहं न मे कश्चित् नाहमन्यस्य कस्यचित्।
न तं पश्यामि यस्याहं नासौ भावी तियो मम॥

भावार्थ--मैं सदा एक हूं, मेरा कोई नहीं है, मैं किसी अन्यका नहीं हूं। न मैं किसीको देखता हूं जिसका मैं हूं, न भावी कालमें मेरा कोई होगा। और भी कहा है--

जह खलु सुसिरं कट्ठं सुचिरं सुक्कं लहुं डहइ अग्गी।
तह खलु खवंति कम्मं सम्मचरणे ठिया साहू॥ २३४॥

भावार्थ-जैसे गीला काठ जब दीर्घ कालमें सूख जाता है तब उसे अग्नि शीघ्र जला देती है वैसे ही जो साधु भले प्रकार स्वरूपाचरण चारित्रमें स्थित होते हैं वे कर्मोंको क्षय कर डालते हैं। प्रयोजन यह है कि सर्व जैनोंको समताभाव रखकर अंतरंग चारित्रपर लक्ष्य देना चाहिये। उस चारित्रका बाहरी साधन व्यवहार चारित्र है। उसके लिये दिगम्बरोंको अपनी श्रद्धाके अनुकूल व श्वेताम्बरोंको अपनी श्रद्धाके अनुकूल चलना चाहिये। माध्यस्थभाव रखना ही जिनेन्द्रकी आज्ञा है। परस्पर द्वेष न रखना चाहिये। जिसकी

समझमें जैसा आवे वैसा वह बाहरी चारित्र पाले। अंतरङ्गपरिणामों-पर मुख्यतासे लक्ष्य देना चाहिये।

शिष्य--और कुछ जरूरी अंतरकी बातें बताइये।

शिक्षक--दूसरी बात यह है कि दिगंबर जैन अपने शास्त्राधारसे ऐसा बताते हैं कि स्त्रीके शरीरसे मोक्ष नहीं होसक्ता है. पुरुषके शरीरसे ही मुक्ति होती है। इसका कारण वे यह बताते हैं कि जिस उच्च ध्यानके करनेसे कर्मोंका नाश होसके वैसा ध्यान शक्तिकी कमीसे स्त्री द्वारा नहीं किया जासक्ता है। स्त्रीके संहनन अर्थात् हड्डियोंकी शक्ति वज्रवृषभनाराच रूप नहीं है। पुरुषोंमें भी जिसके ऐसी शक्ति होगी वही मोक्षके साधनकी योग्यता रख सक्ता है। वज्रके समान दृढ़ नसोंके जाल, हड्डियोंकी संधियें तथा हड्डी हों उसको वज्रवृषभनाराच संहनन कहते हैं। स्त्रियां उन्नति करके सोलह स्वर्ग तक व अवनति करके छठे नर्क तक जासक्ती हैं। श्वेतांबर शास्त्रकार स्त्रीके शरीरसे मुक्ति होना बताते हैं। उनके यहां उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथको स्त्री तीर्थंकर माना है। यद्यपि वे मोक्षका लाभ स्त्रीके शरीरसे मानते हैं तथापि दिगंबरोंके समान वे यह मानते हैं कि वह स्वर्गोंसे ऊपर ग्रैवेयिक आदिमें नहीं जाती. सातवें नर्क नहीं जाती, चक्रवर्ती आदि नहीं होती हैं।

श्वेताम्बर ग्रन्थ प्रवचनसारोद्धार प्रकरणरत्नाकर भाग तीजा संवत् १९३४ छपा भीमसी माणक बम्बईमें कहा है—

अरहंत चक्कि केसव बल संभिन्नेय चारणे पुव्वा।
गणहर पुलाय आहारगं च नहु भविय महिलाणं॥ ५२॥

अर्थात् अरहंत (तीर्थंकर), चक्रवर्ती, नारायण, बलदेव, संभिन्नश्रोतृऋद्धि, चारणऋद्धि, पूर्वोका ज्ञान, गणधर, पुलाक साधुपना, आहारक शरीर ये दश बातें स्त्रीके शरीरसे नहीं होती हैं। टीकाकार कहते हैं कि मल्लिनाथ स्त्री क्यों हुए ? यह एक खास बात हुई है। नियम नहीं है इसको अछेरा कहते हैं।

दिगम्बरोंके समान वे यह मानते हैं कि देवियोंकी उत्पत्ति दूसरे स्वर्गतक ही होती हैं तथा वे बारहवें स्वर्गतक जासक्ती हैं क्योंकि श्वेताम्बरी बारह स्वर्ग मानते हैं, दिगम्बरी १६ स्वर्ग मानते हैं।

संग्रहणीसूत्र पत्रे ७८ में कहा है—

उववाओ देवीणं कप्पदुगं जा परो सहस्सारा।
गमणागमणं नच्छी अच्चय परऊ सुराणंपि ॥

भावार्थ—देवी दूसरे स्वर्ग तक उपजे परन्तु बारहवें सहस्रार तक जाय।

शिष्य—आजकल दिगम्बर या श्वेतांबर मोक्ष किसको होना मानते हैं ?

शिक्षक—इस भरत क्षेत्रमें आजकल दोनोंका यह मत है कि स्त्री व पुरुषको ऐसी शक्ति नहीं है, जिससे कोई भी मोक्ष जासके। इसी लिए इस अन्तरके रहते हुए भी साम्य भाव रखना चाहिये। बुद्धि बलसे विचारते हुए जो बात समझमें आवे, सो मानना चाहिये। तीसरा अन्तर यह है कि दिगंबरी ऐसा मानते हैं कि केवली अरहंत जिन शरीरमें रहते हुए ग्रासरूप भोजन जैसा साधु अवस्थामें करते थे वैसा नहीं करते। किंतु उनके शरीरको पुष्टि देनेवाले पुद्गलके पिंड (आहारक वर्गणाएं) स्वयं आकर उनके शरीरमें उसी तरह मिलते

रहते हैं जैसे--वृक्षादि मिट्टी पानीको खींच लेते हैं। केवली वीत-राग हैं, अनंत बली हैं, उनके भूखकी इच्छाका क्लेश नहीं पैदा हो सकता है। उनके तीव्र पुण्योदयसे व लाभांतराय कर्मके नाशसे उनकी योग शक्तिके द्वारा पुद्गल पिंड शरीरमें मिल जाते हैं। श्वेतांबर लोग कहते हैं कि वे साधुके समान भोजन करते हैं। इसमें भी मध्यस्थ भाव रखकर विचार लेना चाहिये। आहारका होना दोनों मानते हैं। दिगम्बरी वृक्षोंके लेपाहारके समान पुद्गलोंका ग्रहण मानते हैं, श्वेतांबरी कवलाहार मानते हैं।

शिष्य--क्या और भी अंतरकी बातें हैं?

शिक्षक--तीन मुख्य अंतरकी बातें आपको बताई हैं। और भी कुछ बातें बताता हूं। दिगंबरी मानते हैं कि केवलीको रोग व नीहार (मलमूत्र) नहीं होता है। श्वेतांबरी रोग व नीहार होना भी मानते हैं। श्री महावीर भगवानने विवाह नहीं किया--कुमार-कालमें दीक्षा ली ऐसा दिगंबरी मानते हैं। श्वेतांबरी मानते हैं कि विवाह किया, कन्या जन्मी, फिर दीक्षा ली।

श्री महावीरस्वामी राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिशलाके ही गर्भमें रहकर जन्मे ऐसा दिगंबरी मानते हैं। श्वेतांबरी मानते हैं कि वह पहले एक ब्राह्मणीके गर्भमें आए फिर इन्द्रने उनको वहांसे लाकर त्रिशलाके गर्भमें रक्खा। इत्यादिक अंतरकी ऐसी कुछ बातें हैं जो कोई महत्वशाली नहीं हैं।

शिष्य--दिगंबर श्वेताम्बर भेद कबसे हुआ?

शिक्षक--दोनों मानते हैं कि ये भेद विक्रम संवत १३४ या १३६ में पड़ा। दिगम्बर कहते हैं कि श्वेताम्बर संघ तब स्थापित हुआ।

श्वेतांबर कहते हैं कि दिगम्बर संघ तब स्थापित हुआ। यह बात प्रसिद्ध है कि जैनधर्मी महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य (सन् ई०से ३२० वर्ष पहले) के समयमें मध्य देशमें बारह वर्षका दुष्काल पड़ा उस समय श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली २४००० मुनिसंघ सहित विराजित थे। श्रुतकेवलीने दुष्कालमें मुनिसंयम पलता हुआ कठिन जान कर संघको दक्षिणकी तरफ चलनेकी सम्मति दी। १२०००ने बात मानली। वे तो दक्षिण श्रवणबेलगोलाकी तरफ चलेगए। शिलालेखोंसे यह सिद्ध है कि भद्रबाहु दक्षिण गए, साथमें राजा चंद्रगुप्त भी मुनिरूपमें था। यहां जो १२००० नग्न मुनि रहे उनसे साधुका चारित्र न पल सका तब वे कंधेमें वस्त्र रखने लगे, अर्द्धफालक मत चला। दुष्कालके पीछे वे मुनि लौटे तब उनके उपदेशसे बहुतोंने पुरानी चर्या धार ली। बहुतोंने वस्त्रका त्याग नहीं किया। यही मतभेद होनेकी जड़ है ऐसा दिगम्बरोंके भद्रबाहुचरित्रमें लिखा है।

शिष्य–क्या और कोई विशेष अंतर है? जिसे जानना जरूरी है?

शिक्षक–दिगम्बरी लोग तीर्थंकरोंकी मूर्तियां ध्यानाकार वस्त्र व अलंकार रहित स्थापित करते हैं। जबकि श्वेताम्बरी लोग मूर्ति तो ध्यानाकार बनाते हैं परन्तु उसमें लंगोटका चिन्ह करते हैं, दिगम्बरी ऐसा नहीं करते है। तथा श्वेताम्बरी ऊपरसे नेत्र जड़ते हैं, आभूषणादि पहनाके मूर्तिको सजाते हैं। श्वेताम्बरोंमें एक स्थानकवासी पंथ है जो मूर्तिको नहीं पूजते हैं तथा उनके साधु श्वेतांबरोंके समान वस्त्र रखते हैं व आहार लाते हैं परन्तु मुखपर पट्टी बांधते हैं। उनका ऐसा खयाल है कि कहीं कोई जंतु मुखमें न

चला जावे। मूर्तिपूजक श्वेतांबरी ऐसा कहते हैं कि ये उनहीमेंसे १५ वीं शताब्दीसे हुए हैं। स्थानकवासी जैनोंका बहुतसा कथन मूर्तिपूजक श्वेतांबरोंसे मिलता है।

मैंने थोड़ासा मतभेद बता दिया है जिससे दिगंबर व श्वेतांबर परस्पर एक दूसरेको पहचान लेवें।

शिष्य स्थानकवासी जैन ग्रन्थोंके भीतर असली मोक्षमार्गका कैसा वर्णन है? कुछ नमूना बताइये, जिससे दिगम्बर व मूर्तिपूजक व स्थानकवासी इनके कथनकी साम्यता मालूम हो।

शिक्षक—आपका प्रश्न बहुत योग्य है। मुझे आज ही स्थानकवासी मुनि श्री चौथमलजी द्वारा संग्रहीत " निर्ग्रंथ प्रवचन " नामकी पुस्तक प्राप्त हुई है। (प्रकाशक जैनोंदय पुस्तक प्रकाशक समिति रतलाम वीर सं० २४५९, उसमेंसे कुछ कथन बताता हूं।

अप्पाणमेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण वज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं जइत्ता सुहमेहए ॥८-१॥

भावार्थ—आत्माके साथ ही युद्ध कर, वाहर युद्ध करनेसे क्या? आत्मा हीके द्वारा अपनेको जीतनेसे सुख प्राप्त होता है।

रागोय दोसो वि य कम्मवीयं कम्मं च मोहप्पगवं वयंति।
कम्मं च जाई मरणस्स मूलं दुक्खं च जाईमरणं वयंति ॥२७-२

भा०—राग द्वेष कर्म बन्धके बीज हैं। यह कर्म मोहसे बंधते हैं। कर्म जन्म मरणके मूल हैं। जन्म—मरण ही दुख है। ऐसा ज्ञानी कहते हैं।

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाई ॥

भा०–जिसके मोह नहीं है उसने दुःखको नष्ट कर डाला। जिसके तृष्णा नहीं है उसने मोहको नष्ट किया, जिसके लोभ नहीं है उसने तृष्णाको नष्ट किया। जिसके धनादिसे ममत्व नहीं है उसने लोभको नष्ट किया।

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणे ॥५-२॥

भा०–अहिंसा, संयम, तप ये धर्म उत्कृष्ट मंगल हैं। जिसका मन सदा धर्ममें है उसको देव भी नमन करते हैं।

धम्मे हरए बंभे संति तित्थे अणाविले अत्तपसन्नलेसे।
जहिंसि ण्हाओ विमलो विसुद्धो सुसीति भूओ पजहामि दोसं ॥२४।४

भा०–मिथ्यात्वरहित, आत्मानंदकारक धर्मरूपी द्रह और ब्रह्मचर्यरूपी शांतिमय तीर्थ (नदी) है। जिसमें स्नान करनेसे यह आत्मा मलरहित शुद्ध व शांत होजाती है। इसलिये मैं इसीसे अपने मैलको छुड़ाता हूं।

निम्ममो निरहंकारो निस्संगो चत्त गारवो।
समो अ सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु य ॥ ११-५ ॥

भा०–साधु वही है जो ममता रहित, अहंकार रहित, बाहरी भीतरी परिग्रह रहित, बड़प्पन रहित हो तथा त्रस स्थावरादि सर्व प्राणियोंपर समता भाव सहित हो।

नादंसणिस्स नाणं, नाणेणं विणा न होंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमुक्कस्स निव्वाणं ॥७-६॥

भा०–सम्यक्दर्शन रहितके सम्यक्ज्ञान नहीं है। सम्यक्-

ज्ञानके विना सम्यक्चारित्र नहीं है। चारित्र रहितके कर्मोंसे मुक्ति नहीं होती है। कर्मरहित हुए विना निर्वाण नहीं होसक्ता।

जहा पउमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं वूम माहणं॥ १७-७॥

भा०—जैसे कमल जलमें पैदा होता है तो भी जलसे लिप्त नहीं होता है, वैसे जो काम भोगोंसे लिप्त नहीं होता है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

समयाए समणो होइ, वंभचेरेण वंभणो।
नाणेणय मुणी होइ, तवेणं होइ तावसो॥ १९-७॥

भा०—समतासे श्रमण साधु होता है, ब्रह्मचर्यसे ब्राह्मण होता है, ज्ञानसे मुनि होता है, तपसे तपस्वी होता है।

कम्मुणा वंभणो होइ कम्मुणा होइ खित्तिओ।
कम्मुणा वइसो होइ सुद्दो होइ कम्मुणा॥ २०-७॥

भा०—कर्मसे या क्रिया आचरणसे ही ब्राह्मण होता है। क्षत्रियकी क्रियासे क्षत्रिय होता है। वैश्य कर्मसे वैश्य होता है। शूद्र कर्मसे शूद्र होता है।

सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं निग्गंथा वज्जयंति णं॥ १-९॥

भा०—सर्व जीव जीना चाहते हैं मरना नहीं चाहते हैं। इसलिये निर्ग्रंथ साधु प्राणीवधरूपी घोर कर्मको नहीं करते हैं।

न कम्मणा कम्म खवेंति वाला अकम्मणा कम्म खवेंति धीरा।
मेधाविणो लोभमया वतीता संतोसिणो नोपकरेंति पावं॥ १८-१४

भा०-अज्ञानी कर्मोंको करते हुए कर्मका क्षय नहीं करते हैं। धीर पुरुष क्रियारहित आत्मानुभवके द्वारा कर्मोंको क्षय करते हैं। लोभरहित संतोषी पण्डितजन पाप नहीं करते हैं।

नाणस्स सव्वस्स पगासणाय अण्णाण मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य तंखएणं एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥२१-१८

भा०-सर्व ज्ञानके प्रकाश होनेसे, अज्ञान व मोहके छूट जानेसे, रागद्वेषके क्षय हो जानेसे परम सुखरूप मोक्षकी प्राप्ति होती है। आत्मध्यान व अहिंसाकी पुष्टि इन गाथाओंसे है।

शिष्य-क्या दिगम्बर जैन शास्त्रोंसे कुछ ऐसा साहित्य बतावेंगे?

शिक्षक-यदि आपकी इच्छा है तो कुछ उपयोगी साहित्य नीचे दिया जाता है—

योगसारमें श्री योगेंद्राचार्य कहते हैं—

जो णिम्मल अप्पा मुणइ वयसंजमु संजुत्तु।
तउ लहु पावइ सिद्ध सुहु इउ जिणणाहह वुत्तु ॥ ३० ॥

भावार्थ-जो व्रत व संयमको पालते हुए निर्मल आत्माको अनुभव करता है सो शीघ्र ही सिद्धके सुखको पाता है ऐसा जिनेन्द्र कहते हैं।

धम्मरसायणमें श्री पद्मनंदि मुनि कहते हैं—

जियकोहो जियमाणो जियमायालोहमोह जियमयओ।
जियमच्छरो य जम्हा तम्हा णामं जिणो उत्तो ॥ १३५ ॥

भावार्थ-जो क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदिको जीतता है वही जिन है।

श्री कुलभद्राचार्य सारसमुच्चयमें कहते हैं—

सम्यक्त्वज्ञानसम्पन्नो जैनभक्त जितेन्द्रियः।
लोभमोहमदैस्त्यक्तो मोक्षभागी न संशयः ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो सम्यक्दर्शन व सम्यक्ज्ञान सहित है, जिनेन्द्रके मार्गका भक्त है, इन्द्रियोंको विजय करनेवाला है, लोभ, मोह, मदसे रहित है वह संशय रहित मोक्षका भागी है। वहीं कहा है—

समता सर्वभूतेषु यः करोति सुमानसः।
ममत्वभावनिर्मुक्तो यात्यसौ पदमव्ययं ॥ २१३ ॥

भा०—जो बुद्धिमान सर्व प्राणियोंमें समता भाव करता है तथा ममताभाव त्यागता है, वही अविनाशी पदको पाता है।

निर्ममत्वं परं तत्वं निर्ममत्वं परं सुखं।
निर्ममत्वं परं बीजं मोक्षस्य कथितं बुधैः ॥२३४॥
निर्ममत्वे सदा सौख्यं, संसारस्थितिच्छेदनम्।
जायते परमोत्कृष्टमात्मनः, संस्थिते सति ॥२३५॥

भा०—ममता रहितपना परम तत्व है। यही परम सुख है। यही मोक्षका परम बीज है, ऐसा बुद्धिमानोंने कहा है। संसारकी स्थितिको छेदनेवाला परमोत्कृष्ट सुख परसे ममता त्यागनेपर तथा आत्माके भीतर स्थिति करनेसे उत्पन्न होता है।

यः सन्तोषामृतं पीतं तृष्णातृट्प्रणाशनं।
तैश्च निर्वाणसौख्यस्य, कारणं समुपार्जितं ॥२४७॥

भा०—जिन्होंने तृष्णाकी प्यास बुझानेके लिये संतोषामृतका पान किया है उन्होंने निर्वाणके सुखका मार्ग पालिया है।

ज्ञानदर्शनसंपन्न आत्मा चैको ध्रुवो मम ।
शेषा भावाश्च मे बाह्या सर्वे संयोगलक्षणाः ॥३४९॥

भा०—ज्ञान दर्शन सहित एक अविनाशी आत्मा ही मेरा है। बाकी सर्व रागादि भाव मेरे नहीं हैं, कर्म संयोगसे उत्पन्न हुए हैं।

आत्मानं स्नापयेन्नित्यं ज्ञाननीरेण चारुणा ।
येन निर्मलतां याति जीवो जन्मान्तरेष्वपि ॥ ३१४ ॥

भा०—आत्माको सदा पवित्र ज्ञानरूपी जलसे स्नान कराओ जिससे यह जीव जन्म जन्मके पापोंसे छूटकर निर्मल होजाता है।

श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

स्वाध्यायाद्ध्यानमध्यास्तां ध्यानात्स्वाध्यायमामनेत् ।
ध्यानस्वाध्यायसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥ ८१ ॥

भा०—स्वाध्याय करते २ ध्यानमें आजाओ। ध्यानसे छूटो तब शास्त्र मनन करो। ध्यान स्वाध्यायकी प्राप्तिसे ही परमात्माका पद प्रगट होजाता है।

स्वयमिष्टं न च द्विष्टं किन्तूपेक्ष्यमिदं जगत् ।
नाऽहमेष्टा न च द्वेष्टा किन्तु स्वयमुपेक्षिता ॥ १५७ ॥

भा०—यह जगत है न इष्ट है न अनिष्ट है, किन्तु वैराग्यके योग्य है। मैं न रागी हूं, न द्वेषी हूं, किन्तु स्वयं वीतरागी हूं ऐसा भावे।

आत्मायत्तं निराबाधमतीन्द्रियमनश्वरं ।
घातिकर्मक्षयोद्भूतं यत्तन्मोक्षसुखं विदुः ॥ २४२ ॥

भा०--स्वाधीन, बाधारहित, अतीन्द्रिय, अविनाशी जो मोक्ष सुख कहा गया है वह ज्ञानावरणादि घातिकर्मोंके क्षयसे पैदा होता है।

श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः ।
अत्यंतसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः ॥२१॥
संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः ।
आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मन्येवात्मनि स्थितं ॥२२॥

भा०--यह अपना आत्मा अपने शरीर प्रमाण आकारधारी निश्चयसे अविनाशी, अत्यन्त आनन्दमय, लोकालोकका ज्ञाता दृष्टा स्वानुभवगम्य है। इन्द्रियोंके ग्रामोंको संयममें लाकर चित्तको एकाग्र करके आत्मज्ञानी आत्मामें ठहरे हुए अपने आत्माको अपने भीतर ही ध्यानमें लावे।

बध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममः क्रमात् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥ २६ ॥

भा०--ममता सहित जीव कर्मोंसे बंधता है, ममता रहित जीव कर्मोंसे छूटता है। इसलिये सर्व प्रयत्न करके निर्ममत्वभावका ध्यान करे।

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः ।
जायते परमानंदः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥ ४७ ॥
आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेंधनमनारतं ।
न चासौ खिद्यते योगीर्बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥ ४८ ॥

भा०—जो व्यवहारके बाहर जाकर आत्माके ध्यानमें लीन होता है उस योगीके ध्यानके बलसे कोई परमानंद पैदा होता है यही आनन्द निरंतर कर्मोंके काष्ठको बहुत अधिक जलाता है। ऐसा योगी बाहर दुःखोंके पड़नेपर भी उनसे बेखबर रहता हुआ

खेदको नहीं पाता है। श्री अमितगति सामायिकपाठमें कहते हैं—

सर्वं निराकृत्य विकल्प जालं संसारकान्तारनिपातहेतुम्।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो निलीयसे त्वं परमात्मतत्वे ॥२९॥

भा०—संसारवनमें गिरानेवाले सर्व विकल्पोंके जालको दूर करके अपने आत्माको सर्वसे भिन्न२ अनुभव करता हुआ तू एक परमात्माके स्वरूपमें लीन हो।

वैराग्यमणिमालामें श्रीचंद्रजी कहते हैं—

मुंच परिग्रहवृन्दमशेषं चारित्रं पालय सविशेषं।
कामक्रोधनिपीलनयंत्रं ध्यानं कुरु रे जीव! पवित्रं ॥२१॥

भावार्थ—हे जीव! सर्व परिग्रह समूहको त्याग यथार्थ चारित्रको पाल। काम, क्रोधके दूर करनेको यंत्रके समान पवित्र ध्यानको कर।

विरमविरम बाह्यादि पदार्थे रम रम मोक्षपदे च हितार्थे।
कुरु कुरु निज कार्यं च वितंद्रः भवभव केवलबोध यतींद्रः॥
मुंच मुंच विषयाऽमिषभोगं लुंप लुंप निजतृष्णारोगं।
रुंध रुंध मानस मातंगं धर धर जीवविमलतरयोगं ॥६९॥

भावार्थ—बाहरी सब पदार्थोंसे विरक्त हो, विरक्त हो, परम हितकारी मोक्ष पदमें रमणकर रमणकर, आलस्य त्यागकर आत्मीक कार्यको करले करले, केवलज्ञानका धारी अरहंत होजा होजा, इन्द्रियोंकी अभिलाषारूपी मांसके भोगको छोड़ छोड़, अपने भीतरके तृष्णामई रोगको दूरकर दूरकर, मनरूपी हाथीको रोक रोक, अत्यंत विमल योगाभ्यासको धार धार।

श्री देवसेनाचार्य तत्त्वसारमें कहते हैं—

झाणेण कुणउ भेयं पुग्गलजीवाण तह य कम्माणं।
घेत्तव्वो णियअप्पा सिद्धसरूवो परो बंभो ॥ २५ ॥

भा०--ध्यानके द्वारा पुद्गलसे तथा कर्मोसे अपने जीवको भिन्न करके अपने ही सिद्ध स्वरूपी परम ब्रह्मरूप आत्माको ग्रहण करना चाहिये।

सयलवियप्पे थक्के उपज्जइ को वि सासओ भावो।
जो अप्पणो सहावो मोक्खस्स कारणं सोहु ॥६१॥

भा०--मनके सर्व विकल्पोंके रुक जानेपर कोई एक अविनाशी भाव पैदा होता है। जो आत्माका स्वभाव है वही मोक्षका कारण है।

ढाढसी गाथामें एक आचार्य कहते हैं

मण रोहेण य रुद्ध करणसुहं सुहविणा य णिग्गंथो।
णिग्गंथो अकसाओ अकसाओ हिंसओ णत्थि ॥ ७ ॥

भा०--मनको रोकनेसे इन्द्रियसुख रुक जाता है। निर्ग्रंथ ही सुखी है। जो कषाय रहित है वही निर्ग्रंथ है, जो कषाय रहित है वह हिंसक नहीं होता है।

जो जाणइ अरहंतो दव्वत्थ गुणत्थ पज्ज यत्थेहिं।
सो जाणई अप्पाणं मोहो खलु जाइ तस्स लयं ॥ २८ ॥

भा०--जो श्री अरहंत भगवानको द्रव्य, गुण, पर्यायोंके द्वारा समझता है वह अपने आपको समझता है, उसीका मोह अवश्य दूर होजाता है।

श्री पद्मनंदि मुनि ज्ञानसारमें कहते हैं—

झाणेण विणा जोई असमत्थो होई कम्मणिड्डहणे।
दाढाणहरविहीणो जह सीहो वरगयंदाणं ॥ ७ ॥

भा०—योगी ध्यानके विना कर्मोंको जलानेके लिये उसी तरह असमर्थ है जैसे दाढ़ व नखरहित सिंह बड़े२ हाथियोंको वश नहीं कर सक्ता। आत्मानुशासनमें श्री गुणभद्राचार्य कहते हैं—

ज्ञानस्वभावः स्यादात्मा स्वभावावाप्तिरच्युतिः।
तस्मादच्युतिमाकांक्षन् भावयेज् ज्ञानभावनाम् ॥१७४॥

भा०—आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वभावी है। अपने स्वभावकी प्राप्ति मोक्ष है इसलिये मोक्षके अर्थीको ज्ञानभावना भानी चाहिये।

रागद्वेषौ प्रवृत्तिः स्यान्निवृत्तिस्तन्निषेधनम्।
तौ च बाह्यार्थसम्बद्धौ तस्मात्तांश्च परित्यजेत् ॥ २३७ ॥

भा०-रागद्वेष ही प्रवृत्ति है। उसका छोड़ना निवृत्ति है। वे रागद्वेष बाहरी पदार्थोंके सम्बन्धसे होते हैं इसलिये इनको भी त्यागदे।

श्री अमृतचन्द्र आचार्य समयसार कलशमें कहते हैं—

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयंति नो जनाः।
तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तंदुलम् ॥४९-१०॥

भा०—जो जन व्यवहार हीमें मूढ़तासे मगन हैं वे निश्चय तत्वको अनुभव नहीं करते हैं। जो भूसीके लेनेमें मूढ़ हैं वे तुषको ही तंदुल जानरहे हैं। तंदुलको तंदुल नहीं जानते हैं।

क्लिश्यंतां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः।
क्लिश्यंतां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरं॥
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं।
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥१०।७॥

भा०—कोई मोक्ष विरोधी कठिन क्रियाकांडसे स्वयं क्लेश

उठावें तो उठावें, या दूसरे कोई महाव्रत व तपके भारसे चिरकाल खेद करते हुए क्लेश उठावें तो उठावें। यह मोक्ष तो साक्षात् अपना ही एक अविनाशी पद है व अपने ही द्वारा अपने अनुभवमें आनेवाला है तथा शुद्ध ज्ञानमई है सो कोई भी आत्मज्ञानरूपी गुणके विना प्राप्त करनेको समर्थ नहीं होसक्ते हैं।

वे ही अमृतचंद्राचार्य पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहते हैं—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥ ४४ ॥

भा०—रागद्वेषादि भावोंका प्रगट न होना ही अहिंसा है तथा उनहीका प्रगट होना हिंसा है। यही जिन आगमका संक्षेप है।

श्री पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं—

स्वबुद्ध्या यावद् गृह्णीयात् कायवाक् चेतसां त्रयम्।
संसारस्तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः ॥ ६२ ॥

भा०—जबतक मन, वचन, काय इन तीनोंको आत्माका स्वभाव माना जायगा या अपना माना जायगा वहींतक ही संसार है। इन तीनोंके भेदविज्ञानके अभ्याससे ही मोक्ष होजाती है।

श्री पद्मनंदि मुनि निश्चयपञ्चाशतमें कहते हैं—

शुद्धाच्छुद्धमशुद्धं ध्यायन्नाप्नोत्यशुद्धमेव स्वम्।
जनयति हेम्नो हैमं लोहाल्लोहं नरः कटकम् ॥ १८ ॥

भा०—जो मानव शुद्धात्माका ध्यान करता है वह अपनेको शुद्ध स्वरूपमें कर देता है। जो अशुद्ध स्वरूपका ध्यान करता है

वह अशुद्ध ही आत्माको पाता है। जैसे सुवर्णसे सुवर्णके कड़े व लोहेसे लोहेके कड़े बनते हैं।

अहमेव चित्स्वरूपश्चिद्रूपस्याश्रयो मम स एव।
नान्यत् किमपि जडत्वात् प्रीतिः सदृशेषु कल्याणी॥ ४१॥

भा०—मैं ही चैतन्य स्वरूप हूं, मुझ चैतन्य स्वरूपके वही एक आश्रय है और कोई उसके सिवाय आश्रय योग्य नहीं है। क्योंकि और सब जड़ हैं। चेतनको चेतन हीमें प्रीति करनी चाहिये। बराबरवालों हीमें प्रीति सुखदाई होती है।

शिष्य—क्या ये सब मतभेद दूर नहीं होसक्ते? क्या एक प्रकारका जैन धर्म नहीं होसक्ता है?

शिक्षक-मैं आपको बता चुका हूं कि दिगम्बर श्वेताम्बर सबका निश्चय मोक्ष मार्ग एकसा ही है। सर्व ही आत्मध्यानसे व निर्विकल्प समाधिसे ही मोक्ष मानते हैं। सर्व ही अहिंसाको ही धर्म मानते हैं, व्यवहारमें बहुत थोड़ा मतभेद है। यदि दिगम्बर, मूर्तिपूजक व स्थानकवासी श्वेताम्बर तीनोंके विद्वान व माननीय गुरु पक्ष, आग्रह व परम्पराको त्यागकर साम्यभावसे सम्मति करें और यह विचारें कि निश्चय मोक्षमार्गका साधक कितना व्यवहार मार्ग रक्खा जावे तो यह तय होसक्ता है और एक ही प्रकारका व्यवहारमार्ग भी रह सक्ता है-बहुत शीघ्र निर्णय होसक्ता है। निष्पक्ष विद्वानोंके सम्मेलनकी जरूरत है। परन्तु जबतक ऐसा न हो, हम सब पढ़े लिखे भाइयोंको निश्चयधर्म समझकर व्यवहार धर्म उसके साधनरूप जो अपना अंतःकरण गवाही दे उसे पालना चाहिये व जिस व्यवहार

धर्मसे अपनी सम्मति न मिले उसपर माध्यस्थ भाव या रागद्वेष रहित भाव रखना चाहिये क्योंकि अल्पज्ञानवालोंकी बुद्धि सब ही विषयोंमें एकसी नहीं होसक्ती है। नाना अपेक्षाओंसे भिन्न२ विचार किये जासक्ते हैं। इसीलिये श्री अमितगति महाराजने तथा श्री उमास्वामी महाराजने चार भावनाओंको रखनेकी आज्ञा दी है। जिनसे सम्मति न मिले उनपर मध्यस्थ रखनेकी आज्ञा है, द्वेष भाव करनेकी नहीं है। देखिये कहा है—

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदम्, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१॥

अर्थात्–हे भगवन्! मेरा आत्मा सर्व प्राणी मात्रपर मैत्रीभाव रखे, गुणवानोंपर प्रमोद भाव रक्खे, दुःखी जीवोंपर दया रक्खे व विपरीत स्वभाववालोंपर माध्यस्थ भाव रक्खे।

शिष्य–मुझे आपके द्वारा बहुत ही लाभ हुआ है। मैं आपको कहांतक धन्यवाद दूं। अब कृपाकर यह बताइये कि जैनधर्म और बौद्ध धर्ममें क्या साम्यता है व क्या अंतर है? बौद्धोंकी संख्या संसारमें बहुत है तथा वे प्रसिद्ध भी बहुत हैं।

ग्यारहवां अध्याय।

जैन और बौद्ध धर्म।

शिक्षक--मैंने बौद्धोंकी कुछ पाली भाषाकी पुस्तकोंको इंग्रेजी द्वारा तथा उनके इंग्रेजी उल्थाओंको पढ़ा है। उससे मैं इस निर्णयपर आया हूं कि गौतम बुद्धने कोई नया मत नहीं चलाया। जैनमतको ही एक ऐसी सरल व प्रचलित पद्धतिसे उपदेश किया कि जिससे दुनियांके लोगोंने बहुत जल्दी समझ लिया। जैनधर्म ही असलमें बौद्ध धर्मके रूपमें प्रचलित हुआ। गौतम बुद्धके भावोंमें जैन तत्वज्ञान ही भरा था जिसे उन्होंने दूसरे ढङ्गसे प्रकाश किया। गौतम बुद्ध घर छोड़नेके पीछे अपनी २९ वर्षकी आयुसे ३५ वर्षकी आयु तक ६ वर्षके बीचमें जैन मुनि भी रहें। जैन मुनिकी क्रियाएं पालीं। ३५ वर्षकी आयुमें गयाजीमें जाकर इन्होंने जैन मुनिकी क्रियाको कठिन समझकर सरल और मध्यम मार्ग प्रचलित किया। दि० जैनोंके दर्शनसार ग्रन्थसे प्रगट है कि श्री पार्श्वनाथस्वामीकी परम्परा संप्रदायमें श्री पिहिताश्रव मुनि होगये हैं उनके शिष्य गौतम बुद्ध हुए और नग्न रहकर तपस्या की। पिहिताश्रव मुनि बहुत प्रसिद्ध थे। यूनानदेशमें प्रसिद्ध एक तत्वज्ञानी पैथागोरस Pythagoras पिथागुरु व पिहितगुरु होगए हैं। यह पक्के शाकाहारी थे। जैनगजट अंग्रेजी जुलाई १९३३में एक लेख डाक्टर क्राज़ Dr. Charlotte Krause द्वारा लिखित है। उससे मालूम हुआ कि यह तत्वज्ञानी सन् ई० से ५९० वर्ष पहले यूनियन सीके सोयासद्वीपमें जन्मे थे

व इन्होंने जगतकी यात्रा की थी व भारतमें भी आए थे। फिर लौटकर दक्षिण इटलीके क्रोटोना नगरमें स्थिर रहे। वहांका राजा नूमा पोम्पिलियस उनका शिष्य हुआ है। लेटिन भाषाका कवि ओविद सन् १८ में हुआ है। उसने इस पिथागुरुका चरित्र व उनकी शिक्षाएं Metamorphoses नामकी पुस्तकमें दी गई हैं यह (Samian sage) समियाके साधु प्रसिद्ध थे। एक व्याख्यानका इंग्रेजीमें उल्था इस जैनगजटमें दिया हुआ है जो पिथागुरुने इटलीके राजा नूमाको दिया था। उसके पढ़नेसे इसमें संदेह नहीं रह जाता कि उनका तत्वज्ञान वही था जो जैनोंका था। इसके कुछ वाक्य नीचे दिये जाते हैं। बहुत संभव है कि यह पिथागुरु ही पिहितास्रव मुनि हों।

(१) मरनेपर शरीर नष्ट होजायगा परन्तु आत्माएं कभी नहीं मर सक्ती हैं। आत्माओंको पुराना घर छोड़कर नए घरोंमें जाना पड़ता है।

(२) सर्व वस्तुएं परिणमनशील हैं, किसीका सर्वथा नाश नहीं होता हैं All things change, there is no death anywhere आत्मा पशुसे मानव व मानवसे पशु होजाता है। यह कभी मरता नहीं। जैसे मोम भिन्न२ शकलोंमें बदला जासक्ता है। तथापि वह उतना ही मोम बना रहता है। इसी तरह आत्मा भिन्न२ पर्यायोंमें भिन्न२ शकलोंको रखता हुआ सदा वही बना रहता है।

नोट—इन वाक्योंसे साफ प्रगट है कि पिथागुरु द्रव्यको नित्य व अनित्य मानते थे, उत्पादव्ययध्रौव्यरूप मानते थे तथा अनेक आत्माओंको मानते थे व आत्माको एक प्रकारसे साकारवादी होकर

संकोच विस्तार करनेवाला मोमके समान जानते थे, यही जैनोंका विशेष सिद्धांत है।

(३) अपने जिह्वाके लोभसे धर्मका लोप मत करो, अपने साथी प्राणियोंकी हिंसा मत करो, रुधिर लेकर वसर मत करो।

(४) मांस खाना हिंसाकारक है। इससे अपने शरीरको अप-वित्र मत करो, वृक्षोंसे फलादि मिल्ते हैं, दूध मिलता है। इस पृथ्वीपर बहुत अधिक पवित्र भोज्य पदार्थ हैं जो विना रुधिर बहाए मिल सक्ते हैं। जो मांस खाते हैं वे पशुतुल्य हैं। बहुतसे पशु मांस नहीं खाते हैं। घोड़े, भेड़, गाय, भैंस घासपर वसर करते हैं। पिथागुरुका जन्म सन् ई० से ५९० वर्ष पहले हुआ था, जब कि श्री महावीरस्वामीका जन्म सन् ई० से ५९९ वर्ष पहले हुआ। महावीर स्वामीने ४२ वर्षकी आयुमें शिक्षा देना प्रारम्भ की तब पिथागुरु ३३ वर्षके थे। इससे मालूम पड़ता है कि पिथागुरु वीस वर्षके अनुमानमें ही भारतमें आए होंगे और श्री पार्श्वनाथकी संप्रदायके आचार्योंसे ही शिक्षा दीक्षा ली होगी। तथा वे यहां कई वर्षतक साधुपदमें रहे होंगे। बौद्ध साधु महापण्डित त्रिपिट-काचार्य राहुल सांकृत्यायन द्वारा संपादित 'बुद्धचर्या' हिंदी पुस्तकसे प्रगट है कि गौतमबुद्ध जब ७६–७७ वर्षके थे तब पावापुरीमें श्री महावीर भगवानका निर्वाण हुआ था अर्थात् गौतमबुद्ध जब ४ वर्षके थे तब श्री महावीर भगवानका जन्म हुआ था। श्री महावीरकी आयु ७२ वर्षकी थी। गौतमबुद्धने २९ वर्षकी आयुमें घर छोड़ा तब महावीर भगवान घर ही में थे। ६ वर्षतक गौतम बुद्ध भिन्न भिन्न प्रकारका तप करते रहे। इसीके मध्यमें

जैन मुनिका तप भी पाला, ऐसा बौद्ध ग्रन्थोंमे प्रगट है। पिथा गुरु तब यहां मुनिपदमें २०--२१ वर्षकी आयुमें होंगे, यदि जन्म ५९० वर्ष पूर्व माना जावे। इसलिये पिहिताश्रव मुनि व पिथा गुरुका सम्बन्ध बहुत कुछ मिल जाता है। पिथा गुरु अल्पवयहीमें भारतमें आए होगे ऐसा झलकता है। जब ३५ वर्षके गौतम बुद्ध थे तब श्री महावीर भगवान् ३१ वर्षके थे। और तप अवस्थामें थे क्योंकि ३० वर्षकी आयुमें दीक्षा ली थी। और १२ वर्षतक तप साधा फिर उपदेश शुरू किया। इससे सिद्ध है कि गौतम बुद्धका उपदेश श्री महावीरस्वामीके उपदेशसे १२ वर्ष पूर्व शुरू होगया था। तब गौतम बुद्ध ४७ वर्षके थे।

शिष्य--क्यों पाली ग्रन्थोंमें यह कथन मिलता है कि गौतम बुद्धने जैन मुनिकी तपस्या घर छोड़नेके बाद पाली थी !

शिक्षक--मज्झिमनिकाय पाली ग्रन्थके बारहवें महासीह नाद सुत्तमें नीचे लिखे वाक्योंसे दिगंबर जैन मुनि होना सिद्ध है।

" अचेलको होमि....हत्थापलेखनो....नाभिहतं न उद्दिस्सकतं न निमत्तं नं सादियामि....नगब्भनिया न पायमानया न पय गक्खिका संड संड चारिनी। न मच्छे न मांसं न सुरं न मेरयं न थुसोदकं पिवामि। सो एकागारिको वा होमि एकालोपिका, द्वागारिको होमि, द्वालोपिको, सत्तागारिको वा होमि सत्तालोपिको, एकाहंपि आहारं आहारेमि, द्वीहिकंपि आहारं आहारेमि, सत्ताहिकं पि आहारं आहारेमि। इति एयरूपं अद्धमासिकंपि परिमायभत्त भोजनानुयोगं अनुयुत्तो विहरामि....केस्समस्सुलोचकोपिहोमि....याव उदुबिन्दुम्हि पि मे दया पच्चुपट्ठिताहोति माहं खुद्दके पाणे पि समगते संघाते आपादेस्संति।

सो तत्तो सो सीनो एको भिंसनके वने।
नग्गो न च अग्गिं आसीनो एसनापसुतो मुनीति॥

भावार्थ-मैं वस्त्ररहित रहा। हाथपर भोजन करता था। न लाया हुआ खाता था, न उद्दिष्ट भोजन करता था, न निमंत्रणसे खाता था। गर्भिणी स्त्री व दूध पिलानेवाली स्त्रीके हाथसे नहीं खाता था। न जहां मक्खियां भिनर करती हों, न मछली न मांस मदिरा न घासका पानी पीता था। कभी एक घरसे एक ग्रास खाता था, कभी दो घर जानेका नियम रखकर दो ग्रास खाता था। इस तरह सात घर जानेका नियम रखके सात ग्रास तक खाता था। कभी एक दिन बाद, कभी दो दिन पीछे आहार लेता था, कभी पंद्रह दिन पीछे आहार करता था। इस तरह विहार करता था। सिरके केशोंका व डाढ़ीके केशोंका हाथसे लोंच करता था। एक जलकी बूंद भी न घात करूं ऐसी मेरेमें दया थी, मेरेसे कोई छोटा भी प्राणी घात न होजावे ऐसा ध्यान रखता था। गर्मी शर्दी सहता हुआ भयानक वनमें नग्न रहता था, आग नहीं तापता था, ध्यानमें मग्न मुनि था।

ये सब दिगम्बर मुनिका चारित्र श्री वट्टकेरस्वामी कृत मूलाचार दि० जैन ग्रंथसे मिलता है।

जो कुछ सिंहनादसुत्तमें वर्णित है वह गौतमबुद्धने घर छोड़नेके बाद बुद्ध होनेके पहले पाला था। इसके सम्बन्धमें पूछनेपर एक विद्वान बौद्ध भिक्षु श्रीयुत नारद थेरा वज्राराम आश्रम बजिरारोड बम्बलपिटिया (सीलोन) से अपने पत्र ५ मई १९२३ में लिखते हैं-

I referred to the Sihanada Sutta. I am inclined to agree that these absorvances were gone through after the Bodhisatta had left his home. In another place it is stated "Aham Bodhistato samano" which clearly shows that he practiced these austerities, whilst he was struggling for Buddhahood.

भावार्थ-मैंने सिंहनाद सूत्त देखा, मैं इस बातसे सहमत हूं कि ये सब क्रियाएं बोधिसत्वने घर छोड़नेपर की थीं। दूसरे स्थानपर लिखा है "मैं बोधिसत्व श्रमण" इससे साफर प्रगट है कि उन्होंने इन तपस्याओंको उसी समय अभ्यास किया था जब वे बुद्धत्वके लिये उद्यम कर रहे थे।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि गौतमबुद्धने शक्तिसे अधिक तप कर लिया था। जैन शास्त्रोंकी आज्ञा है कि शक्तिके अनुसार उतना बाहरी तप करे जिससे आत्मामें आनन्द वर्ते, क्लेशभाव न पैदा हों। आत्मध्यानकी सिद्धिके लिये बाहरी तप किया जाता है। जैसा श्री अमृतचंद्र आचार्य पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखते हैं—

चारित्रान्तर्भावात् तपोऽपि मोक्षांगमागमे गदितम्।
अनिगूहितनिजवीर्यैस्तदपि निषेव्यं समाहितस्वान्तैः॥१९७

भा०-तप भी चारित्रके भीतर गर्भित है। आगममें इसे भी मोक्षमार्ग कहा है। अपने मनको समताभावमें रखनेवालोंको अपनी शक्तिके अनुसार उसे पालना चाहिये।

अधिक तप करनेसे गौतमबुद्धकी समझमें इस बाहरी कठिन तपस्यासे आकुलता होगई। उनकी समझमें यही आया कि दल रखके बाहरी सुगम मार्गपर चलते हुए भी आत्माका ध्यान किया जासक्ता है। इसीसे गौतमबुद्धकी पाली पुस्तकोंमें भी लिखा है कि बुद्धने

अपनी ३५ वर्षकी आयुमें मध्यम मार्गका उपदेश सबसे पहले बनारस सारनाथ पर दिया, जहां श्री श्रेयांसनाथ ग्यारहवें जैन तीर्थंकरकी जन्मभूमि है। बुद्धके अंतरंगमें जैन तत्वज्ञान भरा था उसीको वे स्वयं पालते थे व उसीका उपदेश उन्होंने इतनी सुगम रीतिसे दिया कि जनताने सुगम समझकर शीघ्र ग्रहण कर लिया। और बहुमतका प्रचार भारतमें व विदेशोंमें बहुत अधिक फैल गया। आज इस मतके माननेवाले ४० या ५० करोड़ इस जानी हुई दुनियांमें होंगे। इनके सबसे पुराने ग्रंथ पाली भाषाके हैं जो प्रथम शताब्दीमें सीलोनमें लिखे गए थे। उनसे जो बौद्ध धर्म झलकता है उसका तत्वज्ञान जैन तत्वज्ञानसे मिलता है।

(१) **मोक्षका स्वरूप—**

मज्झिम निकाय अरिय परिएसन सुत्त २६ में वाक्य हैं:-

" निव्वानं परि येसमानं अजातं अनुत्तरं योगक्खेमं निव्वानं अज्झगमं। अजरं अव्याधिं अमतं असोकं असंकिट्ठं। अधिगमो खो मे अयं धम्मो गंभीरो दुद्दसो, दुरनुबोधो, संतो, पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पंडितवेदनीयो।"

भावार्थ—जो निर्वाण खोजनेयोग्य है वह किसीसे उत्पन्न नहीं है अजन्मा है अर्थात् स्वाभाविक है, उससे बढ़कर कोई नहीं है इसलिये अनुत्तर है, योग अर्थात् ध्यानद्वारा अनुभव गम्य है इसलिये योगक्षेम है, जरारहित है, व्याधिरहित है, मरणरहित है, शोकरहित है, क्लेशरहित है। मैंने वास्तवमें इस धर्मको जान लिया। यह धर्म गंभीर है, कठिनतासे जानने योग्य है, शांत है, उत्तम है, तर्कके गोचर नहीं है, निपुण है तथा पंडितोंके द्वारा अनुभव करने योग्य है।

सुत्तनिपात कप्पमानवपुक्खामें कहा हैं—

अकिंचनं अनादानं एतं दीपं अनापरं।

निव्वानं इति तम् ब्रूमि जरा मिच्चु परिक्खयम् ॥

भा०-मैं उसे निर्वाण कहता हूं जो एक अनुपम द्वीप है। जहां न कुछ परपदार्थ है, न कुछ इच्छा ही है, जहां न जरा है, न मरण है।

इन वाक्योंसे सिद्ध है कि निर्वाण अस्ति रूप है। कोई वहां ऐसा है जो जन्मा नहीं है न मरेगा व जो अनुभवगम्य है व आनंदमय है। इससे यही मतलब निकलता है कि वह एक परमात्म पद है, आत्माका स्वाभाविक भाव है। सर्व संस्कारोंके छूट जानेपर जो कुछ शेष रह जाता है वही मोक्ष है। जो गुप्त था, वह प्रकाश होजाता है। ऐसा ही स्वरूप जैनाचार्योंने मोक्षका बतलाया है।

श्री समन्तभद्राचार्य रत्नकरंडमें कहते हैं—

शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशंकं।

काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजंति दर्शनपूताः ॥४०॥

भा०—निर्मल सम्यक्ती जीव ऐसे निर्वाणको पाते हैं जो शिव है, अजर है, रोग रहित है, अक्षय है, अव्याबाध है, शोक, भय व शंकासे शून्य है, उत्कृष्ट सुख व ज्ञानकी विभूति सहित है व निर्मल है।

(२) आत्माका स्वरूप—

निर्वाणका ऐसा स्वरूप मानते हुए यह स्वतः सिद्ध है कि आत्माका अस्तित्व माना गया है। जबतक कोई पदार्थ न होगा निर्वाण किसको होगा। मज्झिम निकायके प्रथम सूत्र मूल परि-

थयके पढनेसे विदित होगा कि सर्व पृथ्वी आदि पदार्थोंसे व क्षणिक ज्ञान, सुख आदिसे रहित जो है उसीपर लक्ष्य दिलाया है। उसके कुछ वाक्य हैं—

"अरियधम्मस्स अकोविदो....पथवीं पथवितो संजानाति.... पथविं मे ति मण्णति....अपरिञ्ञातं तस्स....योपि सो अरहं खीण- सवो वुसितवा कत्तकरणीयो....सम्मदञ्ञाविमुत्तो....पथविं मेति न मण्णति।"

भावार्थ–जो आर्यधर्मको नहीं जानता है वह पृथ्वीको पृथ्वी जानता है। पृथ्वीको अपनी मान लेता है; क्योंकि उसको ज्ञान नहीं है। जो कोई अर्हन् क्षीण आस्रव है, ब्रह्मचारी है, कृतकृत्य है, सम्यक्ज्ञानी है, वैरागी है, वह पृथ्वी आदि मेरी है ऐसा नहीं मानता है।

संयुक्तनिकाय (चुंदो १३) में ये पाली वाक्य हैं—

तस्मादिह आनंद अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा।
अनण्णसरणा धम्मदीपा धम्मसरणा अनण्णसरणा॥

भा०–इसलिये हे आनन्द! आत्मारूपी दीपमें विहार कर, आत्मा ही शरण है, दूसरा कोई शरण नहीं है। धर्म ही द्वीप है। धर्म ही शरण है। अन्य कोई शरण नहीं है।

बुद्ध पाली साहित्यमें स्पष्ट आत्माका वर्णन करके सर्व संस्का- रोंको अनित्य बताकर व निर्वाणको अजात, अजर, अमर बताकर सिद्ध कर दिया है कि जो निर्वाणरूप है वही आत्मा है। ऐसा ही जैन सिद्धांत मानता है कि आत्मा व निर्वाण एक अनुभवगोचर पदार्थ है, आत्मा निर्विकल्प है।

समाधिशतकमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं—

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः॥ १९॥

भा०—मैं दूसरोंके द्वारा समझाया जाऊं या मैं दूसरोंको समझाऊं यह मेरी उन्मत्त चेष्टा है, क्योंकि मैं (आत्मा) निर्विकल्प हूं। गौतमबुद्धने भी संयुक्तनिकाय अव्याकत सुत्त नं० १० में वच्छ गोत्र परिव्राजकके आत्मा सम्बन्धी प्रश्नपर मौन धारण किया है। उन पाली वाक्योंका हिन्दी भाव यह है—एक दफे वच्छगोत्र परिव्राजकने भगवान् गौतमसे प्रश्न किया कि क्या आत्मा है? भगवान मौन रहे, फिर उसने पूछा क्या आत्मा नहीं है? फिर भी भगवान मौन रहे। आनन्दने जब मौनका कारण पूछा तब भगवानने कहाकि यदि मैं आत्मा है ऐसा कहता तो नित्यवादीका साथी होता। यदि आत्मा नहीं है ऐसा कहता तो अनित्यवादीका साथी होता। इस कथनसे बिलकुल साफ प्रगट है कि जैसे जैनी आत्माको नित्य तथा अनित्य उभयरूप भिन्न २ अपेक्षासे मानते हैं उसी तरहकी मान्यता गौतमबुद्धकी थी। यदि वह जडवादी होता तो ऐसा कभी नहीं कहता। मौन रहनेसे बुद्धने बता दिया था कि आत्मा वचनोंका विषय नहीं है, अनुभवका विषय है।

(३) मोक्षका मार्ग—

जैन सिद्धांतने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रको मोक्ष-मार्ग माना है। उसी तरह बौद्ध पाली साहित्यमें आठ तरहका मोक्ष मार्ग माना है जो जैनोंके रत्नत्रयमें गर्भित होजाता है।

मज्झिमनिकायके नौमें सम्मादिट्ठिसुत्तमें कहा है—

"अयमेव अरियो अट्ठंगिको मग्गो आसवनिरोधगामिनी पटिपदा सेय्यथिदं–सम्मादिट्ठि, सम्मासंकप्पो, सम्मावाचा, सम्मकम्मंतो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मा समाधि।"

भा०–हे आर्यों! आस्रवके रोकनेका उपाय यह आठ प्रकारका मार्ग है। (१) सम्यक्दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक्वचन, (४) सम्यक्कर्म, (५) सम्यक् आजीविका, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि।

जैनों द्वारा माना हुआ सम्यक्दर्शन सम्यक् दृष्टिके साथ सम्यक्ज्ञान सम्यक् संकल्पके साथ व शेष छहों सम्यक्चारित्रके साथ मिल जाते हैं।

बात एक ही है। चाहे रत्नत्रय मोक्षमार्ग कहो या अष्टांग मोक्षमार्ग कहो। जब निर्वाण स्वरूप आत्मापर श्रद्धान लाया जायगा उसीका ज्ञान होगा, व उसीकी तरफ चेष्टा या व्यायाम होगा। उसीका ही स्मरण होगा, उसीको समाधिभावमें ध्याया जायगा तब ही मोक्षमार्ग होगा। व्यवहारमें वर्तते हुए वचनयोग्य, कायकी क्रिया योग्य व भोजन शुद्ध होजाना चाहिये। जैन और बौद्ध दोनोंका एक ही कहना है।

जैसे जैनोंमें आत्मध्यानको भेद विज्ञानके द्वारा करके मोक्षका साधन बताया है ऐसा ही बौद्ध ग्रंथोंमें है।

मज्झिमनिकाय (१) महामालुम्वसुत्तं चतुत्थं (६४) "सोयदेव तत्थ होति वेदानागतं, संज्ञागतं, संखारागतं, विज्ञानागतं ते धम्मे अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गंडतो सल्लतो अप्पतो आवाधतो परतो पलोकतो सुन्नतो अनत्तत्तो समनुपस्सति, सोतेहि धम्मेहि चित्तं परियायेति, सोतेहि धम्मेहि चित्तं पटिवायेत्वा अमताय धातुयाचित्तं

उपसंहतिः। एतं सतं एतं पणीतं यदितं सव्वसंखार समयो सव्वुपाधि पटिनिस्सग्गो तण्हखयो विरागो निरोधो निब्बानंति-सो तत्थट्ठितो आसवानं खयं पापुनाति ॥३॥

भा०-जिसके भीतर ऐसा होवे कि वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञान (अशुद्ध ज्ञान) संबंधी विभाव धर्म नित्य हैं, दुःख हैं, रोग हैं, घाव हैं, शल्य हैं, पाप हैं, बाधा हैं, पर हैं, देखनेयोग्य नहीं हैं, शून्य हैं, अनात्मा हैं, जो ऐसा समझता है वह उन विभावोंसे चित्तको हटाता है। इन धर्मोंसे चित्तको हटाकर व अमरधातु अर्थात् मोक्षपदकी तरफ चित्तको लगाता है। यह निर्वाण ही शांत है, उत्तम है, जहां सर्व संस्कार शांत होजाते हैं, सर्व उपाधि दूर होजाती हैं, तृष्णाका क्षय होजाता है, वीतरागता होती है, आस्रवोंका विरोध होजाता है. इस तरह वह इस भावमें ठहरा हुआ आस्रवोंका क्षय कर डालता है।

दिग्घनिकाय (३) ३३ संगीत सुत्तंत।

इसमें कथन है कि एक धर्म ब्रह्मचर्य है। दो धर्म स्मृति व समाधि बल है, या विद्या और विमुक्ति हैं, या इन्द्रियोंका निग्रह और भोजनमें मात्रारूप संयम है। या अविद्या, तृष्णाका क्षय है या नाम-रूपका वियोग है। तीन धर्म हैं मोह, लोभ, द्वेषका क्षय। चार धर्म हैं-शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति। दश विभाव धर्म हैं-प्राणातिपात, दत्तादान, (चोरी), कामेसुमिथ्याचार (कामभाव), मृषावाद, पिसून वचन (चुगली), फरुसावाचन (कठोर वचन), सम्यक आलाप (वृथा बकबक), अभिज्झा (लोभ), व्यापाद (क्रोध) मिथ्यादृष्टि। इनसे विरक्त रहना चाहिये।

(४) कर्म बंध—

जैसे जैनियोंमें कर्मोंके आस्रव अर्थात् आनेके भावोंका वर्णन है वैसे बौद्धोंके पाली सूत्रोंमें है। मज्झिमनिकायका पहला सूत्र ही आस्रव सूत्र है। जिसमें यह वर्णन है कि काम भाव और अविद्याके भाव आस्रव हैं। मिथ्यादृष्टि आस्रव है, अर्थात् अपनेको निर्वाणरूप न मानकर और रूप मानना, पांच इन्द्रियोंमें आसक्तपना, क्रोधादि भाव आस्रव है। आस्रवको रोकनेके लिये जैसे संवर शब्द जैन शास्त्रोंमें आता है वैसे इसी आस्रव सूत्रमें संवरका वैसा ही कथन है। नमूना–" इध भिक्खवे भिक्खु परिसंखा योनिसो चक्खुंद्रिय संवर सज्जतो विहरति। यं हिऽस्स भिक्खवे चक्खुंदिय संवर असंवुत्तस्स विहरतो उप्पज्जेय्युं आसवा विघात परिलाहा चक्खुन्दिय संवरं संवुतस्स विहरतो एवं सते आसवा विघात परिलाहा न होंति।"

भावार्थ–हे भिक्षुओ ! जो भिक्षु आश्रवके कारणोंको ध्यानमें लेता हुआ चक्षु इन्द्रियको रोककर विहार करता है उस साधुके चक्षुइन्द्रियको न रोककर विहार करनेसे जो घातक आश्रव होते वे नहीं होते हैं उनका संवर होजाता है। भावोंकी अपेक्षा कर्मोंके आस्रव व बंधका कथन बिलकुल मिलता है। कर्मोंके पिंड हैं या कर्म वर्गणाएं हैं जो आकर बन्धती हैं, वे रूक जाती हैं। इनका यद्यपि क्रमवार साफ २ कथन अभीतक नहीं देखनेमें आया तथापि कुछ वाक्य ऐसे मिले हैं जिनसे सिद्ध होता है कि कर्मोंका बन्ध भी जैनकी तरह बौद्धमतमें स्वीकार था। उसका पीछे विपाक होना, पकना यह सब स्वीकार था। नीचे लिखे शब्दोंसे प्रगट होगा।

(१) दिग्घनिकाय अगन्ना सुतंत २७ ।

" खत्तियोपि खोवासेट्ठ, कायेन दुच्चरितं चरित्वा, वाचाय दुच्चरितं चरित्वा, मनसा दुच्चरितं चरित्वा मिच्छादिट्ठिको ।"

मिच्छा दिट्ठिकम्म समादान हेतु कायस्सभेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं निरयं उप्पज्जति ।

भा०—हे वशिष्ट ! क्षत्री भी यदि मिथ्यादृष्टि हो व मन वचन कायसे दुष्ट आचरण करें तो मिथ्यादृष्टि कर्मको लिये हुए शरीर छूटनेपर मरणके पीछे दुर्गतिमें जाता है, नर्कमें उपजता है !

(२) दिग्घनिकाय ३ संगीत सुतंत—

जैसे जैन शास्त्रोंमें दर्शनमोहकर्मके तीन भेद हैं वैसे बौद्धोंमें भी तीन ऐसे नाम मिलते हैं " तयोरासि—मिच्छत्त नियतो रासि, सम्मत्त नियतो रासि, अनियतो रासि—यहां रासि शब्द प्रगट करता है कि कोई समूह है—जिसे कर्म समूह ही मानना उपयुक्त होगा । अर्थात् मिथ्यादर्शन कर्मराशि, सम्यक्त कर्मराशि, मिश्र कर्मराशि ।

(३) संस्कृतमें अपरिमितायु सूत्र है—"य इदम् सूत्रं लिखिप्यति तस्य पञ्चान्तरायाणि कर्मावरणानि परिक्षयं गच्छन्ति।" (पृ० २८९, Manuscript remains of Budhist literature in East Turkastan by Hoernle 1916) अर्थात् जो इस सूत्रको लिखेगा उसके पांच अंतराय कर्मावरण नाश होजायगे। इन वाक्योंसे जैनोंके समान पांच अंतराय कर्मोंके ही संबंधका कथन है ।

(५) अहिंसा—जैसे जैनियोंमें कहा है कि स्थावर व त्रसकी रक्षा करो ऐसा ही बौद्ध पाली ग्रंथोंमें है ।

सुत्तनिपात धम्मिक सुत्त।

पाणं न हाने न च घातयेय्य न चानुमन्याहनतं परेसं।
सव्वेसु भूतेसु निधाय दण्डं ये थावरा ये च तसंति लोके॥
कतंहि नाम समणा सक्यपुत्तिया हेमंतंपि गिह्मति वस्सेपि।
चरिक परिस्संति हरितानि तिनानि मद्दतः एकेंद्रियजीवे॥
विहेट्टितः वहु खुद्दके पाणे संघातं आपादयंतः।....

भा०—स्थावर व त्रस सर्व प्राणियोंमेंसे किसी प्राणीको न तो मारो न घात कराओ, न किसी हिंसाकी अनुमोदना करो। कोई२ शाक पुत्रके शिष्य हरे तृणोंको मर्दन करते हुए चलते हैं, एकेन्द्रिय जीवोंको घात करते हैं, वहुत क्षुद्र जन्तुओंको मारते हैं।

विनय पिटक महावग्ग (३-१) में लेख है कि ऐकेंद्रियादि क्षुद्र प्राणियोंका घात न हो इसलिये साधुओंको वर्षामें एक ही स्थानपर रहना चाहिये।

लंकावतार सूत्रमें हरएक बौद्धधर्मपर विश्वास लानेवालेके वास्ते मांसाहारका निषेध है। कुछ वाक्य हैं—इस सूत्रके आठवें अध्यायमें मांस खानेका ही निषेध है—

मद्यं मांसं पलाण्डुं च न भक्षयेयं महामुने।
वोधिसत्वैर्महासत्वैर्भाषद्भिर्जिनपुंगवैः॥ १॥
लाभार्थं हन्यते सत्वो मांसार्थं दीयते धनम्।
उभौ तौ पापकर्माणौ पच्येते रौरवादिषु॥ ९॥
योऽतिक्रम्य मुनेर्वाक्यं मांसं भक्षति दुर्मतिः।
लोकद्वयविनाशार्थं दीक्षितः शाक्यशासने॥ १०॥

त्रिकोटिशुद्ध मांसं वै अकल्पितमयाचितं।
अचोदितं च नैवास्ति तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ॥ १२ ॥
यथैव रागो मोक्षस्य अन्तरायकरो भवेत्।
तथैव मांसमद्याद्य अन्तरायकरो भवेत् ॥ २० ॥

भावार्थ–जिनेन्द्रोंने कहा है कि मदिरा, मांस, प्याज हे महामुनि! किसी बौद्धको न खाना चाहिये। लाभके लिये पशु मारा जाता है, मांसके लिये धन दिया जाता है। दोनों ही पाप-कर्मा हैं। नरकमें दुःख पाते हैं। जो कोई दुर्बुद्धि मुनिके वाक्यको उल्लंघन करके मांस खाता है वह शाक्य शासनमें दोनों लोकके नाशके लिये दीक्षित साधु हुआ है, विना कल्पना किया हुआ व विना मांगा हुआ व विना प्रेरणा किया हुआ मांस हो नहीं सक्ता इसलिये मांस न खाना चाहिये। जैसे राग मोक्षमें विघ्नकारक है वैसे मांस मदिराका खाना भी अंतराय करनेवाला है। साधुओंके लिये इतनी सुगमता दे दी है कि वे ब्रह्मचारीके समान वस्त्र पीले आवश्यक रख सक्ते हैं, स्नान भी कर सक्ते हैं। निमंत्रणसे या भिक्षासे दो प्रकारसे दिनमें १२ बजेसे पहले भोजन कर लेते हैं। पीछे भोजन नहीं करते हैं, पानी आदि लेते हैं।

अंगुत्तरनिकाय तिकनिपात के (१९) रथकार वग्गमें है–भिक्षु प्रातःकाल, मध्याह्नकाल व सायंकाल भलेप्रकार आत्मध्यान करे। इसीके महावग्ग (७०) में कहा है–साधु रात्रिको नहीं खाते हैं व दिनमें एकवार भोजन करते हैं। जैसे जैन लोग जगतका कर्ता व फलदाता ईश्वरको नहीं मानते वैसे बौद्ध लोग भी नहीं मानते, बौद्धोंके मन्दिरोंमें ध्यानमई मूर्तियां वेदीमें इसी तरह विराजमान होती

हैं जैसे जैनियोंमें होती हैं। ये लोग केवल वस्त्रका चिह्न दिखाते हैं, आगे पुष्प, दीप व धूपसे पूजन करते हैं। दण्डवत् करके जैनोंकी तरह नमस्कार करते हैं। बहुधा ये पढ़ते है—"बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।" बर्मा, सीलोनमें इनके विशाल मंदिरोंमें बड़ी २ अवगाहनाकी पद्मासन, कायोत्सर्ग व लेटे निर्वाण आसनकी मूर्तियें हैं। पेगू (वर्मा) में एक मूर्ति निर्वाणकी १८१ फुट लम्बी है। ४५ फुटतककी बहुतसी मूर्तियां रंगूनमें हैं जो बड़ी सुन्दर पद्मासन हैं। केवल हाथ कभी उठे हुए होते हैं। सीलोनकी एक पहाड़ीपर गुफाके भीतर ध्यानमय बड़ी मूर्तियां हैं। ये लोग नंगे पैर विनयसे यात्रा करते हैं।

शिष्य—तब तो जैन और बौद्धका बड़ा भारी घनिष्ट संबंध है।

शिक्षक—दोनोंका तत्वज्ञान एकसा ही है। जैनोंको उचित है कि बौद्धोंके ग्रन्थ देखें तथा बौद्धोंको उचित है कि जैनोंके ग्रन्थ देखें।

शिष्य—परन्तु मैंने यह सुना है कि बौद्ध साधु व गृहस्थ दोनों मांसाहारी हैं, तब अहिंसाका तो कुछ पालन हुआ ही नहीं।

शिक्षक—सब तो नहीं हैं, बहुतसे साधु व गृहस्थ मांस मछली नहीं खाते हैं, बहुतसे खाते भी हैं। जो खाते हैं उनको यह मिथ्या श्रद्धान है कि मांस खरीदनेसे हिंसाका दोष नहीं लगता है जबतक मांसके लिये पशु घात किया न हो, कराया न हो, व पशु घात करनेकी अनुमोदना न की हो। इसीतरह साधुको जो भिक्षामें मिल जावेगा वह लेकर खालेगा। यदि वह मांस मांगे व यह भाव करे कि मांस मिले व किसी प्रकारकी मांसकी प्रेरणा करे जिससे पशु घात हो तब तो उसको हिंसाका दोष लगेगा, नहीं तो साधुको मांस मात्र

भिक्षामें लेनेपर पशु घातका दोष नहीं लगेगा। वे कहते हैं कि यदि साधुने पशु घात होते देखा हो या सुना हो या यह कल्पना की हो कि उसके लिये पशुघात किया गया हो तो उसे मांस मछली न खाना चाहिये, अन्यथा दोष नहीं है। इन सर्व कल्पनाओंका जवाब यह है। जैसे संस्कृत लंकावतार सूत्रमें ही बौद्ध ग्रन्थकर्ताने भलेप्रकार समझा दिया है—जो बाजारमें मांस खरीदेगा, धन देगा, मांस लेगा, वह जानता है कि इस कसाईने कसाईखानेमें पशु घात कराया है या किया है। वह यह भी जानता है कि मांस खानेवाले मांस न खरीदें तो वह मांसकी दूकान न रक्खे तथा धन दिया जावेगा तो फिर दूसरे दिन पशु घात करके मांस बाजारमें लावेगा। ऐसा जानते हुए भी यदि वह मांस खरीदता है तो वह पशु घात करानेके या पशुघातकी अनुमोदनाके दोपसे मुक्त नहीं होसक्ता।

इसी तरह साधु भी यह जानते हैं कि पशु घातके विना मांस नहीं आता है। गृहस्थीका मांस खाना पशु घातकी उत्तेजना देना है। तथा यदि भिक्षामें मैं मांस स्वीकार करूंगा तब अवश्य गृहस्थको यही उत्तेजना मिलेगी कि मांस खानेमें व लेनेमें जैसे साधुको दोप नहीं है, वैसे गृहस्थको भी बाजारसे खरीदनेमें व खानेमें दोप नहीं है। इसलिये साधुको हिंसाके कारण रूप मांसको स्वीकार करते हुए हिंसाकी पसंदगी (approval) का दोप अवश्य लगता है। जैसे कोई देशहितैपी यह संकल्प करे कि मैं स्वदेशी वस्त्र पहनूंगा, जिससे मेरे देशकी कारीगरीको उत्तेजना मिले। तब वह यदि विदेशी वस्त्रको जो खास उसके लिये नहीं बना है, न उससे बनवाया है, स्वीकार करता है तो वह अपने संकल्पको खण्डन करता है व स्व-

देश हितसे बाहर जाता है व विदेशी वस्त्र व्यवहारकी उत्तेजना देता है। ऐसेको स्वदेश भक्त नहीं कहा जायगा किंतु स्वदेश द्रोही माना आयगा। इसी तरह जब मांस बहुधा पशु घातके विना नहीं आता है, इसलिये जगह २ कसाईखाने खूले हैं। पशु निर्दयतासे मारे जाते हैं।

यदि मांसाहारी मांस न खावे तौ पशु कभी भी न मारे जावे ऐसा गृहस्थ व साधु दोनों जानते हैं। जानते हुए भी यदि मांस स्वीकार करते हैं तो उनके मनके भीतर मांसकी पसंदगी होनेसे हिंसा करानेकी उत्तेजनाका दोष अवश्य आयगा। यदि कोई माल बाजारमें बिक रहा है और हमारे मनमें यह शंका होती है कि यह माल चोरीका मालूम होता है क्योंकि बहुत ही अल्प दाममें यह बेच रहा है, ऐसी शंका होनेपर यदि हम उसको खरीद लेते हैं तो हम अवश्य चोरीको उत्तेजना देनेके भागी होनेसे चोरीके दोषसे बिलकुल मुक्त नहीं होसक्ते।

जो कोई मन, वचन, काय व कृत कारित अनुमोदनासे चोरीका त्यागी होगा वह कदापि चोरीका माल नहीं खरीदेगा। इसी तरह जो मन, वचन, काय व कृत कारित अनुमोदनासे हिंसाका त्यागी होगा वह कदापि मांस स्वीकार न करेगा, न खायेगा। यदि यह कहा जावे कि स्वयं मरे हुए पशुका मांस गृहस्थ लोग खावें व साधुको भिक्षामें मिले तौ तो कोई पशु घात करने, कराने व पशु घातकी पसंदगीका दोप नहीं आता है। तौ इसका उत्तर यह है कि मांसाहारकी आदत न पड़ने पावे। इसलिये ऐसा मांस भी नहीं स्वी-स्वीकार करना चाहिये।

जो आदत पड़ जायगी तो उसे पशुघातसे लाया हुआ भी मांस स्वीकार करना पड़ेगा। तथा बाजारमें खरीदते हुए व भिक्षामें लेते हुए यह जानना कठिन है कि यह मांस स्वयं मरे हुए प्राणीका है। शंका अवश्य रहेगी। जिसमें शंका रहे उसको नहीं ही स्वीकार करना चाहिये। जैसे मदिराको किसी भी तरहसे मिले स्वीकार न करना चाहिये क्योंकि मदिराकी आदत अच्छी नहीं है उसी तरह मांसको किसी भी तरहसे मिले स्वीकार न करना चाहिये, क्योंकि मांसाहारकी आदत हिंसाकी उत्तेजनाका कारण होनेसे अच्छी नहीं है। स्वयं मरे हुए प्राणीके मांससे कभी दुर्गंध नहीं जाती है। इसका कारण यह है कि उसमें सड़ान पैदा होजाती है, जिससे बहुतसे कीड़े उसमें पैदा होते हैं। जो मांस खाएगा वह इन कीड़ोंकी हिंसासे बच नहीं सक्ता है। जैनाचार्य श्री अमृतचंद्रने पुरुषार्थ सिद्धयुपायमें मांसाहार निषेधपर नीचे प्रकार लिखा है—

न विना प्राणिविघातान्मांसस्योत्पत्तिरिष्यते यस्मात् ।
मांसं भजतस्तस्मात् प्रसरत्यनिवारिता हिंसा ॥ ६५ ॥

यदपि किल भवति मांसं स्वयमेव मृतस्य महिषवृषभादेः ।
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रितनिगोतनिर्मथनात् ॥ ६६ ॥

आमास्वपि पक्वास्वपि विपच्यमानासु मांसपेशीषु ।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातीनां निगोतानाम् ॥ ६७ ॥

आमां वा पक्वां वा खादति यः स्पृशति वा पिशितपेशीम् ।
स निहन्ति सततनिचितं पिंडं बहुजीवकोटीनाम् ॥ ६८ ॥

भावार्थ—क्योंकि पशुघातके विना मांसकी उत्पत्ति देखनेमें

नहीं आती है। इसलिये जो मांस खाएगा उसको अवश्य हिंसाका दोष आयगा। यदि कोई कहे कि स्वयं मरे हुए बैल व भैंस आदिका मांस खाया जावे तौभी उचित नहीं है क्योंकि उस मांसमें पैदा होनेवाले अनेक कीटोंका घात करना पड़ेगा। मांसकी डली चाहे कच्ची हो या पकी हो या पक रही हो, उसमें हरसमय उसी पशुकी जातिके जंतु पैदा होते रहते हैं जिसका वह मांस है। इसलिये जो कोई ऐसे मांसको भी खाता है व उसका स्पर्श करता है वह करोड़ों जंतुओंकी हिंसा करता है जो उसमें निरंतर पैदा होकर एकत्र हुए हैं।

अन्नादि फलादि स्वयं वृक्षोंसे फलते हैं, ये ही मानवोंका खाद्य होना चाहिये। गोवंश प्रचुर दूध देता है, दूध भी खाद्य होसक्ता है। दूधके लेनेमें पशुका घात नहीं करना पड़ता है। जैसे अपनी माताका दूध पीना है वैसे गो भैंसका दूध पीना है। गो भैंसको घास दाना देकर पालना, उनके बच्चोंकी रक्षा करना फिर जो विशेष दूध मिले सो मानवजाति काममें लेसक्ती है। मांसाहार प्रकृति विरुद्ध है, रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है, शरीरको पुष्टि देनेवाला भी नहीं है। अन्नादि मिलते हुए मांस लेना वृथा ही पशुघातको करानेका मार्ग चलाना है। जैसे मानवोंको अपने प्राण प्यारे हैं वैसे पशुओंको भी अपने प्राण प्यारे हैं।

शिष्य—बौद्धोंमें तो बड़े बड़े विद्वान साधु हैं वे क्या इतना भी नहीं समझते हैं कि मांसाहार पशु घातका कारण है फिर वे इसके त्यागका उपदेश क्यों नहीं करते हैं ?

शिक्षक–जो बौद्ध भिक्षु स्वयं मांसाहार नहीं करते हैं वे तो मांसाहारके त्यागका उपदेश देते हैं। परन्तु जो स्वयं खाते हैं उनसे ऐसा उपदेश हो ही नहीं सक्ता है। वे अपने कृत्यकी पुष्टि करते हैं कि गौतम बुद्धने मांस खानेकी मनाई नहीं की है- केवल प्राणातिघातकी मनाई की है व गौतमबुद्धने स्वयं मांस स्वीकार किया है। पालीसूत्र सीलोनमें रचे गए थे, समुद्रका मध्य द्वीप होनेसे यहांके निवासी मछली खाते हैं। इसलिये सूत्रोंके लिखनेवालोंने दो तीन सूत्रोंमें ऐसा झलका दिया है कि गौतम बुद्धने स्वयं मांस लिया व मांसका निषेध नहीं किया है। इन सूत्रोंका आधार लेकर वे मांसाहारी साधु अपने मनको समझा लेते हैं और मांसाहारको स्वयं भी नहीं छोड़ते हैं और न दूसरोंसे छुड़वाते हैं। लंकावतार सूत्रमें तो बिलकुल स्पष्ट कहा है कि जो कहते हैं कि गौतमबुद्धने मांस खाया व मांस खानेकी प्रेरणा की है वे बौद्ध शासनकी अवज्ञा करते हैं। वहां कहा है "भविष्यति अनागतेऽध्वनि ममैव शासने प्रव्रजित्वा शक्य पुत्रीयत्वं प्रति जानानाः.... रस तृष्णाध्यवसिताः तां तां मांसभक्षणहेत्वाभासां ग्रन्थयिष्यन्ति मम च अभूताख्यानं दातव्यं मन्स्यन्ते तत्तदर्थोत्पत्ति निदानं कल्पयित्वा वक्ष्यन्ति इयं अर्थोत्पत्तिरस्मिन्निदानं भगवता मांसं भोजन मनुज्ञातं कल्पमिति, प्रणीत भोजनेषु चोक्तं स्वयं च किल तथागतेन परिभुक्तमिति–न च महामते कुत्रचित् सूत्रे प्रतिसेवितव्यमित्यनुज्ञातं प्रणीतभोजनेषु वा देशितं कल्प्यमिति।"

भावार्थ–मेरे ही शासनमें भविष्यमें शाक्य संप्रदायी ऐसे साधु होंगे जो मांसरसकी तृष्णाके कारण मांसाहारकी पुष्टिमें मिथ्या

हेतुओंको गूंथकर कहेंगे। मेरे न हुए कथनोंको मानके यह कहेंगे कि भगवानने मांस भोजनकी आज्ञा दी है, स्वयं मांस भोजन किया है व खाने योग्य भोजनोंमें बताया है। हे महामते! मैंने किसी भी सूत्रमें मांस खानेकी आज्ञा नहीं दी है न इसे भक्ष्य पदार्थोंमें कहा है।

शिष्य—यह ग्रन्थ कितना पुराना है व कहां मिलता है?

शिक्षक—यह ग्रन्थ पुराना है, इसकी संस्कृतसे चीनी भाषामें टीका मालवाके गुणभद्रने सन् ४४३ में की थी। इसको ओटनी यूनि० क्युटो (Otani Uuiversity Kyoto Japau) ने संस्कृत मूल सन् १९२३ में छपाया है। सम्पादक Bunyin Nanjid M. A. हैं।

यदि बौद्ध देशोंसे मांस मत्स्यका आहार निकल जावे और वे पाली ग्रंथोंके अनुसार चलने लगें तो श्वेताम्बर जैनोंमें और बौद्धोंमें कोई अन्तर नहीं दिखलाई पड़ेगा। दोनोंके साधु वस्त्र रखते, वस्त्र सहित प्रतिमा बनाते, उसी प्रकार भिक्षासे एकत्र कर भोजन करते हैं। जैनोपदेशकोंका कर्तव्य है कि बौद्ध देशोंमें जाकर उनहींके ग्रन्थोंसे उनको मांस मछली निषेधका उपदेश देकर इसका प्रचार बन्द करावें। हमने जैन बौद्ध तत्वज्ञान हिन्दीमें और Jainism and Budhism इंग्रेजीमें छपवाई है। इसको पढ़नेसे आपको और भी अधिक जैन और बौद्धकी साम्यता मालूम पड़ेगी।

शिष्य—कृपा करके अब यह बताइये कि हिंदू धर्म और जैनधर्ममें क्या साम्यता है व क्या मतभेद है?

बारहवां अध्याय।

भगवद्गीता और जैनधर्म।

शिक्षक-श्रीमद् भगवद्गीता हिन्दू धर्म माननेवालोंका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। गीता प्रेस गोरखपुरसे मुद्रित सटीक पुस्तकको पढ़कर जहां २ जैन धर्मसे साम्यता है व जहां २ नहीं है सो आपके जाननेके लिये कुछ बताता हूं।

जैनसिद्धांतका यह रहस्य है कि वह जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन छः द्रव्योंको सत् मानता है, इन्हींका समुदाय यह जगत् भी सत् है। सत उसे ही कहते हैं जिसमें एक साथ उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य हों; द्रव्य व गुणोंकी अपेक्षा ध्रौव्य व पर्यायोंके पलटनेकी अपेक्षा उत्पाद व्यय होते हैं। इसलिये यह जगत् नित्य अनित्य उभयरूप हैं। जीव कर्म पुद्गलोंके अनादि संयोगसे संसारमें भ्रमण कर रहा है। यह जीव अज्ञानसे अपने स्वरूपको भूले हुए मिश्रित पर्यायको अपनी ही पर्याय मानकर संसारमें आसक्त होरहा है। जब यह जीव इस मिथ्या बुद्धिको त्यागता है और अपनेको पहचानता है कि मैं कर्मपुद्गलोंसे भिन्न एक शुद्ध ज्ञाता दृष्टा वीतराग पदार्थ हूं—मेरा सच्चा सुख मेरे हीमें है। मैं स्वयं परमात्मा स्वरूप हूं तब इसकी आसक्ति संसारसे दूर होजाती है और यह मोक्षका या अपने स्वरूपका प्रेमालु हो जाता है तब पूर्वकृत कर्मोंके उदयके अनुसार यह जिस गतिमें रहता है अनासक्त हुआ रहता है। पाप व पुण्यका फल ज्ञातादृष्टा होकर भोगता है तब वे कर्म झड़ जाते हैं, नवीन बन्ध नहीं होते हैं।

जितना अंश राग होता है उतना अंश कुछ कर्मबन्ध होता भी है परन्तु वह ज्ञानी सम्यग्दृष्टी जीव उस कर्मबन्धसे भी आसक्त नहीं होता है। इसलिये जितना उसका योगाभ्यास या आत्मानुभव बढ़ता जाता है उतनार अधिक झड़ता है व अल्प कर्म बन्धता है। जब-तक गृहस्थमें रहता है वह जलमें कमलवत् अनासक्त रहता हुआ गृहस्थ योग्य सर्व कार्य करता हुआ भी मोक्षमार्गपर ही बढ़ता चला जाता है, क्योंकि उसका प्रेम निज तत्वपर है--पर तत्वसे वैराग्यवान है। उस ज्ञानीका सर्व कर्म निष्काम कर्म कहलाता है। वह परोपकार दान धर्म करता हुआ उससे किसी लौकिक व पारलौकिक फलकी कामना नहीं रखता है। वह तो एक शुद्ध स्वभावका ही प्रेमी रहता है। वह केवल एक स्वतंत्रता या स्वाधीनताकी ही भावना रखता है। जब उसका राग बहुत क्षीण होजाता है, वह विरक्त साधु होजाता है और परिग्रह त्यागकर आत्मध्यानका विशेष अभ्यास करता है। जब ऐसा आत्मानुभव रूप समाधिभाव पुष्ट होजाता है कि दुर्वच-नोंका सुनना द्वेष नहीं पैदा करता है। शरीरपर वध बन्धनादि व उपसर्ग पड़ते हुए भी क्रोधभाव नहीं आता है। शरीरके कुचलनेपर भी आत्मस्थ दृढ़ रहता है ऐसा समाधिभावमें स्थित मुनि बहुत अधिक कर्मोंको दूर करता है। वीतरागताका पूर्ण अंश होनेपर नवीन कर्म-बन्ध नहीं करता है। क्योंकि बन्धका कारण राग, द्वेप, मोह है तब यह जीवन्मुक्त परमात्मा या अर्हंत् होजाता है। फिर शरीरकी आयु-प्रमाण रहकर आयु क्षयके पीछे शुद्ध सिद्ध परमात्मा मोक्षरूप हो जाता है। अपनेसे ही अपना उद्धार होजाता है, अपनेसे ही अपना बिगाड़ होता है। यह जैन सिद्धांतका मर्म है।

गीताके नीचे लिखे श्लोकोंसे जैनधर्मके रहस्यसे साम्यता झलकती है:—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ १६-२॥

भा०—असत् वस्तुका तो अस्तित्व नहीं है। सत्का अभाव नहीं होता है। तत्वज्ञानियोंने इन दोनोंका ही सार जाना है।

नोट—इससे सिद्ध है कि इस जगतमें जो कुछ है वह सत रूप है, कभी अभाव नहीं था. न कभी होगा। इससे अनादि अनंत जगत सिद्ध होता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥२०।२

भा०—यह आत्मा न कभी जन्मा है, न कभी मरा है, न यह आत्मा होकरके फिर होनेवाला है। क्योंकि यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत् है, पुरातन है। शरीरके नाश होनेपर भी वह नाश नहीं होता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥ ५६।२॥
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ ५७।२॥
यदा संहरते चायं कूर्मोऽगानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ ५८.२॥

भा०—जिसका मन दुःखोंके पड़नेपर घबड़ाता नहीं: सुखोंकी प्राप्तिकी इच्छा नहीं करता है, जिसने राग, भय व क्रोधको नष्ट कर

दिया है वही मुनि स्थिरबुद्धि कहलाता है। जो सर्वसे स्नेह छोड़कर अच्छी बुरी वस्तुओंको प्राप्त करके न प्रसन्न होता है, न द्वेष करता है, उसीके भीतर प्रज्ञा अर्थात् भेदबुद्धि (भेदविज्ञान) स्थिर है। जैसे कछुआ अपने अंगोंको सब ओरसे समेट लेता है, उसी तरह जो अपनी इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके विषयोंसे समेट लेता है उसीकी प्रज्ञा स्थिर है!

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९।२॥

भा०—जो सर्व प्राणियोंको रात्रि है उसमें संयमी जागता है अर्थात् शुद्ध आत्मज्ञानमें मग्न रहता है। जिस क्षणिक विषयसुखमें प्राणी जागते है उसमें मुनि रात्रिको ही देखते हैं।

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१-२ ॥

भा०—जो पुरुष सर्व कामनाओंको त्यागकर इच्छारहित, ममतारहित, अहंकार रहित आचरण करता है वही शांतिका दाता है।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९-३ ॥

भा०—इसलिये अनासक्त होकर तू निरंतर कर्तव्यकर्मको कर क्योंकि जो अनासक्त हो कर्म करता है वह पुरुष परमात्मा पदको पाता है।

न मा कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बद्ध्यते ॥ १४-४ ॥

भा०—मुझे कर्मोंके फलकी इच्छा नहीं है इसलिये मुझे कर्म

नहीं लिप्ते हैं। इस तरह जो आत्माको जानता है वह कर्मोंसे नहीं बंधता है।

यदृच्छालोभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वाऽपि न निबद्धयते ॥२२-४॥

भा०—अपने आप जो कुछ प्राप्त हो उसमें ही संतुष्ट रहनेवाला हर्ष शोक द्वन्दसे रहित, ईर्षारहित, सिद्धि व असिद्धिमें समभाव रखनेवाला पुरुष कर्मोंको करके भी नहीं बंधता है।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥ ३७-४ ॥

भा०—हे अर्जुन! जैसे जलती हुई आग ईन्धनको भस्म कर देती है, वैसे ही आत्मज्ञानकी अग्नि सर्व कर्मोंको भस्म कर देती है।

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमाचिरेणाधिगच्छति ॥३९।४॥

भा०—श्रद्धावान आत्मज्ञानको पाता है। आत्मज्ञानमें लीन इन्द्रियोंको संयममें रखता है फिर वही पूर्ण ज्ञानको पाकर परमशांतिको शीघ्र ही पालेता है।

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५--६ ॥

भा०—अपने आत्माका उद्धार अपनेसे करे, अपने आत्माको दुःखित न रक्खे, आत्मा ही आत्माका मित्र है तथा आत्मा ही अपना शत्रु है।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १०-६ ॥

तत्रैकाग्र्यं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२-६ ॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३-६ ॥
प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४-६॥
युंजन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी नियतमानसः ।
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५-६ ॥

भा०--योगी मनका विजयी वासनारहित व परिग्रहरहित एकांतमें अकेला ही बैठा हुआ निरंतर आत्माका ध्यान करे। वहां मनको एकाग्र करके इन्द्रियोंको व मनको वश रखता हुआ आसनपर बैठकर आत्माकी शुद्धिके लिये योगका अभ्यास करे। काय, मस्तक व गलेको समान व निश्चल धारकर, दृढ़ होकर अपने नाकके अग्रभागको देखता हुआ, अन्य दिशाएं न देखता हुआ--शांतचित्त हो, भयरहित हो, ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित हो, मनको संयम करके आत्मामें उसे जोड़कर आत्मामें लीन रक्खे। इस तरह योगी मनको निश्चल रखता हुआ सदा अपने आत्माका ध्यान करे। जिससे वह आत्मामें स्थितिरूप निर्वाणकी उत्कृष्ट शांतिको प्राप्त करेगा।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतींद्रियं ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१-६ ॥

भा०—जहां वह योगी इन्द्रियोंसे परे ज्ञानगम्य परम सुखको अनुभव करता है, फिर वह निजतत्वमें स्थित हुआ उससे चलायमान नहीं होता है।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१-८ ॥

भा०—जो अप्रगट अविनाशी कही गई है उसे ही परमगति (मोक्ष) कहते हैं। उसे पाकर कोई पीछे नहीं होते हैं, वही आत्माका परम धाम है ।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनन्तरम ॥ १२-१२ ॥

भा०—ज्ञानशून्य अभ्याससे ज्ञान प्राप्त करना अच्छा है। ज्ञानसे आत्मध्यान श्रेष्ठ है, ध्यानसे कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है—त्यागसे तत्काल परमशांति होती है ।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३-१२ ॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५-१२ ॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६-१२ ॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७-१२॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ १८-१२ ॥

भा०—जो सर्व प्राणियोंपर द्वेषरहित हो, सबसे मैत्रीभाव रक्खे, दयावान हो, ममता व अहंकारसे रहित हो, दुःख व सुखमें समान हो, क्षमावान हो, जिससे कोईको भय न हो व जो स्वयं भी भय

रहित हो। जो हर्ष, ईर्षा, भय, उद्वेगसे रहित हो वही मेरेको प्रिय है अर्थात् वही आत्मप्रेमी है। जो इच्छा रहित हो, पवित्र हो, चतुर हो, उदासीन हो, दुःख भावरहित हो, सर्व आरम्भका त्यागी हो, आत्मामें भक्त हो वही आत्मप्रेमी है। जो कभी न हर्ष करता है न द्वेष करता है, न शोक करता है न कामना करता है, जो शुभ या अशुभ भावोंका या फलोंका त्यागी है वही भक्त है, वही आत्मप्रेमी है। जो शत्रु मित्रमें, मान अपमानमें, शीत व उष्णमें, सुख व दुःखमें समान हो व परिग्रहरहित हो (वही आत्मरमी है)।

भा०—अहिंसा, सत्य, क्रोधका अभाव, त्याग, शांति, परनिंदाका त्याग, प्राणियोंपर दया, लोलुपतारहितपना, मार्दवभाव, लज्जा व चपलताका अभाव, प्रभाव, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, वैर रहितपना, अभिमान रहितपना ये सब संपत्तियां पुण्यवान पुरुषके होती हैं।

नोट—ऊपर लिखित जो श्लोक दिये गए हैं इनका सब तात्पर्य जैन सिद्धांतसे मिल जाता है। जैन सिद्धांतमें सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी एकताको मोक्षमार्ग कहा है, जो निश्चयसे एक आत्मध्यान ही है, जहां आत्मामें परमात्मारूपकी श्रद्धा हो, इसीका ज्ञान हो व उसीमें आचरण हो या लीनता हो। इसी मोक्षमार्गके प्रेमीको सम्यग्दृष्टी कहते हैं। सम्यग्दृष्टि परम तत्वको जानता हुआ आत्माके अतीन्द्रिय आनंदका आसक्त होता है। उसकी तृष्णा इन्द्रियोंके नाशवन्त अतृप्तिकारी पराधीन सुखसे छूट जाती है। वह इस लोककी कोई संपत्तिको नहीं चाहता है। केवल आत्मानंदकी भावना करता है जो उसको आत्मध्यानसे आप ही प्राप्त हो जाती है। ऐसा तत्वज्ञानी गृहस्थमें रहते हुए जो कुछ पूर्व कर्मके उदयसे सुख

या दुःख होता है उसमें समान भाव रखता है। क्षणिक सुखके होनेपर उन्मत्त नहीं होता है। दुःखोंके पड़नेपर घबराता नहीं। वह लौकिक व पारलौकिक कार्योंको विना इच्छाके विना बदलेमें उसका फल चाहे हुए करता है। इससे वह तीव्र कर्मोंसे नहीं बन्धता है। उसको संसारके भ्रमण करानेवाले कर्मोंका बंध नहीं होता है। जितना अंश रागादिका अंश होता है उतना कर्मका बन्ध होता है। गाढ़ चिकना बन्ध नहीं पड़ता है क्योंकि वह संसारमें अलिप्त है। ऐसे तत्वज्ञानी सम्यक्तीकी क्रियाको निष्काम कर्म कहते हैं। क्योंकि वह फलको नहीं चाहता है। वह भीतरसे सर्व कामनाओंका त्यागी है।

यदि ऐसे सम्यक्तीके पूर्वमें बांधा हुआ मोह कर्म न हो तब तो यह दो घड़ी ही आत्मध्यानमें परिग्रह रहित व मनको सर्व आरम्भोंसे रोक करके जोड़ दे तो केवलज्ञानको प्राप्त करके जीवन्मुक्त या अरहंत होजावे। परन्तु पूर्वबद्ध मोहके विपाकसे यह पूर्ण वैराग्यवान जबतक नहीं पाता है गृहस्थावस्थामें जलमें कमलवत् रहता है। जब आत्मानुभवके अभ्याससे मोह घट जाता है तब स्वयं साधु होजाता है। साधु मदमें वह अकर्मण्य नहीं होता है। जिस समय या जितनी देरतक आत्मध्यानमें उपयोग लगता है, ध्यान करता है। जैन शास्त्रानुसार कोई भी ध्याता एक ध्येयपर ४८ मिनिटसे अधिक नहीं जमसक्ता है। ध्यान अति सूक्ष्म तत्व है। यदि कोई साधु ४८ मिनिटके अनुमान जमा रहे तो उसे केवलज्ञान होजावे। शक्तिके अभावसे नहीं जमा सक्ता है। इसलिये रात दिनमें बहुतसा समय साधुको आत्मानुभवसे बाहर मन, वचन, कायकी क्रियामें विताना पडता है। तब ज्ञानी साधुको उचित है

कि जगतके उपकारमें मन, वचन, कायको लगाकर सफल करता रहे। कभी भी आलसी न होवे, कर्मयोग व ज्ञानयोग साथ ही चलते हैं, निर्विकल्प समाधि ज्ञानयोग है, सविकल्प विचार व कार्य कर्म-योग है। एकके पीछे दूसरा हुआ करता है। अंतमें ज्ञान योगसे मुक्ति होती है। सम्यग्दृष्टि तत्वज्ञानीके भोग कर्मोंके छूटनेके लिये है ऐसा श्री कुंदकुंदार्य समयसारमें कहते हैं—

उवभोजमिंदियेहिय दव्वाणमचेदणाणमिदराणं।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं ॥२०२॥

भा०—सम्यक्दृष्टी मुमुक्षु तत्वज्ञानी जो कुछ इन्द्रियोंके द्वारा अचेतन तथा चेतन पदार्थोंका भोग करता है वह सब कर्मोंकी निर्जराके लिये है। (क्योंकि वह उनमें रंजायमान नहीं है। जैसे—रोगी कडवी दवा खाते हुए उसमें रागी नहीं है।)

सेवंतोवि ण सेवदि असेवमाणोवि सेवगो कोवि।
पगरणचेट्ठा कस्सवि णयपायरणोत्ति सो होदि ॥२०६॥

भा०—तत्वज्ञानी भीतरसे वैरागी भोगोंको भोगता हुआ भी भोगता नहीं है। अज्ञानी भोगासक्त भोगोंको न भोगते हुए भी भोगनेवाला है। कोई किसीके यहां विवाहादि कामके लिये जाकर काम करता है परन्तु उस कामका स्वामी नहीं होता है जब कि न काम करनेवाला घरका स्वामी उसमें तीव्र रागी है।

श्री अमृतचन्द्राचार्य समयसार कलशमें कहते हैं—

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत् स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञानवैभवविरागताबलात्सेवकोऽपि तदसावसेवकः ॥ २-७ ॥

भा०—सम्यक्दृष्टी ज्ञानी विषयोंको सेवते हुए भी विषय-सेवनका फल कर्मबन्धको नहीं पाता है क्योंकि उसके भीतर ज्ञानकी विभूति है व वैराग्यका बल है इसलिये वह सेवता हुआ भी नहीं सेवनेवाला है।

जिस आसनसे ध्यान जैन शास्त्रोंमें वताया है वही यहां गीतामें अध्याय ६ में श्लोक १०, १२, १३, १४, १५से वताया है। इसी ध्यानमई आकारको दिखलानेवाली मूर्ति भी जैन लोग बनाते हैं व उसके ध्यानकी सिद्धिमें मदद लेते हैं। ऊपर दिये हुए गीताके श्लोक नं० १४।४, २१।४, ३६।४ से यह प्रगट है कि कर्मोंका बन्ध होता है व कर्मोंको भस्म किया जाता है। यहां कर्मसे प्रयोजन वही झलकता है जैसा जैनसिद्धांतने सात तत्वोंमें आस्रव, बन्ध, संवर व निर्जरातत्वमें वताया है। बंध शब्द व भस्म शब्द प्रगट करता है कि कोई सूक्ष्म स्कंध हैं जिनसे कारण शरीर बनता है, इसीको जैन लोग कार्मण शरीर कहते हैं। उन सूक्ष्म स्कंधोंको कार्मण वर्गणाएं कहते हैं। हमारे तत्वप्रेमी अजैन बंधुओंको उचित है कि कर्मबंधके सिद्धांतका गहरा विवेचन जैन शास्त्रोंकी सहायतासे जाने। मुख्य ग्रन्थ श्री नेमिचन्द सिद्धांत चक्रवर्ती कृत श्री गोमटसार कर्मकांड है इसका हिंदी व इंग्रजी दोनोंमें उल्था मिलता है, बहुत उपयोगी है। यदि जैन सिद्धांतका मनन किया जायगा तो गीताके ऊपर लिखित श्लोकोंका भाव और भी स्पष्ट सत्य-खोजीको झलक जायगा।

जैन सिद्धांत यह मानता है कि परमात्मा शुद्ध कृतकृत्य परमानंदमय है, वह जगतको न बनाता है और न वह जगतके प्राणि-

योंको सुख दुःख देता है। जगतमें बहुतसे पदार्थोंकी रचना स्वभावसे हुआ करती है। जैसे—मेघ बनना, पानी वरसना आदि। बहुतसे कामोंको संसारी प्राणी अपनी इच्छासे प्रयत्न करके करते हैं। जैसे—चिड़ियाका घोसला बनना, मकड़ीका जाला बनना, कपड़ा बुनना, मकान बनना आदि। तथा कर्मोंका फल भी स्वभावसे उसी तरह होजाता है जैसे भोजन व औषधि पेटमें जाकर स्वयं रुधिर बनाती है व वीर्यको उत्पन्न करती है जिसके फलसे हम काम करते हैं। गीतामें भी इसी तत्वको नीचेके श्लोकोंमें झलकाया है—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥ १४-५॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥ १५-५॥

भा०—ईश्वर प्रभु लौकिक प्राणियोंके न कर्तापनेको न कर्मोंको न कर्मोंके फलके संयोगको वास्तवमें रचता है किंतु स्वभावसे ही प्रवृत्ति होती है। परमात्मा न किसीके पाप कर्मको न किसीके पुण्य कर्मको ग्रहण करता है, अज्ञानसे प्राणियोंका ज्ञान ढका हुआ है इससे जगतके प्राणी मोहित होरहे हैं।

नोट—यहां भी आवृत शब्द किन्हीं सुक्ष्म स्कंधोंका बोधक है जो ज्ञानको ढकते हैं इसीको जैनसिद्धांतमें ज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

शिष्य—तब क्या गीतामें जैनसिद्धांत भरा है?

शिक्षक—जैन सिद्धांतसे मिलता कथन तो अवश्य है। हिंदुओंमें सांख्य सिद्धांत एक ऐसा दर्शन है, जिसका कथन बहुत

अंशमें मिल जाता है। सांख्य प्रकृति (जड़) और पुरुष (आत्मा)-को अनादि मानता है। जैसे—जैन सिद्धांत पुद्गल और जीवको अनादि मानता है। प्रकृति और पुरुषका संयोग ही संसार है। व प्रकृतिका पुरुषसे छूट जाना ही सांख्यमें मोक्ष है। इसी तरह जैनोंमें कर्म पुद्गलोंका संयोग संसार है, कर्म पुद्गलोंका छूट जाना मोक्ष है। गीतामें बहुतसा कथन सांख्य दर्शनके अनुसार है। जैसा नीचेके श्लोकोंसे झलकता है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ २७-३ ॥

भावार्थ—सर्व कर्म प्रकृतिके गुणों द्वारा किये हुए हैं। तौभी अहंकारसे मोहित हुए अन्तःकरणवाला पुरुष मैं कर्ता हूं ऐसा मान लेता है—

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५-५ ॥

भावार्थ—जो स्थान सांख्योंके द्वारा प्राप्त किया जाता है वही योगोंके द्वारा प्राप्त किया जाता है इसलिये जो सांख्य और योगको एक समझता है वही यथार्थ देखता है। यहां उल्थाकारने सांख्यको निष्काम कर्मयोग व योगको ज्ञानयोग कहा है—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३-७॥

भा०—सात्विक, राजस, तामस इन तीन प्रकारके भावोंसे अर्थात् रागद्वेष विकारोंसे यह सब जगत मोहित होरहा है इसलिये इन तीनोंसे परे अविनाशी आत्माको नहीं जानता है।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि।
विकाराश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ २०-१३ ॥

भावार्थ—प्रकृति और पुरुष दोनोंको ही अनादि जान रागादि विकारोंको व सत्व, रज, तम गुणोंके प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुआ जान।

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २१-१३ ॥

भावार्थ—कार्य कारणके उत्पन्न करनेमें हेतु प्रकृति कही गई है। जीव सुख दुःखोंके भोगनेमें हेतु कहा जाता है।

शिष्य—जैन दर्शन और सांख्य दर्शनमें अंतर क्या है?

शिक्षक—सूक्ष्म अंतर यह है कि जैनदर्शनमें आत्माको परिणमनशील माना है। क्योंकि वह द्रव्य है। जो२ द्रव्य होता है वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप होता है। उसमें पर्यायें होती हैं। इसलिये परिणमनशील है। जब एक पर्याय उत्पन्न होती है पुरानी पर्यायका व्यय होता है तथापि आत्मद्रव्य वही है। मोहनीय कर्मके निमित्तसे आत्मा रागद्वेष भावोंमें परिणमन कर जाता है उस समय उसमें शांत व वीतराग भाव नहीं होता है। जब रागद्वेष भाव नाश होता है तब वीतराग भाव पैदा होता है। सांख्य सिद्धांतमें पुरुष या आत्माको अपरिणामी तथा अकर्ता माना है। सर्व कार्यमें प्रकृति को ही कर्ता माना है। जैसे कहा है—

"पुरुषस्यापरिणामित्वात्" (१८ पाद ४ योगदर्शन पातांजल १९०७ में छपा) अर्थात् आत्मा परिणमन रहित है "अकर्तुरपि फलोपभोगी अन्नादिवत्" (सांख्य दर्शन छपा सं० १९५७)

अर्थात् अकर्ता पुरुष है तौभी फल भोगता है। जैसे किसान अन्न पैदा करता है राजा भोगता है। जैन सिद्धांत कहता है कि यदि द्रव्य दृष्टिसे वस्तुके स्वभावकी अपेक्षा विचार करो तो यह आत्मा नित्य अपने स्वभावमें रहनेवाला न राग द्वेषका कर्ता है और न सुख दुखका भोक्ता है। परन्तु जब कर्म संयोगकी अपेक्षा विचार किया जायगा तब जैसे यह राग द्वेषादि भावोंका कर्ता है वैसे मैं सुखी, मैं दुःखी इन भावोंका भोक्ता भी है। कर्मका फल भोगे और कर्ता कोई और हो यह नहीं बन सक्ता है। किसान खेती करके उसका फल अपना पालन फल भोगता है। राजा प्रजाकी रक्षा करता है इसलिये किसान द्वारा दिया हुआ कर लेकर उसे भोगता है। जिस दृष्टिसे भोक्ता है उस दृष्टिसे कर्ता भी है। जिस दृष्टिसे अकर्ता है उस दृष्टिसे अभोक्ता भी है। यदि पुरुषके परिणमन न माना जावे तो वह संसारमें मोही हो ही नहीं सक्ता है। परिणमन माननेसे ही संसार और मोक्ष दोनों बन सक्ते हैं। अकेली जड़ प्रकृतिमें ज्ञानमई रागादि नहीं होसक्ते हैं। जब मोह कर्मका विपाक होता है, तब आत्माका चारित्रभाव ढक जाता है व रागद्वेष भाव होजाता है। जैसे स्फटिकमणिमें लाल रङ्गकी उपाधि लगने-पर स्फटिकमणिका निर्मलपना ढक जाता है लालपना प्रगट होजाता है-स्फटिकके विना केवल लाल रङ्गके कांतिका होना असंभव है। इसी तरह पुरुषके विना केवल प्रकृतिके रागद्वेष होना असंभव है। प्रकृतिके संयोगवश आत्माके ज्ञानमें विकार होते हैं। यदि पुरुष या आत्माको परिणाम रहित मानेंगे तो वह [illegible] [illegible] ही रहना चाहिये। सो ऐसा प्रत्यक्षमें दीखता नहीं। [illegible] [illegible] [illegible]

नहीं दीखती। कभी क्रोधी होता है, कभी शांत होता है। दोनों बातें एक साथ पुरुषमें नहीं दीखती हैं। क्योंकि यह ज्ञानकी एक पर्याय है। अवस्था एक प्रकारकी एक समय रहती है। जब वह अवस्था मिटती है, तब दूसरी पैदा होती है। इसीलिये जैनसिद्धांतने आत्मा व पुद्गल प्रकृति सबको नित्य व अनित्य उभयरूप माना है, द्रव्य अपेक्षा नित्य हैं, पर्यायकी अपेक्षा अनित्य हैं। सर्वथा नित्य माननेसे क्या दोष आयगा उसे श्री समन्तभद्राचार्यने आप्तमीमांसामें कहा है–

नित्यत्वैकांतपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलं ॥ ३७ ॥

भा०- पदार्थको यदि एक ही अपेक्षासे नित्य ही माना जावेगा तो उसमें कोई विकार या परिणाम या अवस्थाएं नहीं होसक्ती हैं। जब कर्ता, कर्म, करण आदि कारक न होंगे तब न उसमें मिथ्याज्ञान हटकर यथार्थ ज्ञान होगा और न उसके ज्ञानका फल होगा कि यह त्याग करो व यह ग्रहण करो। अनेकांतमय स्वभाव वस्तुका माननेवाला जैनदर्शन है। एक ही अपेक्षा जीवको अकर्ता माननेसे उसके संसारका अभाव आता है। व्यवहारकी अपेक्षा कर्ता है, निश्चयकी अपेक्षा अकर्ता है, इसी सूक्ष्म अंतरसे जैनदर्शन व सांख्य दर्शनका मतभेद है। वैसे बहुत अंशमें एकता है।

शिष्य–क्या गीतामें कोई और दर्शन भी झलकता है ?

शिक्षक–गीताके नीचे लिखे श्लोकोंसे वेदांत दर्शन भी झलकता है जिसका यह सिद्धांत प्रगट है यह दृश्य जगत व दर्शक दोनों एक हैं। ब्रह्मरूप जगत है, ब्रह्म हीसे पैदा हुआ है, ब्रह्म हीमें

लय हो जायगा। (वेदांतदर्पण व्यासकृत सं० १९५९) ब्रह्मका लक्षण है "जन्माद्यस्य अत इति" (सूत्र १ अ० ८) अर्थात् जन्म, स्थिति, नाश उससे होता है।

"आकाशस्तल्लिंगात्" (सूत्र २२ अ० २)--आकाश भी ब्रह्म है, ब्रह्मका चिह्न होनेसे।

"कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः" (वेदांत परिभाषा परि० ७)--यह जीव कार्यरूप उपाधि है, कारणरूप उपाधि ईश्वर है। वेदांतका सिद्धांत यही प्रगट है कि वहां एक ब्रह्मकी ही वास्तविक सत्ता है। यह जगत ब्रह्मका ही विकाश है--वही सब कुछ है।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥ ६-४॥

भा०--मैं अविनाशी स्वरूप अजन्मा होनेपर भी तथा सर्व भूत प्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको आधीन करके अपनी मायासे प्रगट होता हूं।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ ७-४॥

भा०--जब जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है तब तब ही मैं अपने रूपको रचता हूं--प्रगट करता हूं।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ ८-४॥

भा०--साधुओंकी रक्षाके लिये, दुष्टोंके नाशके लिये व धर्मके स्थापनके लिये मैं युग युगमें प्रगट होता हूं--

सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृतिं यांति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहं ॥ ७-९ ॥
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८-९ ॥

भा०—हे अर्जुन ! कल्पके अंतमें सब भूत मेरी प्रकृतिको प्राप्त होजाते हैं । और कल्पकी आदिमें उनको मैं फिर रचता हूं। अपनी प्रकृतिको अंगीकार करके मैं परतंत्र इस सर्व प्राणी समुदायको वारवार उनकी प्रकृतिके अनुसार रचता हूं—

यच्चापि सर्वभूतानां वीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥३९-१०॥

भा०—हे अर्जुन ! जो सर्वभूतोंकी उत्पत्तिका कारण है वह भी मैं ही हूं । क्योंकि ऐसा वह चर व अचर कोई भी भूत नहीं है कि जो मेरेसे रहित होवे। इसलिये सब कुछ मेरा ही स्वरूप है।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥ ४६-१८ ॥

भा०--जिससे सर्व भूतोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सर्व जगत व्याप्त है उस परमेश्वरको अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त होता है ।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ ६१-१८ ॥

भा०--शरीररूपी यंत्रमें आरूढ़ हुए सर्व प्राणियोंको ईश्वर अपनी मायासे भ्रमाता हुआ सर्व भूत प्राणियोंके हृदयस्थानमें विराजित है।

शिष्य--सांख्य और वेदांतसे अन्तर मालूम पड़ता है। सांख्य तो ईश्वरको कर्ता व फलदाता नहीं मानता है ; वेदांत तो ईश्वरको ही कर्ता मानता है व जगतको ईश्वररूप ही मानता है। ऐसे दो सिद्धांत एक पुस्तकमें क्यों ?

शिक्षक--वक्ताकी इच्छा अनुसार दो प्रकारके सिद्धांतोंसे ही ईश्वरको बताया गया है। जिसको जो रुचे सो माने। जैन वेदांतका इस सम्बन्धमें बहुत अंतर है क्योंकि जैन द्वैतसिद्धांत है। छः द्रव्योंकी मूल सत्ता मानता है जब कि वेदांत एक ब्रह्मको ही मानता है। वेदांतकी अपेक्षा सांख्यसे जैन दर्शनका साम्य अधिक है।

शिष्य--क्या कोई अपेक्षा है जिससे वेदांतका और जैनका साम्य होसक्ता है ?

शिक्षक--शुद्ध निश्चय नयसे सर्व जीव एक जातिमय शुद्ध है। तथा सर्व लोक जीवोंसे व्याप्त है, इस अपेक्षा यह विश्व जीव-रूप है या ब्रह्मरूप है। एक तत्वज्ञानी अपनी दृष्टि सर्व अजीवोंसे हटाकर समताभाव लानेके लिये एक ब्रह्ममय जगतको अनुभव करता है तब उसे एक ब्रह्म ही दिखता है। अथवा जब ध्याता ध्यानमें लीन होकर आत्मानुभवमें जम जाता है तब वहां उसके अनुभवमें कोई तर्क वितर्क विचारोंकी तरंगें नहीं होती हैं, एक अद्वैत आत्म-भाव ही स्वादमें आता है। ध्याताकी अपेक्षा मानो सिवाय एक अद्वैतके और कुछ है ही नहीं ऐसा झलकता है। यदि वेदांतके अद्वैत सिद्धांतका यह भाव हो जो जैन सिद्धांतसे एकता होजाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पदार्थोंकी सत्ता ही मिट जाती

है, पदार्थ रहते हैं, जड़ व अन्य चेतन पदार्थ रहते हैं परन्तु ध्याताके स्वानुभवमें एक आत्मीक आनन्दके स्वादके और कुछ नहीं भास रहा है। यदि वेदांतका यह मत हो कि विश्वमें और पदार्थकी सत्ता ही नहीं है, सत्ता मानना ही भ्रम है, केवल एक ब्रह्मकी ही सत्ता है वही विश्व-रूप होता है, वही विश्वरूप समेट लेता है, वही नाना अवतार धारण करता है, उसीकी सब माया है तौ तो जैन सिद्धांतसे अंतर पड़ता है। क्योंकि जैन दर्शन छः द्रव्योंकी व उनमें भी अनंतानंत आत्माओंकी व पुद्गलोंकी सत्ता सदा मानता है। मोक्ष प्राप्त आत्माएं भी भिन्न सत्ताको रखती हुई स्वात्मानंदमें मगन रहती हैं। स्वात्मानुभवीकी अपेक्षा एक अद्वैतभाव ही स्वानुभवमें झलकता है ऐसा श्री अमृतचंद्र आचार्यने समयसार कलशमें कहा है:—

उदयन्ति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं।
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रं॥
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मि-।
न्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव॥ ९-१॥

भा०—जब स्वात्मानुभव प्रकाशमान होता है जो अनुभव सर्व तेजोंको मन्द करनेवाला है तब नयोंकी या अपेक्षाओंकी लक्ष्मी उदय नहीं होती है। प्रमाण प्रमेय प्रमितिका विचार नहीं आता है। नाम स्थापनादि निक्षेप मालूम नहीं कहां विलय होजाता है और अधिक क्या कहे, वहां कोई द्वैत ही नहीं भासता है। एक अद्वैत आत्मरस ही स्वादमें आता है।

जयति सहजतेजःपुंजमज्जत् त्रिलोकी ।
स्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः ॥
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्वोपलम्भः ।
प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥ २९-११ ॥

भा॰-स्वानुभवके समय सहज आत्मतेजके पुंजमें मानों तीन लोक डूब गये हैं, सर्व विकल्प दूर होगये हैं, एक ही स्वरूप झलक रहा है। आत्मिक रसके विस्तारके पूर्ण अखण्ड एक तत्वका लाभ होगया है। वहां अत्यंत निश्चल आत्मज्योतिका ही चमत्कार होरहा है। यही वेदांत है, ज्ञानका अन्त है, ज्ञानका सार है। जहां आपको आपका ही स्वाद आवे वही सिद्धांतका सार है। जैनधर्मका यह विवेचन स्वानुभवकी दशाका है। यदि वही ध्याता ध्यानसे हटे व विचारोंमें लगजावे तो उसे फिर यह छहों द्रव्य भेद प्रभेद सब दिखलाई पड़ेंगे। फिर जब वह स्वानुभवमें लय होगा, एक अद्वैत आत्मरसका ही पान करेगा।

तेरहवां अध्याय ।

जैनधर्म और हिंदू दर्शन ।

शिष्य–हिंदुओंके मुख्य२ दर्शनोंका और जैनदर्शनका क्या साम्य है व क्या असाम्य है थोड़ासा बता दीजिये जिससे मुझे मुकावला करनेपर सुभीता हो ।

शिक्षक–यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो मैं संक्षेपसे बताता हूं और इस विवेचनमें डाक्टर शिवाजी गणेश पटवर्धन एम० बी० (होमियो) अमरावती (वरार) लिखित हिंदूधर्म-मीमांसा (छपी सन् १९२४) पुस्तकका सहारा लेकर कुछ कहता हूं—

(१) न्यायदर्शन—

न्यायदर्शनके प्रवर्तक गौतम ऋषि हैं । इनका यह मत है कि संसार दुःखमय है । इससे छूटनेका उपाय तत्वज्ञान है । जब राग-द्वेष मोह नष्ट होजावेंगे तब मोक्ष होजायगी । कहा है--"दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानां उत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः" (न्या० सू० १।१।२१) । इसकी व्याख्या यह है कि जब तत्वज्ञानसे मिथ्याज्ञान चला जाता है तब दोष मिट जाते हैं फिर प्रवृत्ति मिटती है उससे जन्म मिटता है फिर दुःखोंका क्षय होनेसे मोक्ष होजाती है। वारह प्रकारके पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

(१) आत्मा, (२) शरीर, (३) इन्द्रिय, (४) इन्द्रियोंके विषय, (५) वुद्धि, (६) मन, (७) प्रकृति, (८) दोष (राग द्वेष मोह), (९) पुनर्जन्म, (१०) कर्मफल, (११) दुःख, (१२)

अपवर्ग या मोक्ष, ये सब बातें जैन दर्शनसे बहुत अंशमें मिल जाती हैं। अंतर यह है कि यह दर्शन एक ईश्वरको जगतका कर्ता और फलदाता मानता है। जगतका उपादान कारण परमाणु या प्रकृतिको मानकर निमित्त कारण ईश्वर है ऐसा मानता है। कहा है:—

"ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्" (न्या० सू० ४-१-१९)

भा०—ईश्वर पुरुषोंके कर्मोंके फल देनेमें कारण है नहीं तो फल न हो। और भी कहा है—

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा॥ ६॥

भा०—यह जंतु अज्ञानी है, इसका सुख दुःख स्वाधीनता रहित है। ईश्वरकी प्रेरणासे स्वर्ग या नर्कमें जाता है। जैन दर्शनमें जब मुक्तात्मा स्वाधीन होजाता है तब नैयायिक दर्शनमें एक परमात्माके आधीन रहते हैं। जैसा कहा है—

मुक्तात्मनां विद्येश्वरादीनां च यद्यपि शिवत्वमस्ति तथापि परमेश्वरपारतंत्र्यात् स्वातंत्र्यं नास्ति।

(सर्वदर्शनसंग्रह पृ० १३४-१३५)

भा०—मुक्ति प्राप्त जीव विद्याके ईश्वर शिवरूप हैं तथापि परमेश्वरके वश हैं. वे स्वतंत्र नहीं हैं।

जैन दर्शन आत्माको द्रव्य अपेक्षा नित्य व पर्यायकी अपेक्षा अनित्य तथा लोकाकाश व्यापी होके भी शरीर प्रमाण मानता है तब नैयायिक आत्माको नित्य व सर्वव्यापक मानते हैं। कहा है—

अनच्छिन्नसद्भावं वस्तु यद्देशकालतः ।
तन्नित्यं विभु चेच्छन्तीत्यात्माना विभु नित्यतेति ॥
(सर्वदर्शनसंग्रह पृ० १३९)

भा०—किसी देश व कालमें आत्मा निरोध रूप नहीं है । आत्मा व्यापक है और नित्य है ।

(२) वैशेपिक दर्शन—

वैशेषिक दर्शन सूत्र है। इसके कर्ता महर्षि कणाद होगए हैं। यह दर्शन भी संसारको दुःखमय मानता है और मोक्षकी प्राप्ति तत्वज्ञानसे कहता है। इस दर्शनमें द्रव्य नौ माने हैं—

(१) पृथ्वी (२) जल (३) अग्नि (४) वायु (५) आकाश (६) काल (७) दिशा (८) आत्मा (९) मन ।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु इनके परमाणु भिन्न२ होते हैं । इसलिये ये चारों परमाणुओंकी अपेक्षा नित्य हैं परन्तु स्कंधके वननेकी अपेक्षा अनित्य हैं । शेष पांच द्रव्य भी नित्य हैं, मनको अणु मानता है । आत्मा व्यापक है परन्तु अनेक हैं। हर शरीरमें भिन्न२ आत्मा है । आत्मा ज्ञानका आश्रय है । जैनदर्शनमें पृथ्वी आदिके भिन्न२ परमाणु नहीं माने गए हैं । किंतु एक पुद्गल द्रव्य परमाणु रूप माना गया है, उन परमाणुओंके मिलनेसे व नानाप्रकार परिणमन होनेसे पृथ्वी जल आदिके स्कंध वनते हैं ।

न्यायदर्शनकी तरह यह भी ईश्वरको जगतके वननेमें निमित्त कारण व कर्मके फलका दाता मानता है। यद्यपि न्याय व वैशेषिक दोनों जैनदर्शनके समान यह मानते हैं कि यह आत्मा स्वयं अपने

तत्वज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होता है। तथापि ईश्वरके समान स्वतंत्र नहीं होता है।

(२) सांख्य दर्शन—

गीताके अध्यायमें कुछ वर्णन सांख्यका आगया है तथापि कुछ विशेष जाननेके लिये कहा जाता है कि सांख्यदर्शनके प्रवर्तक महर्षि कपिल होगए हैं। सांख्य सूत्रसे विदित है "ज्ञानान्मुक्तिः" ज्ञानसे मुक्ति होती है (सांख्यसूत्र ३-२३) प्रकृति और पुरुषका भेद ज्ञान ही मुक्तिका कारण है। जैन सिद्धांतमें भी कहा है कि जीव और अजीवका भेद ज्ञान ही मोक्षका कारण है।

सांख्यकारिकामें कहा है—

"एवं तत्वाभ्यासान्नाऽस्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्। अविपर्याद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ॥

भा०—पुरुष प्रकृतिसे भिन्न ऐसे तत्वके अभ्यास करनेसे निर्मल ज्ञान उत्पन्न होता है कि मैं प्रकृति नहीं हूं न प्रकृति मेरी है, न प्रकृति मुज रूप है, मैं प्रकृतिसे बिलकुल अलग निष्क्रिय ज्ञान रूप हूं।

सांख्यदर्शनमें नीचे लिखे २५ तत्व माने गए हैं—

"सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। प्रकृतेर्महान्, महतो अहंकारः अहंकारात् पंचतन्मात्रारायुमिंद्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः।" (सांख्य सूत्र १-६१)

भा०-(१) सत्व, रजस और तमोगुणकी साम्यावस्था रूप मूल प्रकृति, (२) उससे उत्पन्न महान् तत्व, (३) उससे उत्पन्न

अहंकार, (४) अहंकारसे उत्पन्न पांच तन्मात्रा और ग्यारह इंद्रियां-१६ (५) पांच तन्मात्रासे उत्पन्न पंचमहाभूत, (६) पुरुष=२५ तत्व।

पांच तन्मात्रा--शब्द, रस, रूप, गंध, स्पर्श।

ग्यारह इंद्रियां--स्पर्शनादि पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय जैसे हाथ, पांव, वाक्, लिंग, गुदा।

पंचमहाभूत--पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश।

मूल प्रकृतिका लक्षण नीचे प्रकार है—

अशब्दमस्पर्शमरूपमद्वयं तथा च नित्यं रसगंधवर्जितम्।
अनादिमध्यं महतः परं ध्रुवं प्रधानमेतत् प्रवदन्ति सूरयः॥

भा०—प्रकृति शब्द रहित, स्पर्श रहित, रूप रहित, अविनाशी तथा नित्य, रस रहित, गंध रहित, अनादि मध्य रहित, महान तत्वसे परे, ध्रुव इसीसे आचार्य प्रधान कहते हैं—

जैनियोंके माने हुये पुद्गल द्रव्यसे प्रकृतिका मिलान नहीं होता है। पुद्गल स्पर्श, रस, गंध, वर्णमय है। प्रकृति इन गुणोंसे रहित है तौभी प्रकृतिसे स्पर्शादि व पृथ्वी आदि बन जाते हैं, यही बात एक जैनदर्शनके ज्ञाताके समझमें नहीं आती है क्योंकि उपादान कारणके समान कार्य होता है, जब उपादान या मूल कारणमें स्पर्शादि गुण नहीं तब उससे स्पर्शादि गुणवाली वस्तु कैसे उपजेगी? विद्वानोंके लिये विचारने योग्य है।

पुरुषका लक्षण है—

पुरुषोऽनादिः सूक्ष्मः सर्वगतश्चेतनोऽगुणो।
द्रष्टा भोक्ता अकर्ता क्षेत्रविदमलोऽपसवर्णाति॥

भा०—पुरुष अनादि है, सूक्ष्म है, सर्वव्यापी है, चेतन है, सत्व रजादि गुणोंसे रहित है, देखनेवाला है, भोगनेवाला है, कर्ता नहीं है, क्षेत्रका ज्ञाता है, निर्मल है, असंग है अर्थात् पुरुष कूटस्थ, केवल, सुखदु:खसे अतीत नित्य मुक्त और असंग है।

जैनदर्शनसे जीवका शुद्ध स्वरूप तो बहुत अंशसे मिल जाता है परन्तु पुरुष कूटस्थ व अकर्ता होनेसे उसका संसारी व रागी, द्वेषी होना नहीं बन सक्ता है। न वह सांसारिक दुःख सुखका भोक्ता होसक्ता है, यह अंतर पड़ता है।

जैनोंके समान सांख्य भी पुरुषोंको अनेक मानते हैं।

" पुरुषबहुत्वम् अवस्थात् " (सांख्य सूत्र ६--४५)

भा०-पुरुष बहुत न माननेसे जन्म आदिकी अवस्था नहीं बन सक्ती है।

जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत प्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धि त्रैगुण्यं विपर्ययाच्च॥

(सांख्यकारिका १८)

भा०-सब जीवोंका एक ही साथ जन्म, मरण, या इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति नहीं दिखलाई पड़ती है। एकमें एक गुण प्रबल है दूसरेमें उसका विपरीतपना है इसलिये पुरुष अनेक है।

सांख्यवादी ईश्वरको मानते ही नहीं है। सांख्य प्रवचन सूत्रमें साफ२ ईश्वरका प्रतिषेध किया है। यहां यही भाव है कि ये ईश्वरको कर्मकर्ता व फलदाता नहीं मानते हैं, मुक्त पुरुषको ही ईश्वर स्वरूप मानते हैं जैसे जैन लोग मानते हैं। भगवद्गीता १२ वें

अध्यायसे प्रगट है कि सत्वगुण सहित होना राग, द्वेष रहित, विचारशील ज्ञानी होना है। रजोगुण सहित संसारमें लीन भाव है परन्तु अन्यायी नहीं है। तमोगुण सहित हिंसक है। तीनोंके लक्षण ये हैं--

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत् सात्विकमुच्यते ॥ २३ ॥
यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण या पुनः।
क्रियते वहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥
अनुवन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥

भा०—जो कर्म नियमित, ममता रहित, राग द्वेष रहित, फलकी इच्छा विना किया जावे यह सात्विक कर्म कहा जाता है। जो कर्म इच्छा पूर्वक, अहंकारके साथ वहुत परिश्रमसे किया जाता है वह राजस कर्म कहाता है। जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्यको न विचारकर मोहवश किया जाता है वह तामस कहाता है।

नोट—जैनदर्शनकी अपेक्षा एक सम्यक्दृष्टि गृहस्थ या साधुका भाव सात्विक है। सरल परिणामी मिथ्यात्वीका भाव राजस है। कठोर परिणामी मिथ्यात्वीका भाव तामस है। केवल प्रकृतिका ही तीन रूप परिणमन होता है, जीव कूटस्थ नित्य अक्रिय रहता है यही वात जैन दर्शनसे नहीं मिलती है। शुद्ध निश्चयनयसे जीवका स्वरूप एकसा रहता है परन्तु व्यवहार नयसे जव कर्मोंका सम्वंध है तव जीव ही ज्ञानरूप व अज्ञानरूप, वीतराग रूप व रागद्वेषरूप परिणमन करता है। चेतना रहित केवल जड़में ये वातें नहीं होसक्ती हैं।

(४) योगदर्शन—

योगदर्शनके प्रणेता महर्षि पातांजलि होगये हैं। यह सांख्य-दर्शनसे मिलता है। सांख्यके समान यह दर्शन भी २५ तत्व मानता है, केवल एक तत्व और मानता है वह तत्व है—एक पुरुष विशेष अर्थात् ईश्वर।

ईश्वरका स्वरूप है—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्। स एव पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।
(१। २४--२६ योगसूत्र)

भा०-जो पुरुष विशेष क्लेश, कर्मविपाक और आशयके संपर्कसे शून्य है वह ईश्वर है। वह परम अतिशयरूप सर्वज्ञ है। वही सर्व ब्रह्मा आदिका गुरु है, सदा काल रहता है। मोक्षका उपाय योग साधन बताया है। उसके आठ अंग हैं—

" यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टांगानि।" (२—२९)

(१) यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रहत्याग।

(२) नियम—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर ध्यान।

(३) आसन—पद्मासन, वीरासन आदि ८४ आसन, जिससे शरीर स्थिर रहे, कोई भी आसन।

(४) प्राणायाम—श्वासके रोकनेका विधान।

(५) प्रत्याहार—इन्द्रियोंका निरोध करना।

(६) धारणा—एक जगह मनको रोकना।

(७) ध्यान—चित्त निरोधका प्रवाह होना।

(८) समाधि–ध्यान पककर जब ध्येयके साथ तन्मय होजावे। कहा है–' तदेवार्थनिर्मासस्वरूपशून्यमिव समाधिः।' (३-३)

भा०–जहां आत्मा पदार्थका ही अनुभव हो, स्वरूपमें शून्य हो वही समाधि है। निर्विकल्प भावको समाधि कहते हैं। यही मोक्ष-मार्ग है। इसीसे केवलज्ञान होकर मुक्ति होती है। कहा है—

" तस्मिन्निवृत्तेः पुरुषः स्वरूपप्रतिष्ठः अतः शुद्धो मुक्त इत्युच्यते (१-५)–उप समाधिकी पूर्णतापर आत्मा अपने स्वरूपमें तिष्ठता हुआ शुद्ध या मुक्त कहाता है।

योग साधनका विषय जैन सिद्धांतसे बहुत कुछ मिलजाता है–

(५)-पूर्व (कर्म) मीमांसा दर्शन—

इस दर्शनके प्रवर्तक महर्षि जमिनि होगए हैं।

इस दर्शनका ध्येय स्वर्ग प्राप्ति है। इसका साधन यज्ञ करना है। स्वर्ग सुखका लक्षण बताया है—

यन्न दुःखेन संभिन्न न च ग्रस्तमनन्तरम्।
अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वः पदास्पदम्॥

भावार्थ–जिस सुखके साथ दुःख नहीं मिला है, जिसके अन्तमें दुःख नहीं है, जो इच्छा या उसे प्राप्त होता है वही सुख स्वर्गमें मिलता है। ' स्वर्गकामो यजते ' स्वर्गका इच्छुक यज्ञमें होम करता है। इसमें क्रियाकांड दान पूजाकी ही मुख्यता है।

यह दर्शन सांख्यकी तरह किसी पुरुप विशेषको ईश्वर नहीं मानता है। वेदको ही नित्य और अभ्रांत मानता है। वेद ईश्वर वाक्य है ऐसा स्वीकार नहीं करता है। जगतका कोई वनानेवाला

च रक्षा करनेवाला नहीं मानता है। उसके मतमें जीव अपने कर्मोंके अनुसार फल भोगता है, उसमें ईश्वरका कोई सम्पर्क नहीं है। यज्ञयागादि कर्म ही सबकुछ हैं। किन्हींके मतमें पशुबलि करना, पशुओंको यज्ञमें होमना, ऐसा मत इस दर्शनका है। वे अश्वमेध यज्ञ, अजमेध यज्ञ आदिसे स्वर्गफल बताते हैं। भारतमें कभी ऐसे यज्ञोंका बहुत प्रचार था। श्री महावीर भगवान व गौतमबुद्धके समय इन यज्ञोंके प्रचारको इन महान आत्माओंने अपने उपदेशसे बंद कराया। यदि पूजा पाठ भक्तिमें गृहस्थलोग मनके आलम्बनको अन्नादि योग्य पदार्थोंसे काम लें व शुद्धात्मापर लक्ष देकर क्रिया करें तो जीव पुन्य बांधकर स्वर्ग जाते हैं, यह मत जैन दर्शनका भी है। परन्तु स्वर्ग अन्तिम ध्येय नहीं है, अंतिम ध्येय मुक्ति है।

(६)-उत्तर मीमांसा वेदांत दर्शन—

वेदांतदर्शनके प्रवर्तक महर्षि बादरायण होगये हैं, ब्रह्मसूत्रमें इसका वर्णन है। इसके चार मुख्य भेद हैं—

(१) अद्वैत, (२) शुद्धाद्वैत, (३) विशिष्टाद्वैत, (४) द्वैत।

(६-१) अद्वैत दर्शन।

अद्वैत दर्शनके प्रधान आचार्य श्री शंकराचार्य होगए हैं। यह दर्शन केवल एक ब्रह्मको ही सत्य मानता है, ब्रह्मके सिवाय और सब मिथ्या है। जीवको ब्रह्मसे अलग नहीं मानता है।

"जीवो ब्रह्मैव नापरः, नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वभावं प्रत्यक् चैतन्यमेव आत्मतत्वम्" (वेदांतसार)।

भा०—जीव ब्रह्म ही है। दूसरा नहीं। नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य स्वभावी, वीतराग चैतन्यरूप ही आत्मतत्व है।

ब्रह्मस्वरूपी जीव मायाके साथ होकर संसारी जीव नाम पाता है—

माहेश्वरी तु या माया तस्या निर्माणशक्तिवत्।
विद्यते मोहशक्तिश्च तं जीवं मोहयत्यसौ॥
मोहादनीशतां प्राप्य मग्नो वपुषि शोचति। (पञ्चदशी)

भा०—महेश्वरकी जो माया है उसमें निर्माण होनेकी शक्ति है। उससे मोह शक्ति होती है। वह जीवको मोहित कर लेती है। मोहसे जीव ईश्वरताको भूलकर शरीरमें मग्न हो शोच करता रहता है।

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते।
अजमनिन्द्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा॥
(मांडूक्यकारिका १–१६)

भा०—अनादि मायाके कारण सोया हुआ जीव जब जागता है तब वह जानता है कि वह स्वयं ही जन्म रहित, निद्रा रहित, स्वप्न रहित एक अद्वैत ब्रह्म वस्तु है।

मायाको भी यह दर्शन ब्रह्मकी शक्ति मानता है। कहा है—

"शक्तिशक्तिमतोरभेदात्" माया और ब्रह्म अभिन्न हैं। क्योंकि माया ब्रह्मकी ही शक्ति है।

भ्रमसे जगत नानारूप दीखता है, संसार भ्रम मात्र है। केवल एक ब्रह्म ही ब्रह्म है।

जैन दर्शन द्वैत सिद्धांत है, इस अद्वैतसे नहीं मिलता है। शुद्ध ब्रह्मसे माया कैसे होती है व वही क्यों मायासे मिलकर जीव होजाता है। और संसारमें कष्ट भोगता है। ब्रह्मका संसाररूप होना भी शुद्ध ब्रह्मके लिये शोभनीक नहीं होता है। ऐसी शंकाएं एक जैन दर्शनको माननेवालेके चित्तमें पैदा होती हैं।

जैसा पहले गीताके अध्यायमें कहा जाचुका है कि यदि स्वानुभवके समयकी अपेक्षा अद्वैतभाव लिया जावे तो जैन दर्शनसे अद्वैत मिल जाता है। परन्तु सत् पदार्थकी अपेक्षा नहीं मिलता है, क्योंकि जैन दर्शन छःद्रव्य सत् मानता है। जीवोंको भिन्न२ सत्तावान अनेक मानता है। परमाणुओंको अनेक भेदरूप मानता है।

(६-२) विशिष्टाद्वैत—

इस विशिष्टाद्वैतके प्रधान आचार्य रामानुजाचार्य होगए हैं। इस दर्शनने ब्रह्मका स्वरूप माना है—

वासुदेवः परं ब्रह्म कल्याणगुणसंयुतः ।
भुवनानामुपादानं कर्ता जीव नियामकः ॥

भा०—कल्याण गुणसे युक्त वासुदेव ही परब्रह्म हैं. वह ही सर्व भुवनोंके उपादान कर्ता हैं और जीवोंके नियामक है।

उसीसे सृष्टि, स्थिति व प्रलय होती है। इस दर्शनके मतमें यद्यपि ईश्वर, जीव, अजीव ये तीन पदार्थ हैं तथापि जीव व जड़ ईश्वराधीन हैं। ईश्वर ही भोक्ता और भोग्य (जीव और जड़) दोनोंमें अन्तर्यामी रूपसे विराज रहे हैं।

तदेतत् कार्यावस्थस्य च कारणावस्थस्य च चिदचित् ।
वस्तुनः सकलस्य स्थूलस्य सूक्ष्मस्य च परब्रह्मशरीरत्वम् ॥
(२-१-१५) भाष्य ।

भा०—कार्यावस्थापन्न, कारणावस्थापन्न, चित् अचित्, स्थूल, सूक्ष्म सभी वस्तुएं परब्रह्मके शरीर हैं।

यह जीव परमात्माको भक्तिसे व अपनेको ईश्वरार्पण करदेनेसे

मुक्त होजाता है । मुक्त होनेपर परब्रह्मके साथ मिलता नहीं है । यद्यपि उसके गुण ब्रह्मके समान होजाते हैं । लिखा है—

एवं गुणाः समानाः स्युर्मुक्तानामीश्वरस्य च सर्वकर्तृत्वमेवैकं देवे विशिष्यते-जगद् व्यापारवर्जनम् (सूत्र ४-४-१७)

भा०—मुक्त पुरुषोंके गुण सब ईश्वरके समान होजाते हैं । परन्तु सर्वका कर्तापना गुण ईश्वरमें ही रहता है, यही विशेषता है । मुक्तात्माओंका सम्बंध जगत्के व्यापारसे नहीं रहता है ।

नोट—जैनदर्शन यही शंका करता है कि शुद्धब्रह्म जड़ व अशुद्ध जीवोंका उपादान कर्ता किस तरह होगा ? तथा निर्विकार ब्रह्ममें कर्तापनेका भाव भी कैसे होगा ? विद्वानोंके लिये विचारणीय है ।

(६-२) **शुद्धाद्वैत**—

इस दर्शनके प्रधान आचार्य श्री वल्लभाचार्य होगए हैं ।

इस दर्शनमें ब्रह्मका स्वरूप माया रहित माना है ।

" मायासंबन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधः !
कार्यकारणरूपं हि शुद्धब्रह्म न मायिकम् ॥"

भा०—मायाके सम्बन्धसे रहित शुद्ध ज्ञाता ब्रह्म कहाता है । वह शुद्ध ब्रह्म कार्यकारण रूप है । परन्तु माया सहित नहीं है । यह दर्शन दृश्य जगतको ब्रह्मका कार्य मानकर उसे भी शुद्ध ब्रह्म ही मानता है । यह जगत ईश्वरकी लीला है ।

जीवोंको यह ब्रह्मका अंश मानते हैं, जैसे सोनेके रज । जीव नित्य है और अणुरूप ब्रह्मका अंश है ।

सर्व दृश्य और अदृश्य जगतको शुद्ध ब्रह्म समझकर भक्ति द्वारा आत्म समर्पण करनेसे जीवकी मुक्ति होजाती है ।

(६-४) द्वैत—

इस द्वैतके प्रधान आचार्य मध्वाचार्य हैं। इस दर्शनके अनुसार दो तत्व हैं—एक स्वतंत्र दूसरा अस्वतंत्र—

स्वतंत्रमस्वतंत्रं च द्विविधं तत्वमिष्यते।
स्वतंत्रो भगवान्विष्णुर्निर्दोषोऽशेषसद्गुणः॥

भा०—दो तत्वोंमेसे स्वतंत्र तत्व भगवान विष्णु दोष रहित व सर्व गुण सहित है।

अस्वतंत्रतत्वमें भिन्न२ अनेक जीव हैं और जड़ हैं। जगतमें जीव, जड़ व विष्णु तीनों पदार्थोंको ये सत्य मानते हैं।

नोट—हिंदू-धर्ममीमांसा पुस्तकके आधारसे। हिंदूधर्मके ६ मुख्य दर्शनोंका कुछ हाल पाठकोंके ज्ञान हेतु बताया गया है।

शिष्य--छः दर्शनोंका कुछ हाल जाना। विशेष तो उनकी पुस्तकोंके पढ़नेसे ज्ञात होगा। यह तो बताइये कि थियोसोफी भी क्या कोई हिंदूमत है?

थियोसोफी।

शिक्षक--यह हिंदू मतमें मान लिया गया है। परन्तु छः दर्शनोंसे मिलता नहीं है। क्योंकि इसका मत है कि एक मूल जड़ पदार्थ है, उसीसे उन्नति करते २ जीव होता है। वह जीव उन्नति करते२ मानव होता है। अनुभव प्राप्त करके फिर वह मुक्त होजाता है।

देखो पुस्तक—Frist Principles of Theosophy by C. Jinarajdas M. A. 1921 Adyer, Madras. लिखा है—

The Great Nebula—It is a chastic mass of matter in its intensely heated condition millians and millians of miles in diameter. It is a Vague cloudy mass full of energy. It revolves into another Nebula. Then solar system, then hydrozen, iron

and others wil be there. They will enter into certain combinations and then will come the frist appearance of life. We shall have a protoplasm, first form of life, then it takes form of a vegetable. Then animals and lastly man. A soul once become human cannot reincarnate in animal or vegetable forms. (p. 42).

भा०—एक बहुत बड़ा जड़ पिंड है जो बहुत ही उष्ण है। व करोड़ों मीलका उसका व्यास है। वह एक मेघ समूह सदृश शक्तियोंका समूह है। यह घूमते २ दूसरा समूह होकर फिर सूर्यका परिकर हो जाता है। फिर उसीसे हैड्रोजन वायु, लोहा व दूसरे पदार्थ होजाते हैं। फिर कुछ मिलाप होते २ प्रथम जीवनशक्ति प्रगट होजाती है। इसको प्रोटोप्लैडम कहते हैं। इसीसे वनस्पतिकाय बनती है। फिर उन्नति करते २ वही पशु, फिर वही मनुष्य होजाता है।

आत्मा मनुष्यकी दशासे पशु या वनस्पतिकी अवस्थामें कभी नहीं गिरता है। यह एक विकाश वादका सिद्धांत है। जड़से चेतन बन जाता है। यह बात ऊपर लिखित छः दर्शनोंमें नहीं है। यह एक अनोखी बात है। जैन दर्शनसे तो बिलकुल मिलती नहीं है। जड़से जड़ ही बन सक्ता है, चेतन नहीं। तथा जीवोंकी उन्नति तथा अवनति दोनों बातें संभव हैं। पशु भी मानव होसक्ता है तथा मानव भी अशुभ भावोंसे पाप बांधकर पशु होसक्ता है।

शिक्षक—आर्यसमाजका बहुत प्रचार है। इसका जैन धर्मसे क्या अन्तर है?

आर्यसमाज।

शिक्षक—यह दर्शन बहुत अंशसे नैयायिकसे मिलता है। यह ईश्वरको जगतका बनानेवाला कर्ता व सुख दुःखका फलदाता

मानता है। मुक्ति होनेपर भी जीव अल्पज्ञ रहता है। वह परमात्माके समान नहीं होता है।

सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ९ में नीचे लिखे वाक्यसे आप इनका मत समझ जांयगे। यह परमात्मा, जीव व प्रकृति तीन पदार्थोंको अनादि मानते हैं।

" मुक्तिमें जीव विद्यमान रहता है। जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसीमें मुक्त जीव विना रुकावटके विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतंत्र विचरता है। (२५२–पृष्ठ)

"जीव मुक्ति पाकर पुनः संसारमें आता है।" (२५४-पृष्ठ)

"परमात्मा हमें मुक्तिमें आनंद भुगाकर फिर पृथ्वीपर माता पिताके दर्शन कराता है।" (२५५ पृष्ठ)

"महाकल्पके पीछे फिर संसारमें आते हैं। जीवकी सामर्थ्य परिमित है। जीव अनंत सुख नहीं भोग सक्ते।" (२५६ पृष्ठ)

"जीव अल्पज्ञ है।" (२६२ पृष्ठ)

"परमेश्वरके आधारसे मुक्तिके आनंदको जीवात्मा भोगता है। मुक्तिमें आत्मा निर्मल होनेसे पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सर्व सन्निहित पदार्थोंका ज्ञान यथावत् होता है।" (२६७ पृष्ठ)

नोट–जैन दर्शनकी मान्यता है कि जीव स्वभावसे परमात्मा-रूप है। कर्म बन्ध छूटनेके पीछे यह स्वयं परमात्मा होजाता है। मुक्त होनेपर विना कारणके अशुद्ध नहीं होसक्ता है।

ईसाई मत।

शिष्य–यह तो बताये कि ईसाई मतसे भी जैन दर्शनकी कुछ बातें मिलती हैं ?

शिक्षक–ईसाई मतकी न्यू टेस्टामेन्ट New Testamentको मैंने पढ़ा है जिसको सन् १९१६ में British Foreign bible society 146 Queen Victoria street London ने प्रकाश किया है। इसमें बहुतसे वाक्योंसे यह सिद्ध होता है कि यह जीव स्वयं परमात्मापनेकी शक्ति रखता है तथा यह स्वयं अपने पुरुषार्थसे पूर्ण परमात्मा बन सक्ता है। यह बात जैनसिद्धांतसे मिलती है। इसको सूचित करनेवाले जो बाइबिलमें ईसाई साधुओंके वाक्य हैं वे नीचे दिये जाते हैं—

(१) सेन्ट मैथ्यू (St. Mathew) अध्याय सातवेंमें कहते हैं–

7–Ask, and it shall be given you; seek, and ye shall find; knock, and it shall be opened unto you.

8–For Every man that asketh receiveth, and he that seeketh findeth; and to him that Knocketh it shall be opened.

भा०–इच्छा करो और तुम प्राप्त कर लोगे। खोजो और तुमको मिल जायगा। खटखटाओ और तुम्हारे लिये दरवाजा खुल जायगा क्योंकि जो चाहता है वह पासक्ता है, जो खोजता है वह लेसक्ता है। जो खटखटायगा उसके लिये द्वार खुल जायगा। इसका भाव यही है कि मुक्ति तुम्हारे ही पास है, जो खोजता है वह पाता है। और अध्याय १९ उन्नीसवेंमें भी कहा है।—

16–And behold, one came & said unto him, Good Master, what good thing shall I do, that I may have eternal life,

18–He said unto him which Jesus said "thow shalt do no murder, thou shalt not commit adultory, thou shalt not steal, thou shalt not bear
mother and thou sha

said unto him, If thou wilt be perfect, go and sell that thou hast" and give to the poor and thou shalt have treasure in heaven and come and follow me.

भावार्थ—और देखो, एक मानव आया और उनसे कहने लगा—अविनाशी जीवन पानेके लिये मैं क्या करू ! तब जो कुछ इसाने कहाथा वह उसने कहा। (१) हिंसा न करो, (२) व्यभिचार न करो, (३) चोरी न करो, (३) झूठी गवाही न दो. (५) अपने माता-पिताका सन्मान करो, (६) अपने पड़ोसीको अपने समान समझकर प्यार करो। इसने उसको कहा था कि यदि तुम पूर्ण होना चाहते हो तो जाओ, जो कुछ तुम्हारे पास है उसको बेचडालो, गरीबोंको देदो, तुम्हें मुक्तिमें भंडार प्राप्त होगा। आओ और मेरे साथ चलो।

(२) सेन्ट मार्क St. mark ने कहा—

अध्याय १०—

17. What shall I do that I may inherit eternal life. 18. and Jesus said unto hin, why callest thou me good, there is none good but one God. 19. Thou knowest the commandments. Dont commit adaltory, dont kill, dont steal.

भावार्थ—अविनाशी जीवनके लिये मैं क्या करू? तब ईसाने कहा कि तू मुझे क्यों उत्तम कहता है? परमात्माके सिवाय कोई श्रेष्ठ नहीं है। तू आज्ञाओंको जानता ही है कि व्यभिचार न करो, हिंसा न करो, चोरी न करो।

(१) सेन्ट ल्यूक St. Luke ने कहा है—

Ch. 35—Take heed therefore that the light which is in thee be not darkness ch. 12-29. And seek not ye what ye shall eat and what ye shall drink, neither be ye of doubtful mind.

भा०-खयाल रक्खो कि जो प्रकाश तुम्हारे भीतर है उसमें अन्धकार न आने पावे (अज्ञानको न होने दो) खानेपीनेकी चिंता न करो, न मनमें कोई शंका रक्खो।

31. But rather seek ye the kingdon of God; and all these things shall be added unto you.

किन्तु तुम मात्र परमात्माके राज्य या प्रांतिक स्वतंत्रताकी खोज करो अन्य वस्तुएं अपने आप प्राप्त होजायगी।

Ch. 17-21—Neither shall they say, lo here and lo there, for behold, the kingdom of God is within you.

भा०-वे यह न कहेंगे कि इधर देखो या उधर देखो क्योंकि देखो, परमात्माका राज्य तुम्हारे भीतर ही है।

(४) सेन्ट जान St. John ने कहा है—

Ch. 3-15—That whatsoever believeth in him should not perish, but have eternal life. Ch. 4-14—But whatsoever drinketh of the water that I shall give him shall never thirst, but the water that I shall give him shall be in him a well of water springing up into ever-lasting life. 21. God is a spirit and they that worship him must worship him in spirit and in truth. Ch. 6--27 Labour not for the meat which perisheth, but for that meat which endureth unto everlasting life. Ch. 8-32 and ye shall know the truth and the truth shall make you free. Ch. 10--30 I and my father are one.

Ch. 14--6 Jesus said unto him, I am the way, the truth and the life: 10 Believest thou not that I am in the faith and the father in me.

भावार्थ—जो कोई उसका (परमात्म स्वरूप आत्माका) विश्वास करता है वह नष्ट न होगा किंतु अविनाशी जीवन प्राप्त करेगा। जो कोई उस जल (आत्मानंदरूपी जल)को पीएगा, जो मैं

उसको दूंगा, सदाके लिये प्याससे मुक्त होजायगा। किंतु वह मेरा दिया हुआ जल उसके भीतर नित्य जीवनके लिये एक जलका श्रोत होजायगा (सदा ही आनंद लाभ करेगा) परमात्मा आत्मा एक समान हैं। जो उस परमात्माकी भक्ति करें वे उसको अपनी आत्मामें और सत्यमें करे। उस आहारके लिये परिश्रम न करो जो नष्ट होजायगा किंतु ऐसे आहार (आत्मानंद) के लिए मिहनत करो जो नित्य जीवनमें बना रहेगा। तुम सत्यको जब पहचानोगे तब सत्य तुम्हें स्वाधीन कर देगा। मैं और मेरे पिता परमात्मा एक समान हैं। ईसाने उससे कहा—मैं ही मार्ग हूं, सत्य हूं, जीव हूं, क्या तू विश्वास नहीं करता है कि मैं श्रद्धामें हूं और परमात्मा पिता मेरेमें हैं।

(4) **Cornithians**—Ch, 3-16 Know ye not that ye are the temple of God and that the spirit of God dwelleth in you. 17. If any man defile the temple of God, him shall God destory, for the temple of God is holy which temple ye are. Ch. 5-26—The last enemy that shall be destroyed is death. 50-Now this I say, brethren, that flesh and blood cannot inherit the kingdom of God: 51—Behold, we shall not all sleep, but we shall all be changed.

भा०—कोरनिथियंस कहते हैं, क्या तुम नहीं जानते हो कि तुमही परमात्माके मन्दिर हो। परमात्मा रूप ही आत्मा तुम्हारेमें है। यदि कोई आदमी इस परमात्माके मंदिरको अपवित्र करेगा तो उसे परमात्मा नष्ट कर देगा (वह अपवित्र होजायगा) क्योंकि परमात्माका मंदिर पवित्र होता है और तुम ही वह मंदिर हो।

अंतिम शत्रु मौत है जिसे नष्ट करना होगा। ऐ भाइयो, मैं

तुमसे कहता हूं, मांस व रक्त परमात्माके राज्यको नहीं ले सक्ते। वास्तवमें हम सब सोएंगे नहीं किंतु बदल जावेंगे।

(6) Cornithians II Ch. 2-17 Now the Lord is that spirit: and where the spirit of the Lord is. There is liberty, 18. But we all, with open face beholding as in a glass the glory of the Lord, are changed into the same image from glory to glory, even by the spirit of the Lord Ch. 13-11 be perfect, be of good comfort, be of one mind, live in the peace and the God of love and peace shall be with you.

भावार्थ-कोरनिथियंस (२) कहते हैं, परमात्मा वही वह आत्मा है जहां परमात्मा रूप आत्मा है, वहीं स्वाधीनता है। किंतु हम सब जब खुले हुए मुखमें दर्पणकी तरह परमात्माके ऐश्वर्यका दर्शन करते रहते हैं, उसी रूपमें बदल जाते हैं। परमात्मामई आत्माके द्वारा ज्योतिसे ज्योति रूप होजाते हैं-पूर्ण हो, उत्तम सुखी हो, एकाग्र हो, शांतिमें रहो, प्रेम व शांतिमई परमात्मा तुम्हारे साथ रहेगा।

(7) Galatians Ch. 5-21—Envying, murder, drunkenness, etc. that they which do such things shall not inherit the kingdom of God. 5 For every mass shall bear his own burden.

गैलेशियन्स-कहते हैं। ईर्षा, हिंसा, मद्यपानादि जो ऐसे काम करते हैं वे परमात्माके राज्यको नहीं प्राप्त करसक्ते। क्योंकि हरएक मानवको अपना ही भार स्वयं सहना होगा।

शिष्य-इन पाठोंसे तो यही सिद्ध होता है कि आत्मध्यान ही मोक्षका उपाय है व अहिंसा ही धर्म है। यही बात जैन सिद्धांतने बताई है, फिर ईसाइयोंका ध्यान इस तत्वपर क्यों नहीं है?

शिक्षक–जो ज्ञानी होंगे उनका ध्यान होसक्ता है परन्तु इनका विस्तारसे कथन नहीं है । जैनसिद्धांत विस्तारसे बताता है। जैन सिद्धांतके जाननेसे इन बाइबिलके वाक्योंका यथार्थ अर्थ समझमें आएगा।

शिष्य–अहिंसा व मांसाहार त्यागके सम्बन्धमें कुछ बाईबलके वाक्य बताइये ।

शिक्षक–सुनिये–

(1) St. Mathew ch. 7--12 Therefore all things whatsoever ye would that man should do to you, do you even so to them; for this is the law of the prophets.

भा०–सेंट मैथू कहते हैं–इस लिये जो कुछ चाहते हैं कि मानव तुम्हारे साथ करें तुम्हे भी उनके साथ ऐसा ही वर्ताव करना चाहिये। क्योंकि यह महान पुरुषोंका नियम है।

(2) Romans ch. 14--20 For meat destroy not the work of God. All things indeed are pure; but it is evil for that man who eateth with offence 21. It is good neither to eat flesh, nor to drink wine, nor anything whereby thy brother stumbleth or is offended or is made weak."

भावार्थ–रोमन्स कहते हैं–मांसके लिये परमात्माके कामको मत विगाडो । सब वस्तुएं वास्तवमें पवित्र हैं । यह पाप है जो आपको हानि पहुंचाकर भोजन करता है । यही उत्तम है कि कभी मांस मत खाओ, मदिरा न पिओ, न ऐसी चीज खाओ जिससे तेरा भाई दुःखी हो या निर्बल हो ।

(3) Heberws ch. 9-12 Neither by the blood of goats and calves, but by his own blood he entered atonce into the holy place, having obtaind holy redemption. Ch. 10-4. For it is not possible that tne blood of bull and of goats should take away sins.

भावार्थ–हेबरयू कहते हैं- बकरों व बछड़ोंके रक्तसे नहीं किंतु अपने ही परिश्रमसे पवित्र स्थानमें वह गया है । पवित्र मुक्तिको उसने प्राप्ति कर लिया है । क्योंकि यह संभव नहीं है कि बैलों और बकरोंका रुधिर पापोंको धोसकेगा ।

(4) James ch. 2-11 For he that said-do not commit adultory, said also-donot kill. Now if thou commit no adultory, yet if thou kill, thou art become a transgrassor of the law 26. For as the body without the spirit is dead, so faith without work is dead also.

भावार्थ–जेम्स कहते हैं उसने जैसे कहा है कि व्यभिचार न करो वैसे यह भी कहा है कि हिंसा मत करो । जो कोई व्यभिचार न करे किंतु हिंसा करे वह भी नियमका खण्डन करनेवाला होगा । जिस तरह आत्माके विना शरीर मुरदा है, वैसे चारित्रके विना श्रद्धान मुरदा है ।

शिष्य–गुरुजी ! तब तो यह जरूरी है कि ईसाई दुनियामें जैनधर्म फैलाया जावे । कर्तावाद तो बाइबलमें होगा ही ।

शिक्षक–कर्तावाद तो बहुत थोड़े वाक्योंमें हैं मुख्य नहीं है । मुख्य बात बाइबलकी यही है कि अपनेको शुद्धात्माके ध्यानसे शुद्ध करो, पवित्र करो, तथा अहिंसाको पालो, किसीको कष्ट देकर भोजनपान न करो । मांस न खाओ, वास्तवमें जैनधर्मकी शिक्षाके प्रचारकी बहुत ही जरूरत है ।

पारसी धर्म ।

शिष्य–पारसियोंकी धर्मपुस्तकोंमें भी क्या कुछ समानता है ?

शिक्षक- मैंने यह पुस्तक इंग्रेजीमें देखी है—

Gatha or hymns of Atharva Zathurashtra by J. N. Chaterji M. A and Ardeshar N. Billimoria Cherag office Navsari Surat 1933.

इससे यह बात सिद्ध होती है कि हरएक मानवको सुख, शांति तथा त्यागके लिये अपने आत्मामें तिष्ठनेका उद्यम करना चाहिये। तथा प्रेममई जीवन बिताना चाहिये। कुछ वाक्य बताये जाते हैं—

Ch. 33 Gatha 9—Let absolute conscience, O Mazda, give me that spirit, viz, Truth which is the ideal of all ideals. for my guidance and for the attaniment of vatitude. Thereby I shall acheive realisation which way the soul inclines.

Ch. 33 G. 10—On a/c of conscience, give us nonchallence, rectitude and Higher Soul.

Ch. 34 G. 4—Now we would with rectitude adore your Fire, Ahura, which is resplendent, purest, strong, everdelightful and wonderfully beneficent.

Ch. 34 G. 6—O Mazda, teach me the mark of the perfect ideal of life, so that with prayers and hymns for you I can proceed on the way to self realization.

भावार्थ—ऐ परमात्मा ! मेरी अन्तरंग विवेक बुद्धि मुझे वह सत्य बतावे जो मेरी रक्षार्थ व शांतिके लाभार्थ सर्व सिद्धांतोंमें उत्तम सिद्धांत है। इसीसे मैं आत्माको इष्ट जो स्वानुभव है, उसे प्राप्त करूंगा। विवेक बुद्धिके प्रतापसे हमें त्यागभाव, शांति व उच्चतर आत्माका भाव प्रदान कर। अब हम शांतिसे तुम्हारी अग्नि

(आत्मध्यानकी अग्नि) को पूजें । यह अग्नि ज्योतिमय है, परम पवित्र है, बलिष्ट है, सदा ही आनंदमय है और आश्चर्यकारक लाभकारी है ।

हे परमात्मा ! जीवनके पूर्ण सिद्धांतका चिह्न मुझे बता जिससे मैं तेरा भजन करता हुआ स्वात्मानुभवको प्राप्त कर सकूं ।

Ch. 48 G. 3 – Let me now learn the best of all lessons, that which is the secret wisdom and that which for the sake of Rectitude the holy wise beneficient Ahura teaches by the deed of conscience one becomes like you, O Mazda.

भा०–सब पाठोंसे उत्तम उपदेश अब मुझे सीखना चाहिये । यही गुप्त ज्ञान है । इसीको अहरा पवित्र, ज्ञानमय, लाभदायक शांतिके लिये सिखाता है कि विवेकसे ही हरएक तेरे समान होजाता है । ऐ परमात्मा !

शिष्य–यहां भी सुखशांतिका मार्ग स्वानुभवको ही बताया है । कृपाकर यह बताइये कि अहिंसा और मांसाहार त्यागके भी कुछ वाक्य पारसियोंकी धर्म पुस्तकमें हैं ।

शिक्षक–सुनिये, कुछ वाक्य बताता हूं ।—

Zartusht—Namah P. 495—He will not be acceptable to God who shall thus kill any animal. Angel Asfundarmad says "O holy man, such is the command of God that the face of the earth be kept clean from blood, filth and carrior, Angel Amardad says about Vegetable "It is not right to destroy it uselessly or to remove it without purpose.'

भावार्थ–इस तरह जो कोई किसी पशुको मारेगा उसको परमात्मा स्वीकार नहीं करेगा। पैगम्बर ऐसूकन्दरमदने कहा है–ए पवित्र मानव! परमात्माकी यह आज्ञा है कि पृथ्वीका मुख रुधिर, मैल तथा मांससे पवित्र रक्खा जावे। अमरदाद पैगम्बर वनस्पतिके लिये कहते हैं कि इसे वृथा नष्ट करना न चाहिये, न वृथा हटाना चाहिये।

शिष्य–पारसी धर्ममें भी अहिंसा व मांसाहार विरोधका सिद्धांत जानकर बडा हर्ष हुआ। अब आप वह बताइये कि मुसल्मानोंके कुरानमें जैन धर्मसे मिलती क्या २ बातें हैं।

मुसलिम धर्म।

शिक्षक–मैंने कुरानका इंग्रेजी उल्था पढ़ा है जिस पुस्तकका नाम है—

The Koran translated frcm the Arctic by the Rev: Jem' Rodwell. M. A. London 1924

उसमेंके कुछ वाक्य बताता हूं—

(59) S. 38—Follow not thy passisons, lest they cause thee to err from the way of God.

भावार्थ–अपने क्रोधादि कषायोंको वश करो, नहीं तो तुम परमात्माके मार्गसे पतित होजाओगे।

(67) S. 17—If ye do well, to your own behalf will ye do well: and if ye do evil, against yourselves will ye do it Verily this Koran guided to what is most upright, and it announces to believers, who do the things that one right, th...

for them is a great reward and foes them who believe not in life to come, we have got ready a painful punishment. (C. N.)

भावार्थ—यदि तुम भलाई करोगे तो अपने ही लिये भलाई करोगे । यदि तुम बुरा करोगे तो अपने ही लिये बुरा करोगे । वास्तवमें यह कुरान बहुत ही भला मार्ग बताता है। यह कुरान श्रद्धालुओंको सूचित करता है कि जो भले काम करेंगे उनके लिये बड़ा इनाम मिलेगा परन्तु जो भावी जीवनका विश्वास न करेंगे उनको दुःखपूर्ण दण्ड मिलेगा ।

Observe prayer and say—Truth is come and falsehood is vanished.

भक्ति प्रार्थना करो तब कहो कि सत्य आगया, असत्य नाश होगया ।

(82) S. 31—O my son, observe prayer and enjoin the right and forbid the wrong, and be patient under whatever shall betide thee; for this is a bouned duty. And distort not thy face at men, nor walk there loftily on the earth, for God loveth no arrogant Vani—glorious one.

भावार्थ—ऐ मेरे पुत्र ! प्रार्थना पढ़ते रहो । भले काम करो, बुरोंसे बचो । जो दया हो उसमें सन्तोष मानो ! यही नियमित कर्तव्य है । मानवोंपर घमंड मुखसे न देखो, न पृथ्वीपर ऊंचा मुख करके चलो, क्योंकि परमात्मा घमण्डी आदमीको प्यार नहीं करता है।

(86) S. 35—And who ever shall keep himself pure, he purifieth himself to his own behalf; for unto God shall be the final gathering (10-20). Verily they who recite the book of

God and observe prayer and give alms in public and in private from what we have bestowed upon them, may hope for a merchandize that shall not perish (20-30).

भा०—जो कोई अपनेको पवित्र रक्खेगा वह अपने ही को पवित्र करता है ; परमात्माके पास अंतिम सबको एकत्र होना होगा। वास्तवमें जो परमात्माकी पुस्तक पढ़ेंगे, प्रार्थना करेंगे व जो कुछ हमने उनको दिया है, उसमेंसे सर्व साधारणको व गुप्त रीतिसे दान करेंगे उनको ऐसा सौदा मिलेगा जो कभी नष्ट नहीं होगा।

(69) S. 6—May Lord embraceth all things in knowledge.

भावार्थ—परमात्मा सर्व बातोंको जाननेवाला है।

113 (S. 6)—Those who turn to God, and those who serve, who praise, who fast, who bow down, who protect themselves, who enjoin what is just and forbid what is evil and keep to the bounds of God—wherfore bear these good tidings to the faithful. (110).

भावार्थ—जो परमात्मा परभक्तियुक्त है, जो सेवाधर्म पालते हैं, जो स्तुति करते हैं, उपवास करते हैं, झुकते हैं व स्वयं दण्डवत करते हैं, जो कुछ न्याय हैं उसपर चलते हैं, बुराईका निषेध करते हैं, परमात्माकी मर्यादामें रहते हैं। ईमानदारोंको यही अच्छी खबर देना चाहिये।

शिष्य—इससे यद्यपि गूढ़ आत्मध्यानका पाठ नहीं झलकता है तथा भक्तिमार्ग व शुभ काम करनेकी प्रेरणा मिलती है, तथा जीवन

अमर प्रगट होता है। ऐसा भी भला काम है जिससे जीवन पवित्र व अमर होजायगा। अच्छा, यह तो बताइये कि अहिंसा व खान-पान संबंधमें क्या वाक्य है ?

शिक्षक—सुनिये कुछ वाक्य बताता हूं—

(18) S. 90—Enjoin stead fastness on each other and enjoin compassion on each other.

भावार्थ—हरएकके साथ थिरताके साथ वर्ताव करो, हरएक पर दया रक्खो।

(24) S. 80—Let man look at his food. It was we who rained down the copious rains,......and caused the upgrowth of grain, and grapes and healing herbs and the alive and the palm and enclosed gardens thick with trees, fruits and herbage For the service of yourselves and your cattle. (20-40).

भावार्थ—मानवको अपने भोजनपर ध्यान देना चाहिये। हमने बहुत पानी बर्साया। अनाज, अंगूर औषधियें, खजूर आदि उगवाए। उनके चारों तरफ वृक्षोंसे, फलोंसे व वनस्पतिसे घने भरे हुए बाग लगवाए। तुम्हारी और तुम्हारे पशुओंकी सेवाके लिये।

(54) S. 50—And we send down the rain from heaven with its blessings, by which we cause gardens to spring forth and the grain of the harvest, and the tall palm trees with date bearing branches one over the other for man's nourishment.

भा०-हमने आशीर्वादके साथ पानी वर्साया है जिससे बाग फलें, अन्नकी फसल हो। लम्बे २ खजूरके वृक्ष खजूरोंसे भरे रहें। ये सब मानवके पोषणके लिये।

(55) S. 20—He hath spread the earth as a bed and path traced out paths for you therein and hath sent down rains from heaven and by it we bring forth the kinds of various herbs—eat ye and feed your cattle.

भा०-उसने पृथ्वीको बिछानेके समान बिछाया है। तुम्हारे लिये मार्गके चिह्न बताए हैं। पानी वर्साया है कि जिससे नाना प्रकारकी वनस्पति पैदा हो, तुम खाओ और अपने पशुओंको खिलाओ।

(94) S. 23—Eat of things that are good and do what is right.

भा -जो अच्छे पदार्थ हैं उनको खाओ और जो कुछ उत्तम काम हैं उनको करो।

(67) S. 17—Neither slay any one whom God hath forbidden you to obey, unless for a just cause.

भावार्थ-जिनको मैंने वध करनेसे मना किया है उनको मत मारो, सिवाय किसी न्याययुक्त कामके लिये।

(107) S. 22—By no means can this flesh reach unto God, neither their blow; but peity on your part reacheth them.

भावार्थ-किसी भी तरह बलि किये हुए जंतोंका मांस प.

मात्माके न पहुंचता है न उनका रुधिर, परन्तु जो कुछ धर्म पालते हो वही वहां पहुंचता है।

शिष्य—इनमें तो फलादि खानेकी आज्ञाएं कही हैं, इनपर मानवोंको चलना चाहिये।

शिक्षक—ठीक है, जगतके मानव किसी कारणसे अपनी आदतें जैसी बना लेते हैं वैसा चलते हैं। मानवका खाद्य आजकल सागादि ही हैं। अब मैंने कुछ धर्मका विवेचन तुम्हारे हितके लिये किया है, उनपर नित्य मनन करो। और यह उपदेश लाभकारी हो तो दूसरोंको भी इसका लाभ देओ।